न्दी ज्ञानमन्दिर ग्रन्थावली—४

माता-पिता
खुद एक समस्या

लेखक—ए० एस० नील

अनु०—संतोषकुमार मेहता

प्राप्ति-स्थान
हिन्दी ज्ञानमन्दिर लिमिटेड
रुस्तम बिल्डिंग, २६, चर्चगेट स्ट्रीट फोर्ट बम्बई

इस किताब और मूल लेखकके बारे में

ईथेल मैनिन नामकी एक उपन्यास-लेखिका अपनी नन्ही पुत्रीके साथ एक बार लन्दनसे पेरिस आ रही थी। उसी जहाजसे कलाके कई विद्यार्थी भी जा रहे थे। उन्होंने उस बच्ची को देखकर इथेल मैनिनसे कहा—"इसे किसी ऐसे-वैसे स्कूलमें मत भेज दीजिएगा! हाँ, नीलके 'स्वतन्त्र स्कूल' में क्यों नहीं भेज देतीं?"

नीलने स्वयने अपने इस 'भयानक (स्वतन्त्र!)' स्कूलके विषयमें काफी लिखा है। नीलका परिचय देना बहुत सरल कार्य नहीं है। हिन्दुस्तानमें इन्हें बहुत लोग नहीं जानते, हालाँकि मैं आठ वर्षकी उमरसे ही इन महाशयके नामसे परिचित हो गया था! इंगलिस्तानमें इन्हें जानते काफी लोग हैं, लेकिन यह जानकारी वैसी ही है, जैसी शिकारीको अपने शिकारके रहने घूमने के स्थानके बारेमें जानकारी होती है। वहाँके लोगों द्वारा इन्हें (नीलको) गालियाँ देना बहुत प्रिय है, 'भले घरों'में उसके नामको बहुत आदरणीय नहीं समझा जाता, कई उन्हें समाजके लिए खतरनाक समझते हैं। मुझे भी अपने बोर्डिंग हाउसमें खतरनाक समझा जाता है। लेकिन हम दोनों (हम एक दूसरे को नहीं जानते) ने हमेशा ऐसी गलत धारणाका दृढ़तासे—छोटे बड़े पैमाने पर—सामना किया है।

ए एस नील स्काटलैंडके निवासी हैं। इनका जीवन विभिन्न परिस्थितियोंसे होकर गुजरा है। बहुत गरीबीके दिन इन्होंने देखे हैं। बहुत अमीर कभी नहीं हो पाए। संदेशवाहक, कपड़ेकी दूकानमें नौकरी, फौजमें नौकरी, अखबार-नवीसी और स्कॉटलैंडके स्कूलोंमें अध्यापकी—बारी-बारीसे सब काम ये कर चुके हैं। लेकिन अपने शिक्षक-पदसे ये हटा दिए गए, क्योंकि शिक्षाके विषयमे इनके अपने विचार थे, और उन्हें ये बहुत मूल्यवान समझते थे! सरकारी शिक्षा-विभाग अपने प्रति की गई इस 'गद्दारी' को भला कब चुपचाप सहन करनेवाला था? वह कैसे ऐसे व्यक्तिको अपने दायरेमें रहने दे सकता था, जो खुले आम कहता फिरे कि 'शिक्षक को कमजोर होना चाहिए' या कि 'जिस शिक्षकसे उसके विद्यार्थी डरते हैं, वह शिक्षक निकम्मा होता है!' हमारी आजकी शिक्षा-पद्धतिका आधार ही भय है और भयके विरुद्ध अपना स्वर बुलन्द करनेवाले यानी व्यवस्था की जड़ ही में कुठाराघात करनेवाले व्यक्ति

को यदि आजन्म कारावासका दण्ड न दिया जाय, तो कमसे कम उस सामाजिक बहिष्कार तो किया ही जाना चाहिए। नीलके साथ इसी रहमदि (!)से काम लिया गया है। आज सम्पूर्ण इंग्लैंडमें तीनसे अधिक ऐसे अ धार नहीं हैं, जो नीलके लेख छापने का साहस कर सकें। एक बार ए अखबारमें किसी पब्लिक स्कूलके प्रधानाध्यापकने विद्यार्थियोंके अभिभावको नाम एक पत्र लिखा, जिसमें यह प्रार्थना की गई थी कि जिन लोगोंने अप लड़कोंकी फीस नहीं दी है वे शीघ्र दे दें, क्योंकि फीस जमा न होनेके कार अध्यापकोंको बड़ी कठिनाईका सामना करना पड़ता है। नील समस्या गहराइमें घुसे और उसी अखबारको उत्तरके रूपमें उन्होंने एक पत्र लिखा। उन्हों लिखा कि 'जो लोग अपने लड़कोंकी फ़ीस समय पर नहीं देते हैं, वे वास्तवं अपने लड़कोंसे घृणा करते हैं वे फीस नहीं देना चाहते !' अखबारने य उत्तर नहीं छापा। इसी प्रकार एक प्रकाशकने इथेल मैनिनकी एक पुस्तक छापनेसे इन्कार कर दिया, क्योंकि उसका प्राक्कथन नील लिख रहे थे।

ऐसा क्यों ?

ऐसा इसलिए कि नील अपने समय के समाजमें, प्रचलित और स्वीकृत मिथ्या धारणाओंका खुलकर विरोध करते हैं। उनका कहना है कि जिस मिथ्या धारणाका समाज सबसे अधिक शिकार है, वह यह है कि व्यक्ति जन्म ही से दोषपूर्ण—पापपूर्ण (Original sin) होता है। दुनियामें अच्छी बुरी जैसी कोई वस्तु होती ही नहीं, होता है केवल सुख और दुख। यह कहना गलत है कि अच्छे बनोगे तो सुख प्राप्ति होगी, कहना यह चाहिए कि सुखी बन जाने पर अच्छे अपने आप बन जाओगे। मानसिक दुख सब व्याधियोंकी जड़ है।

आजकी हमारी शिक्षा-पद्धति सूचनात्मक है। सूचना बाहरसे आती है। हमारे ऊपर लादी जाती है। अनपढ़ गँवारके हाथोंमें बढ़ियासे बढ़िया पुस्तक रख देने पर भी वह समझेगा कुछ नहीं, हाँ चकाचौंध अवश्य हो जायगा। आज हम सभी चकाचौंध हैं, पर हमारा मानसिक विकास नीचीसे नीची सतह पर है। मेरी दादी को पैसे गिनने नहीं आते थे। एक आना माँगने पर रुपए की अन्नियाँ रखकर कहती थी—जितनी चाहिए, उतनी ले लो। जब उससे कहा जाता कि ये तो सोलह अन्नियाँ हैं, तो वह मुँह बाए देखती रह

जाती थी—जैसे ये सब उसकी समझमें न आ रहा हो। दुर्भाग्यसे मेरी माँ इतनी भोली नहीं है। चीज है काम की आपके हाथ में, किन्तु उसको समझने-परखनेकी शक्ति नहीं है तो वह किस काम की ? नील ऐसी शिक्षाका विरोध करते हैं। वे कहते हैं शिक्षाका' अर्थ है—'विचार करना', शिक्षाका उद्देश्य है—'जीवनके प्रति एक रुख(Attitude)' इख्तियार करनेमें सहायता करना ऐसी शिक्षा किस काम की, जिससे आगे चलकर व्यक्ति सिर्फ अखबार पढ़नेके योग्य रह जाए ? शिक्षाके प्रति इस मूर्खतापूर्ण दृष्टिकोणमें आमूल परिवर्तन करनेका नीलने बीड़ा उठा लिया है। नीलके मतसे सह शिक्षा ही भविष्यकी शिक्षा-पद्धति हो सकती है! समाजका कल्याण उसीसे होगा। 'लड़कों को (लड़कियोंसे) अलग कर देने पर उनका दृष्टिकोण दोषपूर्ण हो जायगा। मैंने अक्सर पाया है कि इंगलिश पब्लिक स्कूलसे निकले लड़के अपनी बहनोंसे एक प्रकारके आचरणकी आशा करते हैं और दूकानोंमें काम करनेवाली लड़कियोंसे अन्य प्रकारके!' वह शिक्षा ही क्या जो व्यक्तिके व्यक्तित्व को विदित कर दे ?

इस मर्जका इलाज क्या है ?

माता पिताओंमें नब्बे प्रतिशत शत प्रतिशत मूर्ख और जाहिल होते हैं—जहाँ तक बच्चोंके लालन-पालनका प्रश्न है! बच्चोंके व्यक्तित्वको स्वतन्त्रताकी सुनहली धूप और निर्भयताकी स्वच्छ हवामें खिलने देना चाहिए। बच्चको शिक्षित करनेका सबसे अच्छा तरीका यही है कि उसे शिक्षित न किया जाय।' मेरी माँ मुझसे कहा करती है—'बेटा बापकी लाज रख लेना! कुलके नामपर कलंक न लगने देना।' और मेरी माँ दुनियामें निराली माँ नहीं है। अधिकतर माँ बाप पुत्रका लालन-पालन केवल इसी लिए करते हैं कि आगे चलकर वह उनके बुढ़ापेका सहारा बन सके, कमाकर खिला सके! पुत्रियोंको भार समझा जाता है और उनसे यह छिपाया भी नहीं जाता। जब-तब गिड़गिड़ाहटमें ऐसे वाक्य मुँहसे निकले बिना नहीं रहते—'हे भगवान्! इस कलमुँहीका स्नेह बदले तो हमें निपूता ही रखते!' और मजा यह कि ऐसी प्रार्थनाएँ माताओंके मुँहसे अधिक सुनी जाती हैं।

तो, नीलका मत है कि बच्चेका लालन-पालन अधिक समझ और ज्ञानसे होना चाहिए। माता-पिता औरोंसे घृणा करते हैं, लेकिन बच्चेसे

जीवनमें—उसकी सर्जनात्मक शक्तियोंके विकासके लिए—यह आवश्यक है। जहाँ इसमें बाधा पड़ी कि व्यक्तित्वकी समतल भूमिमें कहीं दरार पड़ा ! कभी कभी यह दरार इतनी चौड़ी हो जाती है कि फिर जीवन भर उसको भा नहीं जा सकता ! माता-पिता चाहते हैं कि उनके बच्चे उनका सम्मान करें। उनके लिए प्यारका आरम्भ यहींसे होता है, जहाँसे सम्मानकी सीमाका अ हो जाता है । किन्तु सम्मान —जबरदस्ती कराया जानेवालासम्मान, जीवनमें मिथ्याचरणका सबसे बड़ा कारण होता है। जिस बच्चेकी सर्जनात्म वृत्तिमें—उसके स्वाभाविक विकासमें कभी कोई बाधा नहीं पहुँची है, वह क चोरी नहीं करेगा, मार्गपर चलते चलते कंकड़को ठोकर तक नहीं मारेग बच्चोंके इस प्रकारके मनोवैज्ञानिक लालन पालनके लिए अभिभावकों शिक्षा देनी पड़ेगी । उन्हें बच्चोंका बच्चोंकी भूमि—ज्ञानविकासकी सतह समझना पड़ेगा। नील माता-पिताओंके लिए स्कूल बहुत आवश्यक समम हैं, लेकिन वे बच्चोंके व्यक्तित्वको मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तोंकी कसौटीपर न परखना चाहते। सिद्धान्तोंको व्यक्तित्वका अनुसरण करना होगा। फ्रॉय एडलर, युग, मॉन्टिसरी आदिके सिद्धान्तोंको वे ज्योंका त्यों स्वीकार न कर लेते । अपनी सहज-बुद्धिको ताखपर रखकर विद्वानोंकी बातोंको मा की परिश्रमरहित आदत इनकी नहीं है । फ्रायडके मनोविश्लेषण सिद्धान्त बहुत हद तक वे लाभ प्रद मानते हैं, किन्तु उससे उनका विरोध भी है।

फ्रायड राजनीतिसे अछूता ही रहा। अतः व्यापक सामाजिक दृष्टिको भी वह न अपना सका। फ्रायडके अनुसार अचेतन शक्तियोंको—जो मा सिक व्याधिका कारण हैं—चेतनामें ले आनेपर, उनका प्रभाव न-कुछ सा जाता है, और बीमारी अच्छी हो जाती है। ठीक। किन्तु इसके पश्चा क्या ? जिन सामाजिक और घरेलू कारणोंसे बीमारकी यह दशा हुई थ उनमें जब तक परिवर्तन न होगा, तब तक मनोविश्लेषणका प्रभाव बहु टिकाऊ नहीं हो सकता। बीमारको ठीक करके उसे पुनः उसी वातावरण भेज देना, जहाँसे उसने रोग पाया था, उतना ही हास्यास्पद है, जित निमोनियाके बीमारको कम्बलोंसे ढककर आइसक्रीम खिलाना !

नीलके मतसे बच्चेमें शक्तिकी भावना बहुत रहती है। वह अपने आ की प्रत्येक वस्तुपर अपनी शक्ति आजमाना चाहता है। बच्चा सत्ता-प्रे होता है। अभिभावकोंसे इतनी सहानुभति और समझसे काम लेना चाहि

कि उसकी सत्ता-प्रियता सीमासे बाहर जाकर उच्छृंखलतामें न परिणत हो जाय, और न उसे इतना दबा दिया जाय कि वह कायर और निकम्मा बन जाय।

नीलने कई बातों पर आवश्यकता से अधिक ज़ोर दिया है—उन्हें बढ़ा-चढ़ा कर कहा है। यह आवश्यक है। इस पब्लिसिटीके ज़मानेमें जब जब तक अतिरंजित रूपमें न कही जाय, कोइ उस ओर आकृष्ट होता ही नहीं। बम्बईका गवर्नर जबतक प्रमाण-पत्र न दे-दे तब तक 'परसराम'(जवेरी) के हीरे नहीं बिक सकते, लीला देसाइ जब तक यह न कह दे कि लक्स साबुनका प्रयोग करनेसे उसकी त्वचा अधिक सफ़ेद (गुलाबी) होती है, लक्स कम्पनीको घाटेका सामना करनेकी तैयारी करनी पड़ती है, और 'अमीरी' को चलानेके लिए जवाहरलाल नेहरूके—बेमानी ही सही—आशी-ादकी आवश्यकता पड़ती ही है। ध्यान आकर्षित करनेके लिए कुछ कला ाजियाँ खेलनी ही पड़ती हैं। लेकिन नीलकी कलाबाजियाँ ऐसी नहीं हैं जो त्यको छिपा दें या तोड़-मरोड़ दें। उसने अपनी कलाबाजियोंकी सीमा वहीं क रखी है, जहाँ तक वे उसकी बातकी सचाईको अधिक शक्तिके साथ गट कर सकें। मैं उनमें के कुछ उदाहरण देता हूँ —

(१) 'धार्मिक लोग अचेतन-रूपसे मृत्युकी चाहना करते हैं।'

(२) 'सम्मान—जीवनमें सत्याचरणका शत्रु है।'

(३) 'पाप—उस नैतिकताका परिणाम है, जो मानव प्रकृतिके विरुद्ध ाती है।'

(४) 'विनम्रता अधिकांशतः ढोंग होता है।'

(५) 'अध्यापकको 'कमजोर' होना चाहिए।'

(६) 'शिक्षाका एक उद्देश्य यह होना चाहिए कि वह बच्चेको विचार रनेसे रोके।

(७) नियन्त्रणमें विश्वास करनेवाला प्रत्येक व्यक्ति नालायक होता है।'

ऊपरके सातों वाक्य नीलके हैं। ज़रा उन्हें पुन ध्यानसे पढ़ जाइए। न पर मनन कीजिए। ये सब बातें लिखनेवाला कितना दुखित होकर ुखता होगा, इसकी कल्पना कीजिए। नीलके हृदयमें आदमीकी मौजूदा ालतने किन किन भावोंको जन्म दिया होगा, इसकी हल्की-सी झाँकी हमें सकी पुस्तकोंमें मिलती है।

देवता बननेकी चेष्टा करनेसे पहले मनुष्य बनना आवश्यक है। हजारों वर्ष हो गए हम इंसान भी पूरी तरह न बन पाए।

"सभी कुछ हो रहा है इस तरक्कीके जमानेमें।
मगर ये क्या गजब है कि आदमी इन्साँ नहीं होता॥"

नील इस समस्याका उमक बूझ कर उत्तर देनेकी चेष्टा कर रहा है। हमें उसकी बात सुननी चाहिए। जितनी ईमानदारीसे वह अपनी बातें कहता है—उतनी ही ईमानदारीसे हमें उसकी बातों पर मनन करके अगर ठीक जँचे तो—उन पर अमल करना चाहिए।

सीधे शब्दोंमें नीलका कहना यही है कि नींव डालनेमें भूल मत करो मकान कभी खराब नहीं बनेगा। अभिभावकोंको बहुत-सी ऐसी बातें जाननेको मिलेंगी, जिनसे उन्हें चोट तो पहुँचेगी, किन्तु उनका प्रभाव उन पर यही पड़ेगा कि वे मानव-जातिके कल्याणमें अपना बना कर सकेंगे।

नीलने मनुष्य जातिके लिए बहुत बड़ा कल्याणकारी कार्य किया है, यद्यपि उनका कार्यक्षेत्र मुख्यत इंग्लैंड ही रहा है। उनका कहना है कि वृद्ध व्यक्तिको अध्यापकी नहीं—कभी नहीं—करनी चाहिए। बूढ़पन उमरसे नहीं हृदयके स्वास्थ्यसे नापा जाता है। अभी कुछ दिन हुए मैं अपने एक अंग्रेज मित्रसे बातें कर रहा था। वार्तालापके दौरानमें वह बोला—'कुछ महीनों पहले मैं नीलसे मिला था। कहता था, अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ। चाहता हूँ कोई योग्य व्यक्ति मेरा काम अपने हाथमें ले ले।' इतने वर्षोंकी कड़ी तपस्या और जी-तोड़ परिश्रमके पश्चात् अगर नील पर बुढ़ापा हावी हो गया तो क्या आश्चर्य!

इतना काम कर लेने पर भी जब इथेल मैनिनने एक लेखमें उसे संसारका सर्वश्रेष्ठ शिक्षा-शास्त्री कहा तो नीलने उसे लिखा—'लेकिन बेटी, मैं यह कैसे निबाह सकूँगा? लोग मुझसे चाइनाकी राजधानी और टेम्सकी सहयोगी नदियोंका नाम जानना चाहेंगे, और ये न मैं कभी जानता था और न जाननेकी इच्छा ही है।" और ऐसे निरभिमानी, महान् शिक्षाशास्त्रीके लिए पेंगुइन-सीरीजकी ब्रिटेनमें शिक्षा (Education in Pritain) नामक पुस्तकमें पूरी दस पंक्तियाँ भी नहीं हैं! कौन कहता है कि अंग्रेज जाति अन्य जातियोंसे अधिक सभ्य है? किसने कहा कि अंग्रेज एहसान-फ़रामोश नहीं होता? अंग्रेजको छोड़ कर अन्य किसी व्यक्तिने अपने शब्द बर्बाद नहीं किए हैं।

—संतोषकुमार मेहता

लेकिन पहिले जटिल बालक. [१]

बच्चा कभी जटिल होता ही नहीं, समस्याएँ तो अभिभावक ही पैदा करते हैं। हो सकता है यह संपूर्ण सत्य न हो, लेकिन इसे क़रीब-क़रीब संपूर्ण सत्य ही समझिए। बच्चा अक्सर जटिल इसलिए बन जाता है कि अभिभावक बच्चेकी प्रकृति समझनेमें नाकामयाब रहते हैं। बच्चा इसलिए भी जटिल बन जाता है कि कई बार अभिभावक स्वयं अपनी ही प्रकृति नहीं समझ पाते।

मैंने अपनी पिछली किताबोंमें अक्सर एक आदमीका ज़िक्र किया है, जिसने मुझे बच्चेकी प्रकृतिको समझनेका सबसे अच्छा रास्ता सुझाया था। इसका नाम है— होमर लेन।' कमसे कम दो बार, मैं उनका बताया हुआ माँ और बच्चेका दृष्टान्त उद्धृत कर चुका हूँ। मैं उसे फिर दुहराता हूँ क्योंकि उसीमें बाल-मनोविज्ञानका सार निहित है।

"एक बहुत ही नन्हा शिशु अपनी आँखोंके सामने एक वस्तुको हिलती डोलती देखता है—यानि उसका हाथ। उसे यह भी मालूम हो जाता है कि वह इस वस्तु पर एक हद तक नियन्त्रण रख सकता है—वह उसे हिला सकता है। अब वह यह जानना चाहता है कि यह वस्तु क्या और कैसी है। चूँकि वस्तुओंकी अच्छाई बुराई जाननेका एक ही तरीका उसके पास होता है—उसका मुँह, इसलिए वह अपने हाथको मुँह तक ले जाता है। यह आसान नहीं है वह बार बार प्रयत्न करता है अंतमें थक भी जाता है, किंतु अपने प्रयत्नमें लगा ही रहता है। यह देखकर कि अपने प्रयत्नोंकी असफलताये खीझ कर वह चिढ़ उठेगा, उसकी माँ, जो उसे बराबर देखती रहती

है, उसका हाथ उसके मुँहमें रख देती है। ऐसा करते ही बच्चा बिगड़ खड़ा होता है, हाथ पाँव मारने लगता है और चीख उठता है, क्योंकि माँ उसकी सर्वप्रथम मानसिक क्रियाको नष्ट कर देती है। हाथको मुँह तक ले जाना उसका प्रारंभिक उद्देश्य था, किंतु थोड़ी ही देरमें उससे भी अधिक अच्छी बातमें उसका चित्त रम जाता था—हाथको मुँह तक ले जानेके प्रयत्नमें। उसकी माँ ने मूर्खतावश उसको उसकी रचनात्मक सफलतासे वंचित कर दिया नासमझीसे उसने भौतिक प्रक्रियाको मानसिकसे अधिक महत्त्व दे दिया।

यह हाथकी घटना प्रत्येक शिशुके साथ हो ही ऐसी बात नहीं, किन्तु यह निश्चित है कि प्रत्येक शिशुकी रचनात्मक क्रियामें त्रिशूलके अड़गे लगाए जाते हैं। ऊपरके दृष्टान्तमें माँने समझा कि चूँकि बच्चा अपने हाथको मुँह तक ले जानेका प्रयत्न कर रहा है, इसलिए यह भूखा है, और उसने उसे कुछ खिला दिया। प्रतिदिन आपको ऐसी माताएँ मिल जायेंगी, जो अपने खीजते-ठुनकते बच्चोंको बोतल या मानसिक दृष्टिसे हानिकारक कोई और वस्तु पकड़ा देती हैं, जब कि असलियत यह है कि बच्चे खीजते ठुनकते तभी हैं, जब उनकी रचनात्मक क्रियाओंमें बाधा डाली जाती है। ऐसा अक्सर इसलिए होता है कि प्रौढ़ोंको बच्चोंकी रचनात्मक क्रियाएँ अरुचिकर लगती हैं। क्योंकि बच्चोंकी क्रियाओंमें शोर-गुल एक अत्यन्त आवश्यक वस्तु है, लेकिन शोरगुल ! किसी भी खिलौनेकी दुकानमें चले जाइए अधिकतर खिलौने बे आवाज होते हैं रबड़की गेंद, रबड़के गुड्डे लेकिन अब रबड़के ढोल भी बन जायँ तो क्या आश्चर्य ? एक बात और—अधिकतर खिलौने ऐसे होते हैं, जो बच्चेकी रचनात्मक वृत्तिसे लोभ-वृत्तिको उकसाते हैं। यही कारण है कि प्रत्येक स्वस्थ बच्चा अपने खिलौनोंको टुकड़े टुकड़े कर उसके अन्दर जो कुछ है, उसे जाननेका प्रयत्न करता है। एक छोटा बच्चा स्कूलमें एक सुन्दर खिलौना—धुँआकश—लाया। एक सप्ताहके अन्दर ही अन्दर उसने उस चालीस-पचास रुपयेकी चीजको बुरी तरह तोड़-ताड़कर बगीचेमें फेंक दिया। प्रौढ़ व्यक्ति चीजोंका आवश्यकतासे अधिक संरक्षण करते हैं मैं स्वयं करता हूँ। एक ओर तो मैं इतने सुन्दर बिजलीके धुँआकशकी बरबादी पर गुस्सा हो रहा था, दूसरी ओर मेरा मन नौ-नौ बाँस भी उछल रहा था। दम्भकारीके

प्रति मेरी विशेष रुचि होनेके कारण जब मैं किसी बच्चेको कोई अच्छा रंदा या नयी निहाईको नष्ट करते हुए देखता हूँ तो बड़ा क्षोभ होता है। हर पिता अपनी पुस्तकों और औजारोंको सुरक्षित रखना चाहता है। कोई भी माँ अपने क़ालीनों पर धूड़ा नहीं देखना चाहती। हम यह बात इमानदारीसे मान लेनी चाहिए कि बच्चों और प्रौढ़ोंके स्वार्थ (Interests) अक्सर एक-दूसरेके विरोधी होते हैं। प्रत्येक घरमें कभी न कभी ऐसा मौका आता ही है, जब कि प्रौढ़ गरज उठता है—'उसे मत छुओ!' मेरा स्कूल एक बहुत ही सुन्दर मकान है जिसमें देवदारके चौखट और क़ीमती बलूतके दरवाजे हैं। लेकिन एक दस वर्षके बच्चेके लिए इस सौंदर्य और सजावटका कोई मूल्य ही नहीं है। उसे तो बरामदेमें चलते हुए डंडेसे चौखटोंपर ठक्-ठक्-ठक् करनेमें ही आनन्द आता है। चौखटोंके बारेमें तो मैंने परेशान होना ही छोड़ दिया और अब तो मैं यह सोचने लगा हूँ कि बच्चोंके स्कूलमें चौखट होने ही नहीं चाहिए। जब मेरे पास आवश्यक पैसा इकट्ठा हो जाय तो मैं छोटे बच्चोंके लिए अपनी मर्जीके मुताबिक़ एक स्कूल बनवाऊँगा।

प्रौढ़ोंके लिए भौतिक वस्तु अत्यधिक महत्व रखती है। किन्तु बच्चे जिसे अत्यधिक महत्त्व देते हैं वह है—करना। अपनी मोटरको, खरीदनेके बाद, कई महीनों तक मैं पॉलिश करके साफ़ रखता रहा, किन्तु बच्चे अपनी नई साइकलोंकी कुछ सप्ताहसे अधिक परवाह नहीं करते। साधारणतया तीन सप्ताहके बाद लड़का अपनी साइकलको बाहर रात भर वर्षामें पड़ी रहने देगा, क्योंकि उसके लिए उसका महत्व पहिले जितना नहीं रह जाता। औजारोंके साथ भी यही होता है। मैं सदा अपने औजारोंको सँभालकर रखता हूँ, लड़के स्कूलमें अच्छे औजार लाते अवश्य हैं किन्तु महीने भर बाद ही मैं उन्हें बगीचेमें पड़े हुए पाता हूँ। अपनी साइकिलका पिछला पहिया घुमानेके लिए कारखानेसे वे पेंचकश उठा लाते हैं, किन्तु काम पूरा होनेके बाद उसे फेंककर चल देते हैं, क्योंकि उनके लिए उसका और कोई उपयोग नहीं रह जाता। उनका ध्यान तो साइकल चलानेमें आनन्द प्राप्त करनेका होता है। बच्चा भविष्यका विचार नहीं करता।

मेरे कहनेका यह अर्थ कदापि नहीं है कि बच्चे भौतिक वस्तुओंकी ओर

आकर्षित नहीं होते, होते हैं, लेकिन वह आकर्षण थोड़े समयके लिए ही होता है। मेरा कारखाना अर्द्ध-समाप्त नावों और पतंगोंसे भरा पड़ा है। मान लीजिए एक लड़का नाव बना रहा है। इतनेमें एक दूसरा लड़का बंदूक (एक खिलौना) लेकर आता है। बस, उस लड़केके लिए नाव बनानेमें कोई आनन्द नहीं रह जाता। वह उसे पूरा कभी नहीं करेगा। अगर लड़का यह चिन्ता नहीं करता कि उसकी नाव सुन्दर लगती है या नहीं—मेरे विद्यार्थी अपनी नावोंको कभी नहीं रँगते—किन्तु वह उसे अच्छी और संतुलित अवश्य बनाना चाहते हैं।

ध्यान रहे मैं ऐसे बच्चोंके बारेमें लिख रहा हूँ जो स्वतन्त्र हैं और जिन्हें स्कूलमें उपदेश नहीं 'पिलाये' गये हैं।

अगर प्रौढ़ अपने विचारोंको बच्चोंपर जबर्दस्ती लादनेका प्रयत्न करेंगे, तो उसकी प्रकृतिमें अवश्य दोष घुस जायँगे। प्रौढ़ जीवनकी रचनात्मक वृत्तिसे अधिक लोभ (परिग्रह वृत्ति) की ओर आकर्षित होता है। प्रौढ़ उसी वस्तुको उपयोगी समझता है, जो बच्चोंका रोना-चिल्लाना बन्द कर दे। बच्चोंपर नियन्त्रण रखनेका असली उद्देश्य यह है कि प्रौढ़ शान्तिसे जीवन बिता सकें। परिणामत बच्चेको भी शान्त रहना पड़ता है, मानो उसे निष्क्रिय जीवन बिताने पर विवश किया जाता है। अत जब बच्चा यह पाता है कि रचना-शील जीवन अपने शोरगुल और वस्तुओंकी तोड़ फोड़के कारण 'हौआ' बन गया है, तो वह जीवनकी निम्नतम सतहकी ओर मुड़ जाता है—निष्क्रियता और लोभ-वृत्तिकी ओर आकर्षित होनेपर विवश हो जाता है। उसका रचनात्मक क्रियाओंके दबा दिये जानेके कारण वह ऐसी ऐसी बातोंमें आनन्द प्राप्त करता है, जिन्हें वह अपने विकास-क्रममें बहुत पीछे छोड़ आया था। उसका विकास रुक जाता है। तब वह चाहने लगता है कि वे दिन फिर लौट आयें जब उसकी माँ उसका आलिंगन करके उसे चूम लेती थी। यानी वह जीवनके शारीरिक आनन्दकी खोजमें लग जाता है। विचित्र लगनेपर भी है यह सच कि छोटी उम्रमें बालकों द्वारा हस्तमैथुनका कारण अभिभावकों द्वारा उनके जीवनमें लोभ-वृत्तिपर जोर देना ही है। मैंने आठ वर्षके एक लड़केसे पूछा—"क्या तुम अब भी हस्तमैथुन करते हो ?"—उसका पिता उसे इस आदतके लिए बिस्तरमेंसे घसीट

कर बड़ी निर्दयता से पीटता था। मेरे प्रश्नके उत्तरमें लड़का जरा गम्भीर हो गया। "अजीब बात है," वह बोला—'अब तो मुझे उसका ख़याल तक नहीं आता।'

"क्यों?" मैंने पूछा।

थोड़ी देर रुककर उसने सीधा सा उत्तर दे दिया,—"बात यह है कि अब जब मैं सोने जाता हूँ, तो यही सोचता रहता हूँ कि मैं अपने वायुयान को ऐसा किस तरह बनाऊँ कि वह उड़ने लगे।" वह उस वायुयानकी बात कर रहा था कि जो उसने हाल ही में बिना किसीकी सहायताके बनाया था। इससे स्पष्ट है कि हस्तमैथुनकी शरण वही बच्चा लेता है, जिसकी रचनात्मक शक्तियाँ दबा दी जाती हैं, और जो इन्द्रियासक्त होनेपर विवश कर दिया गया है। लगभग इसी कारणसे हस्तमैथुन बच्चे या प्रौढ़को पूर्णरूपसे सन्तुष्ट कभी नहीं करता, क्योंकि उसमें रचनात्मिकाशक्तिका अभाव होता है। जिन बच्चोंकी मानसिक रचनात्मक प्रक्रियाओंमें आभभावनों द्वारा बाधा डाली जाती है उन बच्चोंमें यौन क्रियाओंके प्रति अनुचित आकर्षण होता है।

प्रौढ़ों द्वारा दिये गये उपदेशोंकी निश्चित प्रतिक्रियाएँ क्या हो सकती हैं, इसका पता चोरी करनेवाले बच्चोंके अध्ययनसे लग सकता है। रचनाशील फुर्तीला बच्चा चोरी क्यों नहीं करता। बच्चा जब चोरी करता है, तो इसका आशय है निष्क्रियता और वह अधिकार चाहता है, लोभ वृत्तिका वह शिकार है। चोर वृत्तिके साथ यौन वृत्तिका बड़ा ही घनिष्ट सबंध होता है। इसका कारण यह है कि बच्चा पहिले-पहल यौनके प्रति मानसिक दृष्टिसे आकर्षित होता है।

बच्चेके हाथको लेकर जब माँ इतनी भारी भूल कर सकती है, तो जब बच्चा अपनी लिंगेन्द्रियकी खोज कर लेता है, तब माँ द्वारा की गई भूलकी गम्भीरताकी आप कल्पना कर सकते हैं। अगर बच्चेको अपना ही जीवन जीने दिया जाय तो होगा यह कि वह अपनी जननेन्द्रियकी खोज करेगा, कुछ समय तक उसके प्रति उसका आकर्षण तीव्र रहेगा, और फिर अपने आप उसका शमन हो जायगा। लेकिन जब माँ उसका हाथ वहाँसे झटक देती है, तब वह खोज करनेसे प्राप्त होनेवाले उसके आनन्दपर पाला डाल देती है। इस प्रकार बच्चा जननेन्द्रियके प्रति अनुचितरूपसे आकर्षित हो

जाता है—और उसे आवश्यकतासे अधिक महत्त्व देने लगता है। हमें याद रखना चाहिए कि शिशुके लिए जननेन्द्रिय उतना आनन्द प्रदान करनेवाली वस्तु नहीं होती जितना कि मुँह। हस्तमैथुन माँ द्वारा वर्षों पहले दबा दी गई मानसिक क्रियाओंका वैसा ही परिणाम है, जैसाकि हस्तमैथुनको स्थानान्तरित कर दूसरे व्यक्तिसे संबंधित करनेके परिणामको सजातीय-संभोग कहते हैं। दरअसल चोरी करना दूसरे वेषमें हस्तमैथुन ही है। सभी जानते हैं कि लड़के फॉउन्टेन पेन आदि जो कि यौन प्रतीक हैं, को चुराते हैं। लेकिन चोरी करना तो हस्तमैथुन करनेसे कहीं अधिक बुरा है, क्योंकि यह निष्क्रियताका और अरचनात्मक काम है। चोरी करना 'पलायनवादी हस्तमैथुन' है, क्योंकि माँकी यह चेतावनी कि 'सचमुचके हस्तमैथुनके भयकर परिणाम हो सकते हैं' बराबर बच्चेके कानोंमें गूँजती रहती है और उसके मनमें भय बैठ जाता है। जब अभिभावक ऐसी चीजोंके भयकर परिणामोंकी भविष्यवाणी करते हैं, तो उससे पैदा होनेवाले डर जीवनके दूसरे क्षेत्रोंमें भी अपना प्रभाव डालते हैं, बच्चा कायर बनकर हर ऐसे कामसे डरने लगता है, जिसमें संकटका सामना करना पड़ता है।

फिर भी हस्तमैथुनकी वृत्तिको दबा देनेका परिणाम सदा ही चोरी नहीं होता। हो सकता है, बच्चा लाक्षणिक रूपसे प्रेम या—'ज्ञान जानकारी Information—चुरा रहा हो। जो भी हो, इतना अवश्य है कि चोरीमें निरोधित (दबायी हुयी) रचनात्मक शक्तियोंका बहुत बड़ा हाथ रहता है। मैंने पाया है कि चोरीकी आदत मिट जानेपर लड़के-लड़कियाँ अक्सर चतुर और रचनाशील बन जाते हैं।

मैं यह बात जोर देकर कहूँगा कि जटिल बच्चा वह है जिसकी रचनात्मक-वृत्ति कुचल दी गई है और जिसकी लोभ-वृत्तिको उकसा दिया गया है। स्वस्थ बच्चेका ध्यान वस्तुओंमें अधिक होता है, जटिल बच्चेका लोगोंमें। बात विचित्र लग सकती है कि जब मैं यह कहता हूँ कि स्वस्थ बच्चेका ध्यान वस्तुमें होता है तो मेरा मतलब है कि बच्चा वस्तुओंको रचनात्मक ढगसे प्रयोग करनेके काममें लाता है। साधारणतया स्वस्थ बच्चेको पेड़पर चढ़नेमें आनन्द आता है, किन्तु जटिल बच्चेको आनन्द आता है—अपने घरवालोंको परेशान

करनेमें। माँ, बाप, या दोनोंका रुख बच्चेके प्रति कैसा होता है, यह जानना बहुत आवश्यक है, इसी कारण वे बच्चेके जीवनमें विशेष महत्व भी रखते हैं। बच्चेमें लोगोंके प्रति अधिकार भावना जाग पड़ती है। एक उदाहरणसे यह बात स्पष्ट हो जायगी। माँको यह डर लगता है कि बच्चा कहीं आगसे अपनेको जला न ले। बार बार जैसे ही बच्चा आगके निकट जाता है, वह चिल्ला पड़ती है—'उससे तुम जल जाओगे।' इस प्रकार आगके प्रति बच्चेका रुख सीधा-सादा न रहकर पेचीदा बन जाता है। उसके लिए आग, आग न रहकर, आग और माँके सबन्धसे बनी हुई कोई अन्य तथ्य बन जाती है। वह अपने अनुभवसे तो जानता नहीं कि आग जलाती है, वह तो इतना ही जानता है कि माँ कहती है कि 'आग जलाती है।' अगर छुटपनमें ही माँने बच्चेको जरा-सा भी जलने दिया होता, तो बच्चा सचाई जान लेता और आगके प्रति उसका रुख स्वयकी ओरसे रचनात्मक बन जाता। माँके कारणसे एक तो वह आगसे डरने लगता है और दूसरे स्वाभाविक क्रियामें बाधा डालनेके कारण वह माँ से घृणा भी करने लगता है। इस और छुटपनमें हस्तमैथुनकी बातके निष्कर्षमें बहुत कम अन्तर है बच्चा अनुभवसे नहीं जानता कि जननेन्द्रियको छूना अनुचित है, वह केवल इतना ही जानता है—माँ कहती है कि उसे छूना अनुचित है। अत हस्तमैथुनका माँ (mother-complex) केसाथ बड़ा गहरा सम्बन्ध होता है। माँ अनजानमें ही नहलाते धुलाते समय बच्चेमें जननेन्द्रियके प्रति आकर्षण पैदा कर देती है। अनजाने ही वह बच्चेको हस्तमैथुन सिखा देती है। बादमें जब इसी वस्तुको लेकर वह डाँटती फटकारती है, तो बच्चेको बड़ा सदमा पहुँचता है। वह सोचता है—माँने ही इसे आरम्भ किया और अब वही मना कर रही है। यह विचार बच्चेके चेतन-मनमें अवश्य नहीं होता किन्तु अचेतन-मनमें वह इसका अनुभव कर लेता है।

माँके लिए यह सम्भव है कि वह बच्चेको इस प्रकार बड़ा करे कि उसमें यौनके प्रति अस्वाभाविक धारणाएँ न हों। ग्रन्थियाँ (complex उलझनें) न पैदा हो जायँ, उसमें व्यर्थका मानसिक द्वन्द्व न पैदा हो जाय। किन्तु यह तभी सम्भव है जब माँ स्वय अपनी लैंगिक ग्रंथियोंसे मुक्त हो जाय। साम्प्रदिक रूपसे

यौनका रूप रचना होता है, माँका जीवनके रचनाशील पहलूके प्रति क्या दृष्टिकोण होता है, 'यह यौनके प्रति उसके रुखपर, निर्भर करता है। जो यौनको दया (Taboo कर) देना है, वह जीवनकी रचनात्मकवृत्तिको भी कुचल देता है। दुराग्रही माता अपने यच्चेको स्वय हस्तमैथुनकी ओर प्रवृत्त करती है क्योंकि हस्तमैथुन ही एक ऐसा रास्ता है, जिससे बच्चा अपनी कुचली हुई भावनाको (Escape करके-पलायन द्वारा) पुनः प्राप्त करनेका प्रयत्न कर सकता है। हस्तमैथुन माँ और यौनका सम्मिश्रण है।

जब हम बच्चेपर दूसरे दृष्टिकोणसे—उसके उन अधिकारों पर कि जो कुचल दिए गए हैं विचार करते हैं तो भी स्थिति बहुत अन्तर नहीं पड़ता। गई रचनात्मक वृत्ति विनाशकारी रूपमें प्रकट होती है, जैसे कुचल दिया गया प्रेम घृणाके रूपमें प्रकट होता है। इस कथनकी सचाईका प्रमाण मुझे अभी अभी मिला है। बारह वर्षका एक लड़का मेरा स्कूल छोड़कर एक ऐसे स्कूलमें गया, जहाँ बड़े कठोर नियत्रण थे। वहाँ स्वतन्त्रता नहीं थी, नियन्त्रण था वहाँ रचनाशीलता नहीं, 'टाइम टेबल' और बेंचें थीं और था मास्टरका डर! अपनी पहली ही छुट्टीमें वह मेरा अतिथि बनकर मेरे यहाँ आया। एक सप्ताहमें उसने बीससे ऊपर खिड़कियाँ तोड़ दीं। जिस वर्ष वह मेरे स्कूलमें था, उसने एक भी खिड़की नहीं तोड़ी थी। नियन्त्रणने उसकी स्वाभाविक रचनाशीलताको कुचलकर उसे विनाशप्रिय बना दिया था। भयके कारण वह अपने सजे-सजाए स्कूलकी खिड़कियाँ चूर-चूर न कर सका, किन्तु समरहिलमें, जहाँ भय नामकी वस्तु ही नहीं है, उसने बहुतसे काँच फोड़ डाले, और इस काममें उसे बहुत आनन्द आया।

यह लड़का वैसे स्वस्थ था, जटिल नहीं था। सभी क्रूर व्यक्तियोंके प्रति अपनी घृणाको वह चित्रोंमें प्रकट किया करता था। एक दिन मैं उसके पास, जिस स्थानपर वह चित्र बना रहा था, पहुँचा। वह गुर्रा उठा।

'क्या हो रहा है?' मैंने पूछा।

'कुछ नहीं,' वह बोला, 'बस उकता गया हूँ।'

किससे उकता गए हो, बर्ट?'

'अपने स्कूलसे।'

'तो मेरी खिड़कियोंके बजाय तुम वहाँकी खिड़कियोंको क्यों नहीं तोड़ देते ?'

'बापरे ! मेरी हिम्मत ही न होगी।' उसने उत्तर दिया।

परंतु कई लड़के दबावके प्रति अपनी प्रतिक्रिया अन्य ढगसे भी प्रकट करते हैं। चोरी करना, आग लगा देना, लड़ाकू होना, झूठ बोलना ये सब निरोधित रचनाशीलताके प्रतिक्रिया-परिणाम हो सकते हैं अवरुद्ध रचनात्मक-वृत्ति नाना प्रकारके भयमें भी प्रकट हो सकती है।

तो, जटिल बच्चा एक ऐसा बच्चा है जिसके अभिभावक उससे ऐसे रहन सहनकी माँग करते हैं, जो बच्चेकी प्रकृतिसे मेल नहीं रखता। अभिभावक बच्चोंपर रहन-सहनका एक निश्चित ढग लादने लिए क्यों विवश हो जाते हैं, यह आगेके प्रकरणोंमें समझानेका प्रयत्न किया जायगा। साधारणतया, सबसे मुख्य कारण यह है कि अभिभावकोंका स्वयका जीवन सुखी नहीं होता। जीवनका आदर्श सुख प्राप्ति है, सुख प्राप्त हो जाय तो रचनाशीलता अपने आप प्रकट हो जाती है। जटिल माँ या बाप अपने आपसे प्रेम नहीं कर सकते अत स्वाभाविक है कि वे अपने पड़ोसियों से भी प्यार नहीं कर सकते, और उनका अत्यन्त निकटतम पड़ोसी उनका अपना बच्चा होता है।

अपनी पुस्तक 'होमरलेन एण्ड दी लिट्ल कॉमनवेल्थ' के प्राक्कथनमें लॉर्ड लिटनने लिखा है,—"प्रेमका अर्थ समझने और उसे जीवनमें उतारनेकी रीतिमें 'लेन' सबसे भिन्न था। उसके जीवनमें 'प्रेम' का अर्थ उस अर्थसे नितान्त भिन्न रहा है, जिससे हम लोग अपना काम चलाते हैं। उसके विचारमें प्रेमका—भावना या आवेशसे कोई संबंध नहीं होता। अधिकतर मनुष्योंके लिए प्रेमका अर्थ होता है चाहना—स्नेह। 'लेन' के लिए उसका अर्थ था 'साथ देना'—'अगीकार करना' उसकी यह धारणा रही है, कि प्रेमके इस अर्थको नीतिमत्ताके ठेकेदारोंने नष्ट कर दिया है। मानवताका सुख इसीमें है कि यह प्रेमको इसी अर्थमें पुनर्जीवित करदे।"

यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण दृष्टिकोण है और नया भी नहीं है। एक

भारतीय विचारक विवेकानन्द,—जिसने लेनको बहुत प्रभावित किया था—के दर्शनमें इसी दृष्टिकोणका प्रतिपादन किया गया है। इस दृष्टिकोणकी सहायता से ईसाकी उक्ति—'अपने पड़ोसीको अपनी ही तरह प्यार करो'—अच्छी तरह समझमें आ सकती है। यह ठीक है कि मैं अपने दूधवालेको अपनी ही तरह प्यार नहीं कर सकता, किन्तु मैं उसके साथ ऐसा व्यवहार तो कर ही सकता हूँ, जिससे मालूम हो कि मैं सहनशील हूँ और दूसरोंकी भावनाओंको चोट नहीं पहुँचाता। अपने चालीस विद्यार्थियोंमेंसे कुछको मैं सचमुचमें प्यार करता हूँ—मेरे मनमें उनके लिए बड़ा गहरा स्नेह है। दूसरोंको उतनी ही गहराईसे मैं प्यार नहीं करता। किन्तु ये 'अप्रिय' बच्चे भी मेरे यहाँ उतने ही सुखी हैं जितने कि दूसरे, और वे मुझे चाहते भी उतना ही हैं। (स्वभावत मैं किसीके प्रति पक्षपात नहीं करता।) कहना मैं यह चाहता हूँ कि मेरा उनकी बातको समझना, उसे अंगीकार करना और उन्हें उत्साहित करना ही उनके लिए प्रेम होता है। चूँकि मैं उनको बिना भय और अपनी ओरसे बिना नैतिक पथ प्रदर्शन की क्रिया (?) के उनकी अपनी जिन्दगी जीने देता हूँ, जिससे उनका अचेतन मन यह समझ जाता है कि मैं उन्हें प्यार करता हूँ।

यहाँपर अभिभावक प्रश्न कर सकते हैं,—"ठीक है, किन्तु स्कूलकी बात ही दूसरी है। हम तो अपने बच्चोंको उसी प्रकार प्यार करते हैं, जैसे हमारे बाप-दादा करते चले आए हैं। वे हमारे अपने हैं इसलिये उनके साथ बोलने चालनेमें हमारी नरम-कठोर भावनाओंको हम कैसे अलग कर सकते हैं?"

बिलकुल सच! किन्तु मैं पूछता हूँ,—'कैसी भावना? प्रेम या घृणा? स्वीकृति या अस्वीकृति? माता पिताके प्यारको निर्विवाद मान लिया जाता है, किन्तु बात क्या सचमुच ऐसी ही है? जटिल बालकका जहाँ तक प्रश्न है—उनके प्रति मैं कह सकता हूँ कि माँ बापके प्यारका नितान्त अभाव होता है। जटिल अभिभावककी समस्या योंमें इस प्रकार रखी जा सकती है कि ऐसी कौन-सी बातें हैं जो अभिभावकोंको अपने-आपसे घृणा करनेपर विवश कर देती हैं और परिणामत अपने बच्चोंसे घृणा करनेके लिए प्रेरित करती हैं?

प्रश्न बहुत गंभीर है।

अनमेल विवाहोंकी कमी नहीं है। अपने मित्रोंकी ओर नजर दौड़ाइए। बड़ी कठिनाईसे आप ऐसे दम्पति पाएँगे जिनको देखकर कहा जा सके—'इनका दाम्पत्य जीवन सुखी है।' जटिल बच्चोंका कारण अधिकांश ऐसे ही अनमेल विवाह होते हैं। हमारी सभ्यतामें विवाहोंका परिणाम बादमें जाकर क्यों निराशापूर्ण हो जाता है, इसके हजारों कारण हैं। हम कुछ ही पर ध्यान दे सकेंगे। अधिकांश विवाह रुचि और स्वभावकी भिन्नताके कारण असफल हो जाते हैं। आदिकालीन सभ्यताओंमें यह प्रश्न बहुत गम्भीर नहीं था। किन्तु उन्नत सभ्यतामें विवाहका अर्थ शारीरिक सन्तुष्टिसे कहीं अधिक होता है उसका अर्थ होता है 'जीवन-साथी (Companionship)।' दुख यही है कि साथी चुनते समय शारीरिक आकर्षण ही प्रधान वस्तु होती है। एक विद्वान् प्रोफेसर भी शारीरिक दृष्टिसे डोरा कॉपरफील्ड जैसी गुड़ियोंके प्रति आकर्षित होकर उनसे विवाह कर सकता है। अक्सर कर भी लेता है। चूँकि विवाह आलिंगनों तक ही सीमित नहीं है, ऐसा विवाह 'जो भारी गलतफहमियोंकी यादोंसे 'तड़पता हुआ है' निरंतर 'साथ'का बोझ कभी नहीं उठा सकता। तलाकपर लगाये गए हमारे प्रतिबन्ध ऐसे स्त्री पुरुषोंके अलग होनेमें रोड़े अटका देते हैं, जिनका अलग हो जाना ही अच्छा है। एक डाक्टर, अध्यापक या पादरी तलाक देने-लेनेकी हिम्मत भी नहीं कर सकता क्योंकि इससे समाजकी नजरोंमें गिर जानेका डर होता है। अभी कुछ दिनों पहले लन्दनमें एक अध्यापकको स्कूलसे निकाल दिया गया, क्योंकि उसकी पत्नीने उसे तलाक दे दिया था। परिणामत, हजारों बच्चोंके जीवन नष्ट हो रहे हैं, क्योंकि झगड़ालू माता पिता बच्चको शान्ति

और सुखमें सबसे बड़े बाधक होते हैं।

ऐसे अभागे घरोंमें बच्चोंके मनमें भयंकर द्वंद्व पैदा हो जाता है,—'मैं बाबूजीका साथ दूँ या माँका ?' बच्चा स्वभावत दोनोंको प्रसन्न रखना चाहता है। दोनों ही बच्चेके विकासके लिए आवश्यक हैं। इधर कुछ दिनोंसे मेरा वास्ता ऐसे घरोंके बहुतसे बच्चोंसे पड़ा है, जिसमें माता और पितामें ३ और ६ याने ३६ प्रतिकूलताका संबध था। कई अभिभावकोंने बच्चेसे वास्तविक परिस्थिति छिपानेका जी तोड़ परिश्रम भी किया किन्तु बच्चेको बहुत देर तक धोखेमें नहीं रखा जा सकता। वह बहुत जल्दी परिस्थिति भाँप जाता है। वह ज्यादातर अचेतन रूपसे ही जानता है कि दालमें कुछ काला अवश्य है। मैं कुछ अपने अनुभव बतलाऊँ। ऐसी परिस्थितियोंसे बचनेके लिए कुछ बच्चोंने चोरी करना प्रारंभ कर दिया। कुछको रातमें डर सताने लगा, कुछ दूसरे अपने घरका वातावरण अपने साथ स्कूलमें ले आए और प्रत्येक व्यक्तिसे घृणा करने लगे! ऐसे बच्चोंकी सहायता करनेका सबसे सरल तरीका यही है कि उनके साथ खुलकर शांतिसे बातकी जाय न कुछ छिपाया जाय, न किसी बात पर पर्दा डाला जाय। जब सारी बात दूसरेकी चेतनामें आ जायगी तो वह वास्तविकताके अनुकूल चलन का प्रयत्न अवश्य करेगा। अधिकसे अधिक यह एक कामचलाऊ समझौता ही हो सकता है, क्योंकि बच्चा माँ और बाप दोनोंको प्यार करता है, किन्तु अधिकतर माँका ही साथ देता है—क्योंकि उसे डर रहता है कि पिता माँके प्रति कठोर व्यवहार कर सकता है। इस बातका प्रमाण यों भी मिलता है कि ऐसा पिता जिसका दाम्पत्य-जीवन सुखी नहीं होता है, अपनी घृणाका आरोपण बच्चेपर करके यानं बच्चेको उसका माध्यम बनाकर भी माँकी आत्माको चोट पहुँचाता है। यह भी हो सकता है कि बच्चा माँ और बाप दोनोंकी घृणाका पात्र बन जाय, क्योंकि वही उनके अलग होनेमें भी बाधक बन जाता है। 'अगर बच्चा नहीं होता तो हम अलग हो जाते।' बच्चेके स्वास्थ्य और जीवनके प्रति माँकी आवश्यकतासे अधिक उत्कण्ठामें भी कभी कभी यही भावना काम करती रहती है। यह असाधारण डर कि बच्चा कहीं हर आती-जाती मोटरके नीचे न आ जाय, बच्चेसे छुट्टी पानेकी अचेतन, और इसीलिए नैतिकी (Moral) भी, इच्छाका व्यक्तिकरण है। यह कहना कि हर माँ जो अपने बच्चेके लिए ऐसी चिन्ता करती

है, अपने बच्चेकी मृत्युकामना करती है, मूर्खता है। हमें स्मरण रखना चाहिए कि हम सबमें विषमताका कुछ न कुछ पुट अवश्य रहता है।

अनमेल विवाहोंमें सबसे बड़ा खतरा यह है कि स्त्रीका जो प्यार अपने पतिके प्रति होना चाहिए, उसे वह अपने पुत्र पर आरोपित कर देती है। मैं एक ऐसा उदाहरण देता हूँ जिसमें स्त्रीका अपने पतिके प्रति प्रेम बहुत पहले खतम हो चुका था। लैंगिक प्रेम का व्यक्त होना तो आवश्यक है ही। इस उदाहरणमें माँ बिल्कुल अज्ञातरूपसे अपने चौदह वर्षीय पुत्रके प्रति लैंगिक प्रेम प्रकट करती है। जब माँ और पुत्र चुम्बन करते हैं, तो उस चुम्बनमें वासना होती है। पति पर इसकी जो प्रतिक्रिया होती है, वह स्वाभाविक है। वह अपने पुत्रसे अनजाने, अनजाने घृणा करता है और साधारणसे साधारण बात पर उसे पीट बैठता है। इस उदाहरणमें बापकी ईर्ष्या उसके बचपनके जीवनसे सम्बन्धित है। उसका लड़का उसके छोटे भाईका प्रतीक है, और इस प्रकार पिताके बचपनके समयका त्रिकोण फिरसे सामने आ जाता है। माँ, बड़ा लड़का, छोटा लड़का! इस उदाहरणसे जटिल बच्चों की समस्याको सुलझानेकी कठिनाइका अनुमान किया जा सकता है।

विवाहमें क्लेशका कारण शारीरिक भी होता है। कई औरतें ऐसी होती हैं, जिन्हें मैथुनमें—या तो पतिके अज्ञान के कारण तथा उसके दमनके कारण या अपने ही नियमनसे—कोई आनन्द नहीं मिलता। मैं ऐसे कई जटिल बच्चोंसे परिचित हूँ जिनकी समस्याका मूल कारण पिताकी नपुंसकता थी। नपुंसकता का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण इस पुस्तकका विषय नहीं है। यहाँ तो हम केवल इसी बात पर विचार कर सकते हैं कि कुटुम्बपर उसका क्या प्रभाव पड़ता है? एक माँ तो अपने बच्चे को बिस्तर से बाँधकर पीटती थी और इस प्रकार अपनी लिंगैषणा को तृप्त करती थी। एक दूसरी माँ में अपनी बच्चीके स्वास्थ्य के लिए नाना प्रकारके विकट भय पैदा हो गये थे, किन्तु उनके पीछे बचपनकी कुछ धार्मिक ग्रन्थियाँ भी काम कर रही थीं। एक और दूसरी माँने, जिसकी कामेच्छा नष्ट हो चुकी थी, अपने पुत्रकी जिन्दगी ही बरबाद कर दी, उसने उसे यह सिखाया कि 'काम' से संबंध रखनेवाली हर चीज गन्दी होती है। एक नपुंसक पिता भी

अपने बच्चोंमें कामके प्रति ऐसे ही विचार भरता है ? मैं ऐसे ही एक आदमी के पुत्रकी बात जानता हूँ। वह बेचारा गरीब पुत्र जानता था कि घरमें कहीं कुछ बिगड़ा हुआ अवश्य है, लेकिन कहाँ-क्याके बारेमें वह कुछ न जान सका। जब उसने देखा कि उसका पिता 'काम' से घृणा करते हुए भी गन्दी गन्दी कहानियाँ अपने लड़के-लड़कियों को सुनाता था, तो वह और भी अधिक परेशान हो गया। मैंने उसकी माँ को इस बात पर राजी किया कि जब उसका लड़का पन्द्रह वर्ष का हो जाय तो वह उसे सच-सच बात बता दे। लड़का पहलेसे अब कहीं अधिक सुखी है और अपने काममें अधिक रचनात्मक है।

जब मैं उस अज्ञानके बारेमें सोचता हूँ जिससे पति अपनी पत्नीको मैथुन में आनन्द प्रदान नहीं कर सकता, तो मैं एक ऐसे बुद्धिशील समाजकी कल्पना (मनोभावना) करने लगता हूँ, जो अपनी शिक्षामें कामशास्त्रको भी सम्मिलित करेगा। मैं असंतुष्ट माताओंके बच्चोंकी ओरसे ऐसी प्रार्थना करता हूँ। डा० मेरी स्टॉप्स या दूसरोंकी रचनाएँ उनकी पीढ़ीका बहुत ही थोड़ा लाभ कर सकेंगी क्योंकि विक्टोरियन-कालके मुर्दा नैतिक सिद्धांत अब भी हमारे जवान बच्चोंपर हावी हैं।

जटिल बालकोंका मेरा लम्बा अनुभव है, इसीलिए मैं यह किताब भी लिख रहा हूँ। मैं अभिभावकोंसे प्रार्थना करता हूँ कि वे समस्याकी जड़ अपने आपमें खोजें। मनोविज्ञानके आजके विकास क्रमको देखते हुए तो मैं मनोविश्लेषणके सिवा और कोई ऐसी युक्ति नहीं जानता, जिससे व्यक्ति अपने बारेमें जान सके। दुर्भाग्यवश मनोविश्लेषण सीमित है और उस तक पहुँचनेका मार्ग भी कठिनाइयोंसे भरा हुआ है। एक तो उसमें पैसा बहुत पड़ता है, और दूसरे उसमें समय भी बहुत लगता है। 'प्रान्तीय नगरोंमें उसकी सहायता प्राप्त कर सकना असंभव है। समयके साथ विश्लेषण की पद्धति और परिस्थितिमें भी सुधार अवश्य होगा किन्तु अभी तो बहुत कम लोग ऐसे हैं, जिनके पास पैसा और समय दोनों हों! वियनामें स्टेकेलने विश्लेषण कालके घटानेका बहुत महत्त्वपूर्ण प्रयत्न किया है। फ्रॉयडवादियोंका मत है कि तीन या छः महीनेका विश्लेषण तो अधूरा होता है। सच है लेकिन, विश्लेषण कैसा भी हो और चाहे कितना ही लम्बा क्यों न हो, कभी पूर्ण तो हो ही

नहीं सकता। और फिर जब तक कोई स्वयं मनोविश्लेषक बननेका विचार न करता हो, तब तक अज्ञात मनके संपूर्ण विश्लेषणकी कोई आवश्यकता नहीं होती। आवश्यकता इतनी ही है कि उन ग्रंथियोंका हल पा लिया जाय जो व्यक्तिको सुखी होनेसे रोक रही हैं। स्मरण रहे—विश्लेषण मानसिक बीमारियोंकी सर्वरोगनाशक दवा नहीं है। वह पागलपनका इलाज नहीं कर सकता। और न मनोविश्लेषण पागलपन जैसी ही अन्य कई बीमारियोंका कोई इलाज कर सकता है। मनोविश्लेषण तो एक ऐसा विज्ञान और कला है जो बीमारके सहयोग पर निर्भर करता है। मैं कमसे कम चार ऐसे व्यक्तियोंको जानता हूँ, जो एक मनोविश्लेषकसे दूसरेके पास घूमते फिरते हैं 'इस आशासे कि कोई ऐसा मसीहा मिल जाय, जो उन्हें ठीक कर दे।' ऐसे लोग अक्सर अच्छे नहीं हो सकते। स्वस्थ होनेकी उनकी इच्छा भी नहीं होती। हर असफलताके बाद बीमार कहता है—'दूसरा विश्लेषक भी मेरी सहायता न कर सका! वह किसी कामका नहीं है। कोई भी किसी कामका नहीं है। केवल मैं ही अपनी रक्षा कर सकता हूँ अगर मैं प्रयत्न करूँ तो!'—ऐसे लोग महा अहवादी होते हैं।

जटिल बच्चोंके अभिभावकोंके साथ बड़ी मुश्किल तो यह होती है कि वे यह मानना ही नहीं चाहते कि बच्चेकी हालतसे उनके अपने मानसिक जीवनका भी संबंध होता है। खास कर पितागण तो यह मानते ही नहीं। अपने बच्चेकी सहायता करनेके लिए माताएँ सब कुछ करनेके लिए तत्पर रहती हैं, जब कि पिता इस विचार ही को हँस कर उड़ा देते हैं कि उनके बच्चेकी विकृत मानसिक परिस्थितिके लिए वे भी एक हद तक जिम्मेदार हैं। मेरा यह बड़ा ही दुःखपूर्ण अनुभव है कि गलत रास्ते जाते हुए पिता को मनोविश्लेषण करवानेकी सलाह देना बिलकुल व्यर्थ होता है। ध्यान रहे, जटिल बच्चा वह बच्चा है जिससे घृणाकी जाती है और समीमाता-पिता अपनी घृणासे चिपट रहना चाहते हैं।

अभिभावक जब विश्लेषण करवानेसे इनकार करते हैं तो उसके पीछे भय की एक भावना होती है। और वह यह कि 'अगर मैं अपनी वास्तविकता जान लूँगा तो मुझे पुराने रास्ते छोड़कर नए तरीके इख्तियार करने पड़ेंगे। मैं अपने मनकी वास्तविक दशाओंको जाननेके परिणामोंका सामना कैसे कर सकूँगा!'

यह कहना कि 'यह मनोविज्ञान आदि सब मूर्खता है। मुझमें कोई दोष है ही नहीं। मेरा लड़का नालायक है और उसके साथ जैसा करता आया हूँ, वैसा ही व्यवहार करूँगा,'—अपने आपको धोका देनेका एक ढंग है।

यह तो जानी हुई बात है कि जिसकी मानसिक दशा विकृत होती है, उसे, अपनी दशामें न-समझमें आनेवाला एक गुप्त आनन्द प्राप्त होता है। हर बीमार उसके अपने विश्लेषणके समय झगड़ता है, क्योंकि वह अपनी दशासे अलग नहीं होना चाहता। इस क्रियाके लिए विशेष नाम है—प्रतिरोध। बच्चेकी दशा भी ऐसी ही होती है। अभिभावकोंको अपने बच्चोंकी गलतियोंमें एक विचित्र प्रकारका आनन्द मिलता है। यह आनन्द अज्ञात होता है। कई माताएँ अपने बीमार बच्चे मेरे पास लाईं और फिर छ महीने बादही जबकि वे बच्चे सुखी और स्वस्थ होनेके रास्ते लग गए थे मामूलीसे बहानेपर उन्हें हटा ले गईं। बच्चा माँका एक भाग होता है। बच्चेकी मानसिक विकृति, माँ की मानसिक विकृति होती है। माँ अपनी या बच्चेकी बीमारीको दूर नहीं करना चाहती। यह बात बड़ी बेढगी-सी मालूम होती है, लेकिन है सच। मैं अभिभावकसे कहता हूँ कि "जब तुम्हारा बच्चा छुट्टियोंमें घर चला आय तो उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना कि जैसा हम यहाँ स्कूलमें करते हैं। सजा मत देना। उसे अपना जीवन जीनेकी स्वतंत्रता देना। अगर वह गाली देकर भी अपनी भावनाएँ व्यक्त करे, तो सहन कर लेना।" लेकिन फिर भी, वह दमनके अपने पुराने तरीके काममें लाता ही है। मजा यह है कि ऐसा अभिभावक सचमुच अपने बच्चेको सुधरा हुआ देखना चाहता है। दुर्भाग्यसे सचाई यह है कि बच्चे पर अभिभावकके ज्ञात मनसे अधिक अज्ञात मनका प्रभाव ज्यादा पड़ता है। यदि कोई माता केवल अपने प्रगट मनमें यह सोचती है कि काम वृत्तिमें कोई बुराई नहीं है, तो उसकी बातें बच्चेको हानि ही पहुँचायेंगी, माँके खुले शब्दोंके बावजूद भी बच्चा सत्य ताड़ जायगा, यह समझ जायगा कि कामवृत्ति अवश्य कोई गंदी वस्तु है और उसमें हानि है।

क्लेशपूर्ण विवाहोंमें गलतफहमी और दुखोंका एक कारण यह भी होता है कि कई लोग प्रतीकों (Symbols) से विवाह करते हैं। हमारे प्रथम प्रेम-पात्र लोग जीवनमें बहुत अधिक महत्त्व रखते हैं, क्योंकि वे हमारे कुटुम्बके

होते हैं—एक अर्थमें हर पुरुष अपने प्रथम प्रेम पात्र की ही खोज करता है, हर स्त्री अपने पिताकी खोजमें रहती है। भाई, बहिनकी, और बहिन, भाई-की खोज करता है। मैं कई ऐसे पुरुषोंको जानता हूँ, जिनका विवाहित जीवन इसलिए दुःखी था कि उनकी प्रथम प्रेम पात्र उनकी अपनी बहिनें थीं। एक आदमी तो हर ऐसी लड़कीके प्रेममें पड़ जाता था कि जो थोड़ा-सी भी उसकी बहिनसे मिलती-जुलती होता थी। जिस किसीके बाल लाल और आँखें नीली होती थीं। अंतमें विवाह भी उसने एक ऐसी ही लड़कीसे किया, जिसके बाल लाल थे और आँखें नीली। निसर्गतः उसकी पत्नी उसे सतुष्ट न कर सकी थी, क्योंकि वह तो मात्र 'स्थानापन्न' थी इसीलिये परिणाम, जब देखो तब एक दूसरेकी गरदन पर सवार! अक्सर मेरा वास्ता ऐसे बच्चोंसे पड़ता है जिनकी माँ युवती और पिता वृद्ध होते हैं। ऐसी हालतमें लड़की अपने पिताके प्रतीकसे विवाह करती है। कोई कारण नहीं है कि ऐसे विवाह सुखी न हों—या कमसे कम निभाए न जा सकें—यदि दोनों ही अपनी ग्रथियों को समझलें, किन्तु दुर्भाग्यसे ये ग्रथियाँ अज्ञात ही रह जाती हैं और बादमें जाकर घृणामें व्यक्त होती हैं, जो कुटुम्बका ही सत्यानाश कर देती हैं।

ऐसे समय खतरा यह होता है कि माँ या बापमें बच्चके प्रति लैंगिक प्रेम पैदा हो जाता है। कौटुम्बिक व्यभिचारके डरसे ऐसी भावना एकदम दबा दी जाती है। नौजवान पुत्री पिताके लिए अक्सर पत्नीका प्रतीक होती है, जिसमें कभी सौंदर्य और ताजगी थी! माँ इसका अनुभव कर लेती है, और पुत्रीसे घोर ईर्ष्या तथा घृणा करने लगती है। जब माँ अपने बेटेको बहुत अधिक प्यार करने लगती है, तब भी ऐसी ही परिस्थिति पैदा हो जाती है। अगर लिंगपक्षका इतना दमन न किया जाता तो कौटुम्बिक व्यभिचारका खतरा बहुत कुछ कम हो जाता। जीव-विज्ञानकी दृष्टिसे मेरे विचारमें कौटुम्बिक यौन-संबंधमें कोई बुराई नहीं है। पशुओंपर प्रयोग करने वाले कहते हैं कि ऐसे कौटुम्बिक यौन संबंधसे पैदा हुए बच्चे उतने ही मजबूत होते हैं जितने कि और। कौटुम्बिक-व्यभिचारके निषेधका उद्गम अभी तक एक रहस्य बना हुआ है। संभव है प्रारंभमें इस निषेधका उद्देश्य माँ और पुत्रके यौन संबंध को वर्जित करना रहा हो। प्रकृतिकी ओरसे पिता और पुत्री, या भाई

और पारिवारिक वैमनस्यके विरुद्धमें कोई निषेध नहीं है। ऐसे बच्चों
में बेटियोंमें अधिक कामुकता मानता हूँ। माँ और पुत्रकी तुलनामें पिता
और पुत्रीके प्रति यौन-आकर्षण अधिक होता है। कई पिता अपनी पुत्रीके स्नेह
प्रदर्शनके प्रति पुत्रियोंसे अधिक नर्म रहते हैं। अक्सर यह पाया गया है कि
लड़कियोंकी मानसिक अवस्थामें विकृति तभी प्रारंभ हो जाती है, जब पि
उनके प्रति कठोर बर्ताव हो जाता है। लड़की सहसा देखती है कि व
पिता उसके स्नान करने जाता है, तो दरवाजा बन्द कर लेता है। अपनी गा
को घुटनों पर बिठाना भी वह बन्द कर देता है। लड़की इस बातके अर्थ
नहीं समझ पाती किंतु इसको अपना मन समझ जाता है। यह उसा
का यौगिक रूपसे उसके दिमागमें काम-वृत्ति जागृत कर देता है—यानी अब व
बड़े अच्छी माँ की बात दिखाता है—तो वह उसे अपने पाससे हटा देता है।
मेरे पास एकबार एक तरुण लड़की आई—समाजके लिए जो एक घोर समस्या है,
यहाँ मान उसके जीवनमें तीव्र इच्छा थी, याने नगा आदमी देखनेकी। इस
लड़कीका पिता उसके साथ, जब तक कि वह चौदह वर्षकी न हो गई, नगा
नहाता था और एक दिन उसने स्नान घरका द्वार बंद कर दिया। उसका मन
किसी काममें न लगा। वह पढ़ न सकी, खेल न सकी। पिताको समझाना
व्यर्थ था, क्योंकि यौनको वह गंदी वस्तु समझता था। एक दिन इस लड़की
ने कहीं नंगा आदमी देख लिया और उसे संतुष्टि मिल गई, क्योंकि वह हर
तरहकी वस्तुमें मन लगाने लग गई थी।

कौटुम्बिक यौन-संबंधके अवांछित निषेध बहुत हानि कर सकते हैं। यदि
कोई अभिभावक अपने कौटुम्बिक यौन-संबंधी विचारोंके प्रति सचेत रहता है,
तब तो वह अपने बच्चोंके साथ बिना किसी डरके रह सकता है। पितामें
पुत्रीके प्रति थोड़ी बहुत यौन भावना होना स्वाभाविक है। यही दशा माँ
और पुत्रकी है। इसमें शरमानेकी कोई बात नहीं है। यह कोई विकृति नहीं है। यह
कोई ऐसी वस्तु नहीं कि जिसके विरुद्ध संघर्ष करनेकी आवश्यकता पड़े। इसे
दबाना यानी मनकी गहराइयोंमें धकेलना, तो बच्चेके लिए बहुत खतरनाक हो सकता
है। एक खुशमिजाज, उच्च दृष्टिकोणके पिताने जो अपनी सात वर्षकी बच्ची
के चरित्रभ्रष्ट होनेकी आशंकासे परेशान हो उठा था—क्योंकि एक आदमी उस
पर कुछ अधिक ध्यान देने लगा था, मुझसे कहा— 'गोली मारो इसे, मैंने एक

खोज की है। मैं उसकी नैतिकता या अनैतिकताके विषयमें तनिक भी चिन्तित नहीं हूँ। मैं मात्र ईर्ष्या करता हूँ।" नैतिकताके उद्गम पर यह एक ध्यान देने योग्य विचार है। आत्म ज्ञानके लिए भी यह एक अच्छा तर्क है। निरोधित इच्छा ही क्लेशका कारण होती है। यदि कोई आदमी स्पष्टरूपसे सोचता हो मेरी पुत्री मेरी लिंगैषणा भड़काती है' तो वह परिस्थितिसे सहज ही निपट सकता है। सचाई तो यह है कि परिस्थिति अपने आप सुलझ जाती है, चेतना आकर्षणको मार डालती है। यदि इच्छा आदमीके अज्ञात मनमें दबी रहेगी, तो उसकी लड़कीसे उसके संबंध दुखपूर्ण ही होंगे। इसीलिए जब कोई स्त्री अपने पतिके प्रति अपने दुखका सचाईसे सामना करती है कि मैं उसे अब प्यार नहीं करती,' तो समझ लेना चाहिए कि यह मानसिक स्वास्थ्य की ओर कदम बढ़ा रही है। दूसरा रास्ता तो जाना हुआ है ही, एक दूसरेसे घृणा करनेवाले, परस्पर एक दूसरेके, मधुमें डूबे हुए अत्यन्त प्यारभरे शब्दोंसे संबोधित करते हैं —प्रिये, प्रियतम, लेकिन उनका जीवन नरक सा बन जाता है। सत्य दबा दिया जाता है और बेचारी स्त्री प्रेमकी 'स्थानापन्न' वस्तुओंमें सुख खोजनेका यत्न करने लगती है। यह नए धर्मों, नारी जातिके आन्दोलनों, या अध्यात्मवाद, और न जाने किस किसमें मन लगाती फिरती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे यह बात बिलकुल ठीक है कि स्त्रीका स्थान घरमें है। जब वह अपने घरसे बाहर सुख खोजती है, तो इसका मतलब यही होता है कि वह प्रेमकी भूखी है और उसका मन कटुतासे भर जाता है।

एक गम्भीर समस्या उस माँ की भी होती है, जो सदा अपनी बीती तरुणाई का ख्याल करती रहती है। हजारों ऐसी प्रौढ़ औरतें हैं, जो अपनी तरुणाईके आकर्षणोंको कभी भूल ही नहीं पातीं, 'तब मैं सुन्दर थी और लोग उनकी सराहना करते थे। वे उनके चारों ओर घूमा करते थे।' किसी भी नृत्य घरमें आपको ऐसी औरतें मिल सकती हैं जो अपने मुँहपर पाउडर लगाती हैं, बालोंको रंगती हैं और फिरसे तरुण बननेका प्रयत्न करती हैं। 'आमोद प्रमोद की भूखी माता'से बढ़कर करुण वस्तु मैंने और नहीं देखी। साधारणतः चालीस वर्षकी उम्रके आकर्षणोंके प्रति बढ़ी उम्रमें कोई मोह न होना चाहिए। नए आकर्षणोंकी खोज करनी चाहिए व्यापारमें, विज्ञानमें, कलामें, गृहस्थीमें, बौद्धिक कार्योंमें। नृत्यकी शौकीन माताको यह सब कुछ नहीं होता। उसके

जीवनका एकमात्र उद्देश्य होता है—लोगों को आकर्षित करके उन्हें अपना बनानेका। उसका दाम्पत्य जीवन असफल होता है। कोई औरत एकके साथ प्रसन्न रह भी कैसे सकती है, जबकि उसके चारों ओर उसके प्रशसकोंकी भीड़ लगी रहती है। वह अच्छी माँ कभी नहीं बन सकती, क्योंकि मानसिक दृष्टि से वह बच्ची ही होती है। गत ग्रीष्म ऋतुमें मैं उत्तरी इटलीमें अजावियामें था। वहाँ लीडोमें स्वाभाविक रूप-रंगकी बहुत सी सुन्दर लड़कियाँ थीं। किन्तु वहीं ऐसी कई माताएँ भी थी, जिनके चेहरे रंगे हुए थे और जिनके गालोंपर लीपा-पोती की हुई थी। वे तरुण लड़कियोंसे प्रतिस्पर्द्धा करनेका करुण प्रयत्न कर रही थीं—करुण, क्योंकि उनसे कोई धोखा नहीं खाता था। सच है कि सौंदर्य के लिए आदमी बहुत कुछ कर सकता है। किन्तु यह भी सच है कि जो लड़की यह कहती है कि वह सुन्दर होनेसे चतुर होना अधिक पसन्द करेगी, अपने-आपको धोखा देती है। हमें मान लेना चाहिए हम, सबसे अधिक ध्यान अपनी सूरत-शकलपर देते हैं। अपनी सूरत-शकलके प्रति पुरुष भी उतना ही सचेत होता है जितनी कि औरत। सभी जवान और आकर्षक बनना चाहते हैं। अधेड़ उम्रके लोग अपनी गजी खोपड़ियोंपर बने बालोंपर लीपा-पोती करते हैं। हम अपने शरीर को बहुत अधिक महत्व देते हैं और सभी अपनी शारीरिक खामियोंको छिपाने का प्रयत्न करते हैं। वे अपने नकली दाँतोंसे, और अन्य वृद्धिको स्वाभाविक अवस्थामें रखनेके लिए कटि बन्धनोंकी सहायता लेनेमें लज्जित होते हैं। भूतपूर्व सिपाही अपनी नकली टाँग और हाथसे बहुत शर्मिन्दा होते हैं। अतः कोई पुरुष किसी भी स्त्रीपर जो अपने रूप-रंगको ठीक रखनेका प्रय न करता है, ताना मारनेका अधिकार नहीं रखता। हम सब में कमजोरियाँ होती हैं—क्या पुरुष और क्या स्त्री। (अजावियामें कुछ दिनों तक तो मुझे अपनी सफेद त्वचा पर बड़ी शर्म आती थी किन्तु एक पखवारेके बाद ही मैं सफेद त्वचावाले नवागन्तुकोंपर तिरस्कारसे मुस्कराने लग गया था।)

लेकिन आमोद प्रमोदके पीछे भागनेवाली माताकी कमजोरीको हँसकर टाल देनेसे तो काम न चलेगा। एक गंजी खोपड़ीका आदमी, जिसकी 'चाँद'पर तीन ही बाल क्यों न हो, अपने काममें चतुर हो सकता है किन्तु ऐसी माता कभी चतुर हो ही नहीं सकती; विशेषकर अगर ऐसी स्त्री पर पूरे कुटुम्बका भार होता है, तो परिस्थिति और भी खराब हो जाती है। क्योंकि

ऐसे कामर्म उसकी योग्यता न कुन्द-सी होती है। उसका गहन 'आत्मप्रेम' उसे अपने पुत्र और पुत्रियोंके साथ स्वाभाविक व्यवहार नहीं करने देता। वह चाहती है कि वे उसकी प्रशंसा करें दुर्भाग्यसे अक्सर वे प्रशंसा कर भी बैठते हैं। लेकिन यही कारण है कि जीवनके प्रति उनका (बच्चोंका) रुख बड़ा खतरनाक हो जाता है, क्योंकि जीवनमें भूतकालको वर्तमानका आधार बनाकर चलनेसे बढ़कर और कोई आदत खतरनाक नहीं होती। पुराने मापदण्डोंको और विशेष कर यदि वे स्वयं की कीर्तिसे संबंध रखते हैं तो त्यागना बहुत कठिन होता है। नृत्यमें मेरी रुचि सदासे रही है, और वैसे मैं अच्छा नाच भी लेता हूँ। जब मेरी चरण भंगिमाको देखनेके लिए काफी लोग होते हैं, तो मुझे नाचना बहुत भाता है। हालही में मैंने बर्लिन और वियनाके नृत्य घरोंमें नृत्य किया है वहाँ जिस बातसे मुझे आघात पहुंचा वह यह कि कई नौजवान लोग मुझसे अच्छा नाच रहे थे। और यह कोई ऐसी बात न थी कि जिसे देखकर मैं सुखी होता। यदि नृत्य मेरे जीवनका एक बहुत ही छोटा भाग न होता तो यह अनुभव बहुत दर्दनाक साबित होता। और अब तो मेरा आत्मप्रेम भाषण देने या अभिनय करनेमें व्यक्त होता है।

जीवन क्रम कुछ है ही ऐसा कि उसमें कई वस्तुएँ हमें छोड़ देनी पड़ती हैं। पुराने मूल्योंको त्यागनेके लिए हमें सजग प्रयत्न करने चाहिए। बुढ़ापेसे न डरना चाहिए और न उससे घृणा ही करनी चाहिये। नई संततिके प्रति 'हमारी ईर्ष्याकी भावना'को यदि हम समझ लेते हैं, तो वह बहुत अधिक हानि नहीं कर सकती। आमोद प्रमोदके पीछे भागनेवाली माताओंके साथ सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि वे अपनी ही विकृतियों या ग्रंथियोंसे बेखबर होती हैं। उनकी मुक्ति ऐसे ही काम द्वारा हो सकती है, जिसमें उनकी अभिरुचि हो। लेकिन एक औरतका घर नीरस भी तो हो सकता है। कई स्त्रियोंके लिए घर के काम-काज व्यर्थके झंझट होते हैं। भविष्यके समाजमें पत्नीके लिए घरसे बाहर भी काम होंगे। आजके अधिकांश सुखी विवाह वे हैं, जिनमें पत्नी घरसे बाहरके कामोंमें दिलचस्पी लेती है। नृत्यकी शौकीन माताओं न अपने घरमें दिलचस्पी होती है और न अपने बच्चोंमें। वह अक्सर दुखी ही रहती है। सच तो यह है कि वे सभी लोग जो आनन्द प्राप्त करनेके पुराने साधनोंकी ओर लौटते हैं, वे सभी दुखी होते हैं। उदाहरणार्थ, किसी बच्चेको

पीटनेपर वह कभी कभी अँगूठा चूसने या बिस्तर ही में पिशाब कर देने आदि की आदतोंकी ओर लौट जाता है। अब जब हम बच्चेको दण्ड देकर या भय दिखाकर ठीक' करना चाहते हैं, तब तब वह छुटपनकी आदतोंमें अवसर्पण करता (लौट) जाता है। इसलिए नृत्यकी शौकीन माँके लिए जब कोई 'समय' उसके सिंगारको बेकार बना देगा और उसकी ढलती उम्र, उसके यौवनको एक ओर धकेल देगी, तब वह अपने बचपनमें अवसर्पणकर जायगी, यह उसकी मानसिक विकृतिका लक्षण होगा।

मानसिक विकृति सदा ऐसे जीवनसे बच निकलनेका परिणाम होती है जिसका सामना नहीं किया जा सकता।

अभी उस दिन बातचीतके दौरानमें एक माताने मुझे बताया कि स्काटलैंडके एक प्रसिद्ध स्कूलमें उसके चौदहवर्षीय पुत्रको बेंत और हंटरसे पीटा जाता है। माताके मुखपर क्षोभका कोई चिन्ह तक न था। यह माता एक पढ़ी लिखी स्त्री है फ्रॉयड, आँइस्टीन, और बोल्शेविज्ममें रुचि रखती है, फिर भी अपने पुत्रको जंगली अध्यापकों द्वारा बेंतसे पीटे जाने पर भी विरोधमें उँगली तक नहीं उठाती। हजारों माता-पिता स्कूलोंमें प्रचलित ऐसे बेहूदे नियंत्रण को केवल स्वीकार ही नहीं करते, बल्कि दंड देनेका यही ढंग अपने घरोंमें भी काममें लाते हैं। चूँकि माता-पिता और बच्चेमें भावनात्मक (Emotional) सम्बन्ध होता है, और चूँकि घृणा की भावना प्रेमकी भावनाके साथ सदा लगी रहती है। इसलिए कुढ़कर, क्रोधित होकर, माता-पिता का बच्चे को पीटना तो समझमें आता है, किन्तु स्कूलमें, जहाँ बच्चे और अध्यापकके बीचमें ऐसा कोई गहन भावनात्मक संबंध नहीं होता, बेंतसे पीटना तो अक्षम्य अपराध है। 'पीटना' सदा घृणा प्रदर्शित करता है। उसे उचित ठहरानेका प्रयत्न इस तर्कसे किया जाता है कि मैं तो यह बच्चे की ही भलाईके लिए कर रहा हूँ।' यदि कोई माता या पिता बजाय यह कहनेके कि—"पीटने से तो बच्चेसे अधिक मुझको पीड़ा होती है" साहस करके यथेष्ट स्पष्ट यह कहदे कि 'मैं तुम्हें इसलिए पीट रहा हूँ कि तुमसे घृणा करता हूँ—" तो बच्चेपर उसका प्रभाव कम ही हानिकारक होगा। 'ईमानदारी' सदा सच्ची दया के मोतीका काम करती है।

मेरा ऐसे कई बच्चोंसे वास्ता पड़ा है जिनका जीवन-नियंत्रणके कारण नष्ट हो गया। नियंत्रणका आधार 'भय' होता है। 'ईश्वर' और 'पाप' की भाव-

नाओं का उद्देश्य भी बच्चोंमें भय पैदा करना होता है। चूँकि 'नियन्त्रण' घृणाका प्रदर्शक है, अत जिस पर भी नियन्त्रण किया जायगा वह भी घृणा करने लगेगा। जिन बच्चोंमें भय नहीं होता, वे कभी घृणा नहीं करते। मेरे स्कूलमें कभी किसीने किसी हकलाते या तुतलाते हुए लड़केकी हँसी नहीं उड़ाई, किन्तु जिन स्कूलों में नियन्त्रण ही सब कुछ है, वहाँके लड़के अक्सर धृष्ट और उद्दण्ड होते हैं। एक बार इंगलैंडके सबसे प्रसिद्ध पब्लिक स्कूल (Public school) से एक लड़का मेरे स्कूलमें आया उसने मुझे बताया कि उसकी लँगड़ी टाँगके कारण उस स्कूल लड़के उसे चिढ़ाते थे। एक दूसरे पब्लिक स्कूलके लड़केने बताया कि उसके तुतलानेके कारण स्कूलमें उसका जीवन नरकसा बन गया था। छोटे बच्चोंके स्कूलोंमें लड़के अपने से कमजोर लड़कों को बहुत परेशान करते हैं। इस सबकी प्रतिक्रिया एक ही हो सकती है—घृणा। फ़ौजी मनोवृत्तिक दकियानूसी बाप कहते हैं— पिटाईसे मुझे लाभ हुआ था और जिससे मुझे लाभ हुआ था उससे मेरे लड़केको भी अवश्य लाभ होना चाहिए। (ऐसे अध भक्तों क "टप्राय बच्चे अक्सर मेरे पास भेजे जाते हैं।) 'पब्लिक स्कूलसे निकला हुआ पुराने विचारोंका आदमी' यदि अपने बच्चोंके लिए वैसी ही नियन्त्रणात्मक शिक्षा देना चाहे तो बात कुछ समझमें आती है, किन्तु माताएँ कैसे यह सब सहन कर लेती हैं, यह नहीं समझमें आता। निम्नवर्गके अभिभावक अक्सर ऐसे नियन्त्रण का विरोध करते हैं, किन्तु वर्तमान कानून भी तो अत्याचार हीका साथ देता है। अत बच्चोंके जीवनमें आँसू भर देनेवाली प्रणालीको सहन करनेके पीछे कुछ न कुछ कारण अवश्य है। माता पिताके प्यार के विषयमें यह सोचना कि उनका प्यार सदा नि स्वार्थ होता—बिल्कुल गलत है। जब देखने में बहुत प्यार करनेवाली माताको मैं अपने बच्चे को पीटते हुए देखता हूँ, तो मुझे मान लेना पड़ता है कि उसका प्यार प्यार नहीं है।

तो, संक्षेपमें बात यह है कि बच्चोंके प्रति माता-पिता का रुख नि स्वार्थ नहीं होता। यह स्वार्थसे भरा होता है। बच्चा सम्पत्ति' है जिस पर उसके अभिभावकों का स्वामित्व होता है। उनके विचारसे उसे ऐसा होना चाहिए कि वह अपने स्वामी की शोभा बढ़ा सके। यह बच्चे केवल इसलिए दुखी हो जाते हैं कि उनके अभिभावक पड़ोसियों पर अच्छा प्रभाव

चालना चाहते हैं उदाहरणके लिए रविवारके दिन कपड़े पहनने और आवश्य कतासे अधिक सफ़ाई रखनेका बेमानी रिवाज। समस्याका मूल आत्मैक्यकी स्थापनामें है। अभिभावक बच्चेके साथ तादात्म्य स्थापित कर लेता है। एक माता जो चित्रकार बनना चाहती थी। किन्तु अपने उद्देश्यमें सफल नहीं हो पाई, वह अपनी लड़की को चित्रकार बनाना चाहती है। वह इस बातकी ओर बिलकुल ध्यान नहीं देती कि उसकी लड़कीकी इच्छा नृत्य सीखने की है। यूनिवर्सिटी शिक्षासे वंचित पिता अपने लड़के को सदा यूनिवर्सिटीमें भेजना चाहता है जबकि लड़केकी स्वयंकी इच्छा हवाई जहाज चलाना सीखने की होती है।

जब हम नियन्त्रणकी समस्या पर पिता द्वारा बच्चेके साथ तादात्म्य स्थापित कर लेनेके दृष्टिकोणसे विचार करते हैं, तो कुछ-कुछ सचाई हाथ लगने लगती है। बच्चों पर नियन्त्रण करनेके मूलमें बात यह होती है कि स्वयं अभिभावक अपने आपपर नियन्त्रण करना चाहते हैं। अपने आप पर तिरस्कार करनेवाले अभिभावक अपने बच्चोंको पीटे बिना नहीं रह सकते। गंदी मजाकोंमें रस लेनेवाला पिता यदि अपने बच्चोंको भी वैसी ही मजाक करते सुनता है, तो डाँट देता है। हमारे फ़ौजदारी कानून, जेल, यहूदियोंके विरुद्ध जिहाद, युद्ध मनोवृत्ति—इन सबकी जड़में 'स्वात्म घृणा' होती है। 'स्वात्म घृणा' सचमुचमें संसार की सबसे बड़ा समस्या है। 'ईश्वर' और 'शैतान'की धारणा मनुष्यके अपने ही व्यक्तित्वके प्रति विचारोंकी एक झाँकी है। मनुष्य ने अनुभव किया कि यह ईश्वर और शैतान दोनों हैं, क्यों? यह एक पहेली है। होमर लेनका कहना है कि ऐसा संभवत इस लिए हुआ कि आत्मा शरीरके लाखों वर्षों पश्चात् प्रकट हुई। बीते युगमें मनुष्य स्वाभाविक भोजन करता था और भोजनकी खोज करनेमें ही आवश्यक व्यायाम हो जाता था। स्वस्थ पुरुष सदा अपने शरीरकी ओरसे बेखबर रहते हैं। धीरे धीरे जब मस्तिष्कका विकास होने लगा, तो मनुष्यने अपना निर्माता आप होनेका श्रेय पा लिया। उसकी आकांक्षा अपनी आत्माको भी उतना ही संपूर्ण बनानेकी थी कि जितना ईश्वरने उसके शरीरको बनाया था। 'सभ्य मानवका इतिहास' उसकी आत्माको संपूर्ण बनानेके प्रयत्नोंका इतिहास है। संगीत, खेल, दस्तकारी, हर वस्तुमें मनुष्य सदा

सम्पूर्णताके ही पीछे लगा रहता है।

वास्तविक उद्देश्य होना चाहिए था—सुख, प्रसन्नता, किन्तु सम्पूर्णता आदर्शने सुखके आदर्शको पीछे धकेल दिया और अब हमारा उद्देश्य [illegible] गया है—पूर्णता। इस संपूर्णकी खोजका परिणाम हुआ है कि ह[illegible] 'पवित्रता' की सङ्कुचित धारणामें पड़कर हर ऐसी वस्तुको हेय'-'निम्न' मा[illegible] लगे हैं, जो मानव जातिको आनन्द पहुँचाती है। 'संपूर्णता' आनन्दहीनता' [illegible] ही दूसरा नाम हो गया है। ताश, नर्तकियों और मदिरासे इसलिए घृणा नहीं [illegible] जाने लगी कि वे बुरी हैं, बल्कि इसलिए कि वे आनन्द देती हैं। एक स्थ[illegible] पर मैकॉलेने लिखा है, 'प्यूरिटन्स् (सदाचारवादी)—लोग भालूके शिका[illegible] घृणा इसलिए नहीं करते थे कि उससे भालूको पीड़ा होती थी, वरन् इसलि[illegible] कि उससे दर्शकोंको आनन्द प्राप्त होता था।'

चूँकि सम्पूर्णता कभी पकड़ाइ नहीं देती और सदा अप्राप्य रहती है, अतः मनुष्यमें असफलताकी कटु भावना हमेशासे रहती चली आई है। अपने आदर्शतक पहुँचनेकी असमर्थताका उसने बाह्य-संसारपर प्रक्षेपण करके शैतानका आविष्कार कर डाला। जैसे शैतान सपूर्णताके सीधे मार्गसे भटका देनेवाली हमसे अलग एक शक्ति है, वैसे ही ईश्वर भी एक शक्ति है, जो हमें गतिहीनताकी आदर्श स्थिति—स्वर्ग—की ओर आकर्षित करती है। यह कहना कि आदमीका जन्म ही पापसे हुआ है, अपनी असफलताओं-को ढँकनेके लिए मनुष्य द्वारा व्यर्थ एक बहाना है।

मनुष्यके व्यवहारमें एक बात मुख्य होती है वह सम्पूर्णताके पीछे भागे बिना नहीं रहता। आदर्श निर्माण करनेकी बुरी आदत बहुत पुरानी है। धर्म, शिक्षा, नैतिक उपदेश इन सबकी जड़में यही सम्पूर्णता है। 'आदर्शवाद' के नाशके बाद ही प्रगति आरंभ हो सकती है यदि ऐसा कभी सम्भव है तो! संसारके सबसे अद्‌भुत देश रूसने 'धर्म' और 'अर्थ-शास्त्र' के पुराने मापदण्डोंको त्याग दिया है उसने बड़े साहसके साथ ऐसे सब आदर्शोंको त्याग दिया है, जिनके कारण संकट पैदा हो सकते हैं। फिर भी रूसने 'फोर्ड ट्रैक्टर' को अपना आदर्श बनाया है। 'दी जनरल लाइन' नामकी सुन्दर फिल्मका नायक है—एक ट्रैक्टर, है—और नायिका एक 'मिल्क-सेपरेटर'। हो सकता है, सपूर्णत्वकी समस्याका यह अंतिम समाधान हो,—

यह भी हो सकता है कि आदमीके अपने आदर्शोंको ट्रैक्टर और रेडियो तक सीमित कर लेनेपर मानवताकी हालत सुधर जाय। निस्सन्देह आर्थिक समस्याका समाधान भी रूसके साहसपूर्ण प्रयोगसे मिल रहा है, सभव है नैतिक समस्याका समाधान भी वहींसे आए। युद्धमें सम्मिलित होनेवाले सभी राष्ट्रोंमेंसे मात्र रूसने पुन और नए प्रकारसे जीवन आरंभ किया। ब्रिटेनके नैतिकता और व्यापारके मापदण्ड वही रहे जो लड़ाईसे पहले थे। ईटन, ऑक्सफोर्ड, केम्ब्रिज, तथा अन्य स्कूल निर्विघ्नतया वैसे ही अपना काम कर रहे हैं, मानो युद्धमें न एक करोड़ आदमी मरे और न ससारमें कोई रद्दोबदल ही हुए।

बड़े मजेकी बात तो यह है कि धर्मके ह्रासके नैतिकतापर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा (याने उससे किसी प्रकारकी चरित्रहीनता नहीं फैली ?—अनु)। यह तो स्पष्ट है कि ईसाई धम अपनी आजकी अवस्थामें मर सा चुका है। उसका ईमानदारीसे कभी किसीने अनुसरण किया ही नहीं। 'ईसा मसीह प्रथम और अतिम ईसाई थे।' मुनाफाखोरों और युद्धखोरोंने उसका और उसके धर्मका अनुचित लाभ उठाया। किसीने दूसरा गाल फेरनेका कभी प्रयत्न नहीं किया। हमारी जेलें प्रमाणित कर रही हैं कि कोई अपने पड़ोसीसे अपनेही समान प्यार नहीं करता। जिसमें कोई तथ्य न हो ऐसे धर्मको नष्ट कर देना ही अच्छा है। किन्तु जिन लोगोंने ईसाइयतका त्याग किया है, उन्होंने उसकी सबसे बड़ी बुराईको नहीं छोड़ा—याने मान्य उसकी नैतिक धारणाएँ। प्रारम्भमें लोगोंने ईसाई-मत इसलिए ग्रहण किया कि यह मनुष्यकी सम्पूर्णता प्राप्त करनेकी उत्कठा से मेल खाता था। ईसाई मत त्यागा इसलिए जा रहा है कि वह सम्पूर्णत्व की आधुनिक धारणाके साथ मेल नहीं खाता। किन्तु सम्पूर्णत्वका आदर्श तो अब भी ज्योंका त्यों बना है। रूप भले बदल गया हो। बच्चेकी शिक्षासे 'स्वर्ग' और 'नरक' चाहे निकल गए हों, किन्तु उनके स्थान पर 'अच्छा' और 'बुरा' रख दिये गए हैं। अभिभावक अब भी यही विश्वास करते हैं कि बच्चे उस सीधे-सँकरे रास्तेसे भटक जाते हैं जो संपूर्णताकी ओर ले जाता है। स्वय वे अब भी आत्म घृणाके शिकार हैं, और बच्चों पर भी उस अपनी आत्म घृणाका प्रक्षेपण करते हैं।

जैसे जैसे संपूर्णत्वका आदर्श मिटता जायगा, वैसे-वैसे भावी सतानका

और फ्रांसकी सरहदका प्रश्न किसी भी समय बारूदमें चिनगारीका काम कर सकता है। राष्ट्रसंघ तो व्यर्थकी चीज है। कल अगर डेली मेल एक खबर छाप दे कि 'अमरीकन क्रूजरने अंग्रेजी जहाज डुबो दिया, तो पहले भर बाद ही रंगरूट भर्ती करनेवाले दफ्तरोंके सामने भीड़ लग जायगी! गत महान गृह-युद्ध द्वारा दी गई शिक्षाको राष्ट्रोंने ग्रहण करनेसे इन्कार कर दिया, संभव है अगला युद्ध, जब आधी गौरांग जातिको नष्ट कर देगा तो शायद यह सबक सीख लिया जायगा। सबक साधारण है—अपने पड़ोसीको अपने ही समान प्यार करो और अपने आपसे भी उतना ही प्यार करो, जितना तुम अपने पड़ोसीसे करते थे। बच्चेको भय और घृणासे दूर रखो। आगे चलकर वह अपने आप शान्तिप्रिय बन जायगा।

एक बड़ी विचित्र बात यह है कि आदमी, जीनेकी इच्छाके समान, मरनेकी भी कामना करता है। सबको ऐसे सपने आते हैं जो मौतकी इच्छा, या दूसरे शब्दोंमें माताके गर्भमें पुन प्रवेश करनेकी कामना प्रकट करते हैं। अप्राप्य सपूर्णताके पीछे भागनके कारण ऐसी इच्छा हो आना स्वाभाविक है। हमारे अधिकांश आमोद प्रमोद प्रतिदिनकी वास्तविकताओंसे पलायन ही तो हैं! हम उपन्यासों और फ़िल्मोंके नायकोंका आदर्श मानकर जीते हैं। हमारे कुछ विशेष प्रकारके भय और हमारी मानसिक विकृतियाँ यही दिखाते हैं कि हम अनजाने ही मौत और शान्तिके लिए तरस रहे हैं।

अब मैं इन सब बीमारियोंकी मूल जड़पर आता हूँ। मनुष्य अपने शरीर से घृणा करता है। वह यह समझता है कि उसका शरीर उसके अपने उद्देश्य तक पहुँचनेमें बाधा पहुँचाता है। उसकी मृत्युकी इच्छा इस शरीरसे छुट्टी पाने की इच्छा होती है। मैं नहीं जानता हूँ कि शरीरके प्रति इस घृणाका कारण शिशुकालमें व्यतीत किए गए कुछ वर्षोंको मान लेना बेसिर पैरकी बात होगी। माता-पिता या नर्सका पहले बच्चेके शरीरहीसे काम पड़ता है। शरीरकी स्वाभाविक क्रियाओं और शैशवकालीन हस्तमैथुनको लेकर बच्चेको दी गई झिड़की अत्यन्त गहरा प्रभाव छोड़ जाती है। जब उसे यही सिखाया जाता है कि उसका शरीर अशुद्ध है, तो शरीरके प्रति उसको अरुचि ही तो होगी! मैंने देखा है कि जब बच्चोंको पहली बार स्वतन्त्रता मिलती है तो वे पिशाब और टट्टीकी बातोंकी झड़ी लगा देते हैं। नर्सरीमें जितना

अधिक नियन्त्रण (सामाजिक औचित्यकी भावना—अनु०) होता है आपा उतनी ही अधिक बड़ी होती है। यह सब प्रौढ़ों द्वारा निरोधित भावनाओंका व्यक्तीकरण होता है। ऐसे दमनका एक ही परिणाम हो सकता है—शरीरसे अरुचि।

शरीरके प्रति घृणा और साथ ही साथ आत्माका आवश्यकतासे अधिक गुणगान मानव मनकी जन्मजात स्वाभाविक वृत्ति है या नहीं यह एक पहेली है। यदि यह वृत्ति मानव मनसे अभिन्न है तो मानवताका भविष्य अन्धकारमय है। क्योंकि तब घृणाकी ही विजय होती चलेगी। यदि आनेवाले बच्चोंको यह नहीं सिखाया गया कि उनके शरीर अपवित्र नहीं हैं, और यदि ये बच्चे ऐसे प्रौढ़ हो गए जिनमें घृणा अपना घर कर लेगी तो मानव जाति कभी अभिशाप-मुक्त न हो सकेगी। जहाँतक मेरा प्रश्न है मैं नहीं मानता कि शरीरके प्रति घृणा जन्मजात वृत्ति होती है। जर्मनीमें धूपस्नान—(यहाँ नंगे होकर धूपमें बैठना बिलकुल बुराई नहीं समझी जाती। यूरोपमें तो यह 'न्यूडिस्ट' समितियाँ हैं जो अपने कार्यों द्वारा शरीरके प्रति हमारी मूर्खताभरी धारणाओंको ठीक करनेमें लगी हुई हैं।-अनु०) —करनेवालोंके बच्चोंमें यह भावना, मेरे विचारसे नहीं होती, और यदि मैं यह समझता कि मेरे विद्यार्थियोंके बच्चोंमें ऐसी भावनाकी सम्भावना है तो मैं अपने स्कूलको व्यर्थ समझ कर कभीका बन्द कर देता। इसाई मतके समान स्वतन्त्रताको भी कभी मिलनेका अवसर नहीं दिया गया। मानव शास्त्रकी नई विचारधाराके अनुसार प्राचीन मानव, जैसा कि अब तक माना जाता रहा है, हिंसक पशु नहीं था। यह शान्तिप्रिय था और हिंसासे उसका कोई वास्ता न था। अतः आदमीमें जन्मजात अपराधीपन, या धर्मके ठेकेदारोंके अनुसार जन्मजात पापकी बात तो केवल बात ही बात है। दुर्भाग्यसे हमारे स्कूल, हमारी पुलिस और हमारी सेना—ये सब संस्थाएँ जन्मजात पापके सिद्धान्त पर ही काम कर रही हैं। पुलिसके हटा देनेसे अधिकांश लोगों पर किसी भी प्रकारका बुरा प्रभाव नहीं पड़ेगा। मेरी, शॉ, इन्स्टीन, या बॉगरटन, जॉन डकैती करना आरम्भ नहीं कर देंगे। मैं भी अपनी कार और अपने रेडियोका लाइसेंस की फ़ीस देता रहूँगा। पुलिस देशके बहुत कम लोगों पर रोक थाम लगा सकती है और ये बहुत कम लोग आर्थिक

दृष्टिसे बिलकुल पराधीन होते हैं। बड़े आदमियोंसे पुलिसका बहुत कम वास्ता पड़ता है। जन्मजात पापकी भावना गरीबोंके लिए है, पैसेवालोंके लिए नहीं। एक डाकू मेरा मित्र है। उसने मुझे बताया कि लन्दनकी क्लबें और होटलोंमें आधेसे अधिक लोग उचक्के होते हैं किन्तु चूँकि मेरे मित्रने मुझे विश्वास दिलाया कि वह ईटन (Etan) में पढ़ चुका है (और उसपर मेरा बहुत पैसा भी चढ़ा हुआ है) मैं उसकी बातपर विश्वास करनेके लिए तैयार नहीं।

जन्मजात पापकी भावनाको निश्चित रूपसे प्रमाणित करनेके लिए प्रमाण तो बहुत मिल जायँगे। लोमड़ीका शिकार, अपराधियों और बच्चोंको हृदयसे मारना घुड़दौड़, युद्धम दिखाई गई अमानुषिकता, ड्राइंगरूममें बैठ कर बेहूदा वार्तालाप करना, यहूदी विरोधी मनोवृत्ति आदि। मजाकोंके पीछे छिपी हुई घृणा भी इसी भावनाको प्रमाणित करती है—उदाहरणके लिए स्काटलैंडके लोगोंका थोथापन, अमरीकनों द्वारा डींगें हाँकना या यहूदियोंके विषयमें बनाई हुई उनकी मजाकें।

साधारणतया मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त यह है कि मनुष्य जन्मसे ही जंगली, क्रूर घृणासे भरा हुआ और लोभी होता है; किन्तु संस्कृतिके प्रभावसे ये सब दब जाते हैं। जो इन्हें भली प्रकार दबा नहीं सकते, उनके लिए पुलिस और जेलोंका प्रबन्ध किया गया है। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि संस्कृतिका ह्रास हुआ, तो हम सब पशु हो जायँगे और एक दूसरेको खानेपर उतारू हो जायँगे, और यह कि यदि ईश्वर न होता तो हम सब शैतानकी शरण चले जाते।

मैं इसके बिलकुल विपरीत सिद्धान्तका तहेदिलसे समर्थन करता हूँ—कि आदमी हृदयका अच्छा, दयावान् और इमानदार होता है; एक साथ स्वार्थी और परोपकारी होता है। मनुष्यके जीवनमें संस्कृति विष बो देती है। अपराधका कारण क़ानून है। नियन्त्रण बच्चेके स्वाभाविक प्रेमको घृणामें, उसकी अच्छाईको बुराइमें परिणत कर देता है। दण्डसे कभी कोई नहीं सुधरता, बल्कि और बिगड़ जाता है। अब मैं समझ गया हूँ कि अपराध करना एक बीमारी है, जिसके लिए मानसिक अस्पतालोंकी आव-

श्यकता है। क्योंकि बचपनसे ही बिगड़े हुए लड़कोंको मैंने सहानुभूति और प्रेमसे सुधरते पाया है, क्योंकि व्यवहारके सांस्कृतिक मापदण्डोंको हटा देने पर मैंने बुरे लड़कोंको भी अच्छा होते हुए देखा है।

नियन्त्रणको तिलांजलि देनी ही पड़ेगी। कुछ विशेष प्रकारके नियन्त्रण तो सदा रहेंगे ही—जहाजमें एक ही कप्तान हो सकता है और उसकी आज्ञाका पालन करना ही पड़ता है, नर्तकियों पर ऐसा नियन्त्रण तो रखना ही पड़ेगा, जिससे उनके नृत्यमें गति भंगका दोष न आने पाए। घृणा और भयके बिना भी नियन्त्रण रखा जा सकता है—जैसे कि वाद्यवृन्दोंके बजानेमें। सितार बजानेवाला औरोंके साथ गति और समता इसलिए नहीं रखता कि वह आज्ञा भंगके परिणामसे डरता है—जैसे कि विद्यार्थी और सिपाही डरते हैं। रूसमें जहाजमें कप्तान सर्वश्रेष्ठ अधिकारी होता है, किन्तु सामाजिक मामलोंमें उसे खलासियोंके साथ समानताका व्यवहार करना पड़ता है। मुझसे किसीने कहा है कि लाल सेनामें भी यही बात है—कामके बाद अफ़सर सैनिकोंके साथ मित्रके समान व्यवहार करते हैं।

जिस नियन्त्रणको त्यागनेकी बात मैं कर रहा हूँ वह नियन्त्रण है, जिसके हटनेका उद्देश्य बुरे या प्रच्छन्नरूपसे आत्माकी उन्नति करना होता है। घर और स्कूलमें काममें लाया जानेवाला नियन्त्रण इसी श्रेणीका होता है, जिसे हटना चाहिये। लेकिन खेलके मैदानमें लड़कोंको एक पंक्तिमें खड़े कर देने जैसी व्यर्थकी बातसे क्या लाभ हो सकता है? पंक्तिमें खड़े खड़े या क्लासमें बोलनेसे मना करनेका आखिर उद्देश्य क्या है? अध्यापक यह तो कह नहीं सकते कि यह जीवनके लिए तैयारी है, क्योंकि जीवनमें, न तो लोग चुपचाप बेंचपर बैठते हैं, और न पंक्तिमें ही खड़े रहते हैं। नियन्त्रण लादनेका एक ही सच्चा बहाना हो सकता है—कि उससे प्रौढ़ोंके शान्त जीवनमें खलल नहीं पड़ता। नियन्त्रण प्रिय हर व्यक्ति क्रूर (Sadis'—काम विकृतिजन्य परपीड़क) होता है। समाजमें उसका कोई स्थान नहीं होना चाहिए।

भविष्यका भय

[४]

सब माता-पिता अपने बच्चोंके भविष्यके विषयमें चिन्तित होते हैं और कई तो इस भविष्यकी बात सोच-सोचकर मरे जाते हैं। जो माँ-बाप अपने बच्चोंको मेरे स्कूलमें भेजते हैं, वे अक्सर अपने भय और अपनी शंकाएँ तरह-तरहके प्रश्न पूछकर प्रकट करते हैं—'किन्तु जो लड़का सीखने या न सीखनेके लिए स्वतन्त्र है, वह कैसे इस दुनियामें रह सकता है ?' कई लोग अपनी लड़कियाँ भेजते हैं, लड़के नहीं। कारण सीधा सा है—लड़केको कमाऊ होना है, कुटुम्बकी देखभाल करनी है—इस दृष्टिसे लड़कीका बहुत महत्व नहीं होता—किसी न किसी प्रकार उसका विवाह तो हो ही जायगा!

भविष्यकी यह चिन्ता अक्सर भूतके समान पीछे लग जाती है। उसकी दृष्टि सदा एक ओर रहती है उसका पढ़ना लिखना सीख जाय। मुझे यह कहते हुए प्रसन्नता होती है कि कुछ अभिभावक तो ऐसे हैं, जिन्हें साथ रखने पर राजी किया जा सकता है। मेरा सबसे कठिन 'केस' एक ऐसे लड़केका था, जो मेरे स्कूलमें आनेसे पहले हमेशा स्कूलसे भाग जाया करता था। दो बरस तक मेरे स्कूलमें वह जेबोंमें हाथ डाले आवाराकी तरह घूमता रहा। दिन-दिन उसका जी उकताता गया। हाँ, कभी कभी वह बड़े गर्वसे मुझसे पूछता भी था कि मैं क्या करूँ ? मैं कोई उत्तर न देता क्योंकि मैं नहीं जानता था कि वह क्या करना चाहता है। उसके लिए वे दो साल 'शिक्षा' की बीमारीसे अच्छे होनेके लिए आवश्यक थे। अब वह मैट्रिककी तैयारी कर रहा है। इस लड़केकी माता मुझपर श्रद्धा रखती थी और उसने बड़े सबसे काम लिया। कई बार अभिभावक समझौता कर लेते हैं—

"देखो जॉनी, इस 'टर्म' में अगर तुम बराबर क्लासमें जाओगे, तो मैं तुम्हें एक रेडियो दूँगा।" यह सब व्यर्थ होता है। क्योंकि लड़का क्लासमें सिर्फ एक निश्चित स्वार्थसे जाने लगता है। जब उसका ध्यान सबक़में नहीं होता, तब वह जो लड़के पढ़ना चाहते हैं, उनके लिए भी व्यर्थमें मुसीबत खड़ी कर देता है। माता पिता कब यह सीखेंगे कि रुचि जबरदस्ती नहीं पैदा की जा सकती? एक माताने अपने लड़केसे कहा कि यदि वह अपना अँगूठा चूसना बन्द कर देगा, तो वह उसे एक साइकल देगी। लेकिन वह बेचारा ऐसा कर ही कैसे सकता था? अँगूठा चूसना तो अचेतन मनकी क्रिया है, जो चेतन मनकेवशके बाहरकी बात है। हो सकता है कि साइकल लेनेकी आकांक्षासे वह अँगूठा चूसना बन्द कर दे किन्तु फिर अँगूठा चूसनेकी अचेतन प्रेरणा का क्या होगा? वह अपना मार्ग ढूँढ़ ही लेगी—जिससे लड़केकी मानसिक अवस्था और भी बिगड़ जा सकती है! मैं तो माता पिताओंसे कहते कहते थक गया हूँ कि शिक्षा 'अभिव्यक्तिकरण'से प्राप्त होती है, जबर-दस्ती कुछ लादनेसे नहीं। किसी भी भावनाको अपना मार्ग पकड़ने देना चाहिये। थोड़े दिनोंके पश्चात वह अपने आप मिट जायगी, 'कुछ करने'से बुरी आदतें नहीं पड़तीं, वरन् 'न करने'से पड़ती हैं।

यह बड़े मजेकी बात है कि जिन माता पिताओं का जीवन असफल होता है, वे ही अपने बच्चोंके भविष्यके विषयमें सबसे अधिक चिन्तित रहते हैं। मैं एक बार फिर आपको अभिभावक का अपने बच्चोंके साथ तादात्म्य स्थापित करनेवाली बातका स्मरण कराना चाहता हूँ। पिता जो सफलता प्राप्त नहीं कर सका, उसे बच्चेको प्राप्त करना ही चाहिए। आजकल जिस शिक्षा पढ़ा जाता है, उसका सफलतासे कोई संबंध नहीं है। मेरी पुरानी विद्यार्थिनी क्याना फिशविकको इतिहास या भूगोलमें कोई विशेष रुचि नहीं थी, फिर भी समरहिल छोड़नेके चार वर्षके ही अन्दर औरतोंके 'ओपन गोल्फ चैम्पियन-शिप' में विजय प्राप्त करके वह प्रसिद्ध हो गई। कितने ही सफल आदमी स्कूल में फुद्धू थे। क्या मर हेरी लॉडर उस उत्साही डाक्टरकी अपेक्षा, जो चुप-चाप प्रयोगशालामें कैंसरके कारणोंकी खोजनमें वर्षों व्यतीत कर देता है, अधिक सफल है? सफलता का अर्थ आर्थिक सफलतासे लिया जाता है और

अक्सर अभिभावक जब अपने बच्चोंके भविष्यकी बात करते हैं, तो उनके आर्थिक भविष्यसे होता है। ऐसी भावना बिलकुल ही निस्वार्थ तो नहीं होती! इस भावनाके पीछे, विशेषकर मध्य श्रेणी और मजदूर श्रेणीके कुटुम्बोंमें यह डर छिपा रहता है कि बच्चे माता-पिताओंको उनके बुढ़ापे में सहारा न दे सकेंगे। यह भय स्वाभाविक है और समझमें आता है। अक्सर यह अचेतन-मानस तक ही सीमित रहता है। कई अभिभावक तो इस बातको तिरस्कारपूर्वक हँसकर उड़ा देंगे।

तो, माता-पिताओंका अपने बच्चोंके भविष्यकी चिन्ताके पीछे एक अज्ञात (Unconcious) उद्देश्य रहता है, जिसमें स्वार्थ और निस्वार्थ का सम्मिश्रण होता है। यदि यह चिन्ता अत्यधिक और असाधारण (Abnormal) हो तो यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि इस चिन्ताके साथ अन्य कई चिन्ताओंका समावेश हो गया है। ये चिन्ताएँ कैसी और क्या होंगी, यह अभिभावककी अपनी ग्रन्थियों (Complexes) पर निर्भर रहता है। बच्चोंमें ग्रन्थियोंका विकास स्पष्ट देखा जा सकता है। मेरे स्कूलमें जहाँ तक पढ़ाई का प्रश्न है, वे ही विद्यार्थी सबसे अधिक फेल होते हैं, जो अपने अभिभावकोंसे चिढ़े हुए होते हैं। कई बार लड़कोंने मुझसे स्पष्ट कहा है—'जब तक मेरे पिताजी मुझसे मैट्रिक पास करनेके लिए कहते रहेंगे, तब तक मैं एक भी अक्षर न सीख सकता हूँ और न सीखनेकी कोशिश ही करूँगा।' अधिक कठिनाई तो तब होती है, जब पिताके आग्रहोंके प्रति विद्रोहकी भावना चेतना क्षेत्रमें नहीं होती। एक लड़का जो मैं जर्मन नहीं पढ़ा सका जब उसकी माँ ने मेरे आग्रहसे, उससे यह कह दिया कि वह जर्मन चाहे सीखे, चाहे न सीखे, उसे उसकी बिलकुल परवाह नहीं है। अपने बच्चों को पढ़ाईके विषयमें बार-बार कह-कह कर अभिभावक अपना खेल स्वयं बिगाड़ देते हैं। अब कुछ लड़के तो ऐसे होंगे ही जो अपने पिताका आग्रह मानकर प्रथम पुरस्कार या मेडल पानेमें सफल हो जायँ; किन्तु इसके बाद?—उनकी कभी कोई पूछ नहीं होती! ये दफ्तरों या छोटे-मोटे व्यापारों में गुम हो जाते हैं। ऐसे गौण व्यक्ति परिपाटी को बहुत शीघ्र स्वीकार कर लेते हैं। वह यौवन ही क्या जिसमें विद्रोह न हो?

सच तो यह है कि माता-पिता अपने बच्चोंको पढ़नेका आग्रह कर-करके उनके भविष्यको बिगाड़ देते हैं। मेरे दो विद्यार्थी लड़के पढ़ना सीखनेसे केवल इसलिए इनकार करते हैं कि उनके अभिभावक उन्हें बार-बार पढ़नेके लिए सलाह-मशविरा देते रहते हैं। पढ़ना अपने आपमें बहुत महत्वकी वस्तु नहीं है, वह तो वे बिना प्रयत्न (चेतना) के ही सीख सकते हैं। किन्तु अभिभावकोंके प्रति यह विद्रोहकी भावना दूसरी वस्तुओं पर भी अपना प्रभाव डालती है—दस्तकारी, चित्रकला, संगीत आदि, और जिन लड़कोंमें ऐसी विद्रोहकी भावनाएँ होती हैं, उन्हें तोड़ फोड़ करना ही सबसे अच्छा लगता है। उत्सुक माता पिताओंकी अपने बच्चोंके भविष्य की चिन्ताने कितने ही बच्चोंको उनके अपने जीवनके प्रति उदासीन बना दिया है, यह एक विचारणीय विषय है। अपने स्कूलमें किए गए प्रयोगोंके आधार पर मेरा अपना विश्वास है कि यदि बच्चों को स्वतन्त्रता दी जाए तो वे स्वय अपनी समझसे जीवनमें अपना मार्ग बना लेंगे। फिर चाहे यह रास्ता पुल निर्माण करनेका हो या सड़क साफ करने का। स्वतन्त्रता पाकर मनुष्य अपनी जगह ढूँढ़नेके लिए मजबूर हो जाता है। इसी प्रसगमें मैं आपको ग्यारह वर्षकी एक लड़कीकी बात कहता हूँ। समरहिलमें अत्यन्त श्रद्धा रखनेवाले एक सज्जनने इस लड़कीको मेरे स्कूलमें आनेके लिए कहा। उसने कहा—"मैं उस स्कूलमें नहीं आना चाहती," स्कूलका बहुत ही रंगीन वर्णन सुनकर यह बोली,—'और जानते हो क्यों? क्योंकि मैं चाहती हूँ, मेरी देख भाल दूसरे करें। उस स्वतन्त्र स्कूलमें तो यह बहुत ही कठिन होगा, क्योंकि वहाँ तो सब कुछ मुझे ही करना होगा।'

कितनी अद्भुत समझ! बात बिलकुल सच है। नियंत्रण 'सरल' है, क्योंकि उससे आपको केवल दूसरोंकी बात माननी पड़ती है किन्तु स्वतन्त्र होकर तो आपको स्वय ही अपना अगुआ बनना पड़ता है। तब, जब-जब बुजुर्ग लोग अपना प्रभाव डालते हैं, तब-तब बच्चा जीवनमें 'फेल' हो जाता है, या बहुत ही साधारण सफलता प्राप्त कर पाता है। अपनी लड़कियोंको 'संगीत सीखने' पर मजबूर करने के परिणामस्वरूप जो 'सफलता' माताओं को मिलती है, उसकी कल्पना हमारे आस-पासके घरोंमें बजाए जानेवाले बाजों

से की जा सकती है। नौकरी तथा अन्य कामोंमें ऐसे अगणित लोग भरे पड़े हैं, जिन्हें उसके लिए उनकी इच्छाके विरुद्ध खदेड़ दिया गया है। सच तो यह है कि हममें से शायद ही किसीने अपना सही काम चुना हो। मैं स्वयं पहले एक क्लर्क था, फिर कपड़े की दुकान की, और फिर एक पत्रकार बन गया। मैं भाग्यवान् हूँ कि जिसमें मेरी रुचि नहीं थी उससे मेरा पिण्ड छूट गया अपनी मेज या दुकानके सामने देखने पर यह विचार उठना कि—'मरते दम तक मुझे यहीं रहना है'—कितना भयंकर होता है। और इस अधेड़ अवस्थामें भी मैं अक्सर सोचता ही रहता हूँ कि आगे जाकर मैं क्या बनूँगा? हो सकता है, एक दिन मैं कोई कारखाना या होटल खोल दूँ। मैं अपने उस मित्रकी बहुत प्रशंसा करता हूँ, जो अधेड़ उम्रमें एक दिन दवाई आदिका व्यापार छोड़कर बैरिस्टर बन गया। जब आप सुनें कि पचास वर्षकी स्त्री प्यानो बजाना सीख रही है, तो क्या आप खुश न होंगे! एक अध्यापिकाने अभी अभी मुझे लिखा है—'मुझे कोई काम दो! तनख्वाहकी मुझे चिन्ता नहीं—जितनी चाहे देना। इस समय मेरे पास ३०० पौंड हैं, और रिटायर होनेपर मुझे पेन्शन भी मिलेगी। लेकिन भाड़में जाय पेन्शन—मुझे तो इस काम ही से नफ़रत है।'—इसे कहते हैं लगन! हमारी "अपना-घोड़ा-पहले-लाए-मैं-बाँध-लो-नहीं-तो-मरोगे" की मनोवृत्तिने हममेंसे कईयोंको दुखी बना रखा है। हो सकता है, हम पेन्शन मिलनेसे पहले ही मर जायँ, या कल ही लाखोंके मालिक बन बैठें। सुरक्षाके लिए कीमत बहुत बड़ी चुकानी पड़ती है। फलकी बहुत अधिक चिन्ता किए बिना ही जीवनका संपूर्ण आनन्द लेना चाहिए। जब अभिभावक अपने बुढ़ापेकी ही नहीं, बल्कि अपने बच्चोंके बुढ़ापेकी भी चिन्ता करने लगते हैं, तो—न तो वे, और न उनके बच्चे जीवन को आनन्दपूर्वक और साहससे ग्रहण कर सकते हैं।

माता पिताओंकी भविष्यकी चिन्ता अधिकांशतः अंतत धार्मिक होती है। ईसाई धर्मने इस जन्मके बाद स्वर्गके निरापद और नर्कके यातनापूर्ण जीवनको बहुत महत्व दिया है। परीक्षामनरूपी स्वप्नोंका विश्लेषण करनेपर पता चलेगा कि उनमेंसे अधिकतरके पीछे स्वर्ग-द्वार पर होनेवाली अंतिम परीक्षाकी बात होती है। सच है कि स्वर्ग और नरकमें हमारा विश्वास कम

हो गया है, किन्तु फिर भी अचेतन भय तो बना ही हुआ है । रूप बदल कर वह कई प्रकारसे अपना प्रभाव डालता ही रहता है । स्कॉटलैंडमें, जहाँ काल्विन-मतका अत्यन्त गहरा प्रभाव है, परीक्षाका जितना महत्व है, उतना इंग्लैंडमें नहीं है । स्कॉटलैंडमें 'लीविंग सर्टीफिकेट' के साथ शिक्षा समाप्त हो जाती है । लड़कों और लड़कियोंको 'हाँकने का एकमात्र उद्देश्य यही होता है कि वे किसी न किसी प्रकार इस अरचनात्मक परीक्षामें सफल हो जायँ। स्कॉटलैंडमें शिक्षाकी आँख रिजल्टपर गड़ी हुई होती है । गरीबोंको यूनिवर्सिटी शिक्षा देनेके हेतुसे खोले गए कार्नेगी फण्डने स्कॉटलैंडमें ग्रेजुएटोंकी भरमार कर दी है । बेटी को एक बार उसकी एक चाचीने पूछा—'तुम क्या बनना चाहती हो ?' उसने उत्तर दिया, 'लेखक !' चाची निराश होकर बोल पड़ीं "क्या ? इसीलिए तुमने एम ए किया है !" स्कॉटलैंडमें ये दो जादुई शब्द— 'एम ए'–सफलताकी सर्वश्रेष्ठ चोटी माने जाते हैं । नतीजा यह हुआ है कि स्कॉटलैंडकी संसार प्रसिद्ध शिक्षा (पहले यह ठीक भी था !) आज शिक्षा की दृष्टिसे पिछड़ गई है। वहाँ की शिक्षा अचेतन मन जैसी किसीभी वस्तुको स्वीकार करती ही नहीं । गणित, लेटिन, ग्रीक, इतिहास आदि 'अहम्'तत्वपूर्ण वस्तुएँ लड़कोंको सिखाई जाती हैं, कि जिन्हें लड़के परीक्षा के बाद भूल जाते हैं, स्वाभाविक ही है । स्कॉटलैंडमें महत्वकी वस्तु 'विषय' नहीं, 'परीक्षा' है । अचेतनरूपसे 'परीक्षा' काल्विन-मत के स्वर्ग का द्वार है [स्कॉटलैंडके गाँवोंमें लुहार स्कूलसे लौटने पर अपने लड़केसे 'आज तुमने क्या सीखा ?' के बजाय पूछता है—'आज तुम्हारी खबर ली गई या नहीं ?' अर्थात्—तुमको (डण्डेसे) सुधारा गया या नहीं ?]

यदि कोई काल्विन-मत भली भाँति अध्ययन नहीं करता है तो वह नरकमें जाता है, इसी प्रकार यदि कोई परीक्षाके लिए आवश्यक विषयोंका भलीभाँति अध्ययन नहीं करता है तो वह दण्डका भागी होता है । स्कॉटलैंड में'स्कॉलर (विद्वान)' होना ही'अच्छा व्यक्ति' होना है । अंग्रेजोंके मापदण्ड भिन्न हैं । इंग्लैंडके पब्लिक स्कूलमें सबसे अधिक कद्र पहलवान—[खेल-कूद, व्यायाम आदिमें प्रवीण] की होती है । यदि कोई व्यक्ति 'पहलवान' है तो उसे बड़ेसे बड़े अध्यापक का काम मिल जायगा और विद्वान मुँह ताकते

रह जायेंगे । स्कॉटलैंडमें, जहाँ शरीरसे अधिक आत्माका मान है सबसे पहले विद्वान को अवसर दिया जायगा । चलते-चलते यह भी कह दूँ कि अंग्रेजों की यह खेल-पूजा उतनी ही हेय है जितनी की स्काटलैंडकी परीक्षा और डिगरी पूजा। दोनों ही हेय हैं, क्योंकि दोनोंके उद्देश्य हेय हैं । इग्लैंडके पब्लिक स्कूलोंके विषयमें यदि कोई भी अच्छी बात कही जा सकती है तो वह यह कि यहाँ से कभी-कभी कुछ अच्छे विद्रोही नौजवान निकल जाते हैं (केम्ब्रिजमें यह अधिक पाया जाता है) और स्कॉटलैंडकी शिक्षाके विषयमें यदि कोइ अच्छी बात कही जा सकती है, तो वह यह है कि उसके ही कारण साधारण विद्यार्थी एम ए हो जाते हैं और शेष बुद्धिवाले चतुर व्यापारी या दूकानदार बन जाते हैं । ऐसी शिक्षाके बावजूद भी स्कॉटलैंड फल-फूल रहा है । साहित्य और कलाके निर्माणमें उसका हाथ नगण्य-सा है, मनोविज्ञानमें वह पिछड़ा हुआ है, और सिद्धान्तत चाहे न हो, किन्तु वास्तवमें उसके मूल्य भौतिक हैं । काल्विन-मतकी सफलता स्कॉच लोगों द्वारा इंजीनियरिंगमें सफलता प्राप्त करने में दृष्टिगोचर हो सकती है, क्योंकि इंजीनियरिंगका सम्बन्ध प्रत्येक वस्तु को नपी-तुली और 'फिट' बनानेसे है तर्कशास्त्रकी एक शाखा ही इसे समझिए । स्कॉच लोगोंकी व्यापारिक सफलताका कारण उनकी कमखर्ची है । इस कमखर्ची का कारण यह है कि उनके धर्म द्वारा ऐसे सब आमोद-प्रमोद निषिद्ध हैं, जिनमें पैसा खर्च होता है । उनके यहाँ केवल एक 'मनोरंजन' के लिए पूर्ण स्वीकृति है—और फिर अधिकसे अधिक रुपया कमाना । मजेदार बात यह है कि अमरीका और स्कॉटलैंडके आदर्श और उद्देश्य एक ही हैं । अमरीका पर अब भी प्राचीन 'प्यूरिटेनिज़्म (सदाचारवाद) का प्रभाव है और सफलता आज भी 'डॉलर' से मापी जाती है ।

यह तो स्पष्ट है कि अभिभावकोंकी भविष्य-चिन्ता और राष्ट्रकी भविष्य चिन्ता मूलत एक ही है । प्रत्येक प्रौढ़को कभी न कभी बुढ़ापेमें शरीरका डर अवश्य सताता है । मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे बुढ़ापा बचपन ही है, किन्तु ऐसा बचपन जिसमें माता-पिताका संरक्षण नहीं होता । माता-पिताओं द्वारा अपने बच्चोंके भविष्य की चिन्तामें स्वार्थका पुट यह होता है कि उन्हें अपने बच्चों को सदा शिशु अवस्थामें रखनेकी गहरी इच्छा होती है—विशेषकर माताओंके

सम्बन्धमें यह बात बहुत सच है। किसीने कलाकारकी व्याख्या यों की है—'कलाकार'वह है जो बचपनके उल्लासोंको बनाए रखनेका प्रयत्न करता है।' माता के विषयमें भी यही बात कही जा सकती है। वह अपनी सन्तानको सदा शिशु ही देखना चाहती है। अत भविष्यकी चिन्ताके मूलमें 'आर्थिकसे कहीं अधिक गहरी—कोई विशेष भावना' काम कर रही होती है उसके मूलमें बच्चेको खो देने का 'भय होता है।

उसके पीछे ईर्ष्या भी काम करती है—कि बच्चा बड़ा होता जा रहा है। कई लोग इस विचारका मखौल उड़ाते हैं, किन्तु जिस किसी में अपने-आप विचार करनेकी थोड़ी सी भी योग्यता होगी, वह मानेगा कि सचमुच प्रौढ़ोंमें नौजवानोंके प्रति ईर्ष्याकी भावना काम करती है। भावुकता और आदर्शवादी उपदेशोंकी जड़में जानेपर पता चलेगा कि इसमें से प्रत्येक मूलत अपने 'अहं' से परिचालित होता है। शायद 'बेरी' ही ने कहा है कि स्वय का छपा हुआ नाम सबसे बढ़िया साहित्य होता है। यह सच है कि कभी-कभी अपने अहं पर विजय प्राप्त की जा सकती है—डूबते जहाजपर पुरुष अपने अहं को भूलकर स्त्रियों और बच्चोंकी रक्षा करते हैं—किन्तु रोजमर्राकी नीरस जिन्दगीमें अहं अपने नंगे रूपमें दिखाई पड़ता है। इसके अलावा हम अपने अहं का अपनी चीजों और अपने मित्रों पर भी प्रक्षेपण करते हैं क्योंकि ये सब हमारे अपने हो जाते हैं। कुछ दिनों पहले मुझे अपने एक बूढ़े घोड़े को मरवाने के लिए बूचड़खाने में ले जाना पड़ा। स्कूलका यह बड़ा प्यारा घोड़ा था, अत हम सबके 'अहं' का एक भाग बन गया था। मैं जानता हूँ कि अगर किसी अपरिचित घोड़ेको ले जाना होता तो मैं बिना किसी उद्वेगके ले जाता। किन्तु बुड्ढे रूफस को ले जाते समय मुझे लगा कि मैं खूनी हूँ। मैंने उसके साथ तादात्म्य स्थापित कर लिया था। यह भी विश्वास कि मुझमें जो भाव उठते हैं, वे ही उसमें भी उठते होंगे। उसकी मृत्यु मेरे अपने ही एक भाग की मृत्यु थी। और फिर घोड़ा अक्सर पिताका प्रतीक होता है : इस दृष्टिसे यह बूढ़ा घोड़ा एक विचित्र मूर्तिके रूपमें सामने आ खड़ा होता है।

निष्प्राण वस्तुएँ हमारे अहंका एक भाग बन जाती हैं। कई लोगोंका

यह विश्वास होता है कि उनके सिवा उनकी मोटर कोई चला ही नहीं सकता, अक्सर जब मैं 'गियर' [मोटर में चाल धीमी या तेज करने का यंत्र] बदलता हूँ तो वे खड़-खड़ खड़ कर उठते हैं, किन्तु यदि कोई दूसरा वैसा ही करता है, तो मैं आपेसे बाहर हो जाता हूँ। मनुष्यको अपने ग्रह द्वारा सीमित और परिचालित किए जानेके, मैं प्रमाणपर प्रमाण दे सकता हूँ। प्रत्येक बच्चेमें बड़ा जबरदस्त अहं होता है और यह अहं जीवन भर उससे लगा ही रहता है। हालांकि उसके साथ उसके रूप बदलते रहते हैं। 'कबिरा काली कामरी चढ़े न दूजो रंग !' जीवनमें आगे चलकर हम अपने अहं द्वारा पैदा की गई ग्रन्थियोंपर किसी न किसी प्रकार पर्दा डाल देते हैं। 'दानवीर (Philanthropist) पुरुषके जीवनके अध्ययन से इस बातकी सच्चाई स्पष्ट हो जायगी। एक अभिभावक अपने बच्चोंसे तादात्म्य स्थापित कर लेता है, वे उसके 'नन्हें ग्रह' हैं—उसके अपने भाग हैं; ऐसे भाग जिनके बल पर बड़ी-बड़ी आशाएँ बाँधी जाती हैं। अत बच्चेके भविष्य की चिन्ता का अर्थ यह भी होता है कि अभिभावक डरता है कि उसके प्रथम जीवनके समान उसका दूसरा जीवन [बच्चोंका जीवन अनु०] भी कहीं व्यर्थ न चला जाय। जब मैं बच्चा था, तो उन दिनोंमें सबसे बड़े लड़केको 'घरकी आशा' कहा जाता था। सबसे बड़ा लड़का अक्सर पिता की आँखों का तारा होता है, क्योंकि उसीके द्वारा पिता प्रथम बार अपना जीवन पुन प्राप्त करता है।

यह तो स्पष्ट है कि अभिभावकोंकी भविष्य चिन्ता एक बड़ी उलझी हुई भावना है। बुद्धिका उसमें बहुत कम हाथ रहता है उसमें अधिकतर नाना प्रकारकी भावनाएँ ही काम करती हैं। यह भावना सबसे तीव्र उन अभिभावकोंमें होती है, जिनका मानसिक-जीवन विकृत होता है, अथात् जो वास्तविकता से डरते हैं। ऐसे अभिभावकोंका 'जीवनके प्रति रुख अक्सर पलायनवादी होता है। हमारी परीक्षा-पद्धतिके पीछे यही-भविष्यकी चिन्ता है। परीक्षाएँ तो पेड़को उखाड़कर उसके विकासको प्रत्यक्ष देखनेसे समझनेके समान है। मुझे डर है कि जब तक मानवता 'भविष्यकी चिन्ता करना' न छोड़ेगी तब तक परीक्षाएँ बनी ही रहेंगी।

— * —

संपूर्ण ईमानदारी जैसी कोई चीज नहीं है। ऐसे बहुत कम लोग हैं, जो चुंगीघरवालों को चकमा न देना चाहते हों। बड़े बड़े प्रतिष्ठित लोग टेलीफोन कम्पनीको धोखा देते हैं और रेलवे कम्पनीको धोखा देनकी बात तो जगत्प्रसिद्ध है। चुंगीघरके अफ़सरोंसे बिना हिचकके झूठ बोलनेवाला आदमी खानेकी मेजपरसे चाँदीका चम्मच सम्भवत नहीं चुराएगा। राज्यकी रेल्वे कम्पनीसे तो हमारा सीधा कोई सम्बन्ध नहीं होता, किन्तु चाँदीके चम्मचों के मालिक—अपने मेजबान या चाय घरमें आवभगत करनेवाली लड़की, कि जिसे दूकानमें कोई भी गलती हो जानेपर अपनी जेबसे पैसा भरना पड़ता है, के साथ तो हमारा तादात्म्य स्थापित हो ही जाता है। मैं टेलीफ़ोन कम्पनीको धोखा देनेकी बात तो सोच सकता हूँ (हालाँकि अब तक ऐसा हुआ नहीं है), किन्तु रास्तेपर पड़े मनीबैगको उठाकर चल देने की कभी कल्पना भी नहीं कर सकता।

अवैयक्तिक (सामाजिक) बेईमानी और वैयक्तिक ईमानदारी दोनों एक साथ रहते हुए भी एक दूसरेसे बिलकुल अछूती रह सकती हैं। आयकर का फॉर्म भरते समय अपनी आय घटाकर बतानेवाला आदमी अपने लड़के द्वारा पैसे चुरा लिए जानेपर सचमुच दुःखी होता है। मेरे पास एक बार पन्द्रह वर्षका एक लड़का भेजा गया। उसकी चोरी करनेकी बुरी आदत थी। स्टेशनपर उतरकर उसने अपने पिता द्वारा लन्दनमें खरीदकर दिया हुआ आधा टिकट दिखाया और बाहर निकल आया।

बात यह है कि रेल्वे कम्पनी या आय कर वालोंको धोखा देना एक

ऐसी भावपूर्ण क्रिया है, जिसका कारण लालच नहीं, प्रत्युत् अधिकार ग्रन्थि (Authority या Power complex) होती है। 'अधिकार (पिता)' के विरुद्ध हमारे विद्रोह को हम अक्सर इस प्रकार उचित ठहराते हैं, कि—'उनने मुझे कई बार धोखा दिया है। मैं तो अपना ही हिस्सा वापस ले रहा हूँ।' अत यौद्धिक इमानदारीकी आशा करना तो व्यर्थ है; क्योंकि हमारी अधिकांश बेईमानियाँ भावना प्रेरित होती हैं। अधिकतर बेईमानियों का कारण अपने अहं की सर्वशक्तिमत्ता को बनाए रखने की इच्छा है, यही कारण है कि हम 'इज्जतदार' लोगोंसे भी सफेद झूठ बोलते हुए पाते हैं। पुरुष खेलोंमें अपनी निपुणताके विषयमें अक्सर झूठ बोलते हैं। मैं स्वय इनाम देनेके मामलेमें 'झूठ' का शिकार हूँ। अपनी जातिगत (स्कॉच) कजूसी को छिपानेके लिए मैं आवश्यकतासे अधिक इनाम (tip) दे देता हूँ। वेटरों (होटलके नौकरों) ने मुझे बताया है कि स्कॉच लोग अंग्रेजोंसे अधिक इनाम देते हैं।

सामाजिक झूठ नहीं टाले जा सकते। यह जानते हुए कि श्रीयुत क की पत्नीके स्वास्थ्यसे हमें कोई मतलब नहीं है। हम श्रीयुत क की पत्नीकी कुशलता पूछते ही हैं। एक धर्म ध्यानकी पाबन्द स्त्री एक बार यह डींग हाँक रही थी कि स्वय अपनी ईमानदारी के द्वारा उसने संपूर्ण कुटुम्बके लिए एक आदर्श उपस्थित कर दिया है। थोड़े ही समयके पश्चात् उससे एक ऐसे सज्जन मिलने आये जिनसे वह मिलना नहीं चाहती थी। तब उसने नौकरानीसे कहला दिया, 'मैं घरमें नहीं हूँ।' इस प्रकार के सामाजिक शिष्टाचारकी तहमें न जाने कितने झूठ छिपे पड़े हैं! 'नेशनल एन्थम' बजने पर हम खड़े हो जाते हैं, किन्तु राजाके विषयमें हम कभी नहीं सोचते। यह दिखानेके लिए कि हम स्त्री जातिकी इज्जत करते हैं हम किसी महिलाको देखकर साफे टोपी उठा लेते हैं, किन्तु चाय घरों और फैक्टरियोंमें परिश्रम करती हुई लड़कियोंकी ओर हमारा ध्यान भी नहीं जाता। यह 'मर्दानी-शिष्टाचार' जीवनको ऊपरसे तो सादा बना देता है, किन्तु साथ ही सच्ची ईमानदारीको असंभव भी बना देता है। हममें से कई जीवन की उपरोक्त प्रवंचनाओं स्वीकार कर लेते हैं, किन्तु यह नहीं जानते कि इस प्रवचनाका उद्देश्य ही ईमानदार होने जैसी कठिन

वस्तुसे मनुष्यकी रक्षा करना है। क्योंकि आन्तरिक ईमानदारी के मानी अपने-आपको समझनेके होते हैं दूसरोंकी नापसन्दगी भी झेलनी पड़ती है। आपके अत्यन्त प्रिय गीतकी हत्या कर देनेवाले गायकको स्पष्ट रूपसे सच-सच कह देनेकी अपेक्षा 'धन्यवाद' कहना अधिक सरल है। कौटुम्बिक दायरेमें लोग इस सामाजिक प्रवचना का त्याग कर देते हैं, किन्तु इसका उद्देश्य ईमानदारी नहीं प्रत्युत घृणा प्रकट करना होता है।

यदि कोई पिता अपनी बेईमानीके विषयमें ईमानदारीसे काम ले, तब बहुत हानि की गुंजायश नहीं होती, क्योंकि उस परिस्थितिमें वह अपने बच्चों को ईमानदारी का उपदेश देनेका अपराध न करेगा। हाल ही में एक पिताने मुझसे कहा—मैंने अपने पुत्रसे एक ही वस्तु चाही है कि 'वह हमेशा सच बोले।' यह सज्जन मुझसे उनके सोलहवर्षीय पुत्रके विषयमें मिलने आए थे, जिसे चोरीकी आदत पड़ गई थी लेकिन इस ऐसे पितासे पुत्र क्या आशा रखे कि जिस व्यक्तिका कुटुम्ब जीता-जागता 'झूठ' था। वह अपनी पत्नीसे घृणा करता था, वह भी उससे घृणा करती थी, किन्तु यह सब 'प्रिय', 'प्रिये 'प्रियतमा' के पीछे दबा दिया गया था। उसके लड़के को धुँधला-सा आभास तो हो गया था कि कहीं कुछ दालमें काला अवश्य है, उसकी चोरी करनेकी आदत घरमें अप्राप्य प्रेमको खोजनेका प्रयत्न था।

बेईमानियोंसे भरे वातावरण का घर बच्चेके लिए अत्यन्त खतरनाक होता है। विषय बहुत विशाल है। इसकी जड़ें अचेतन प्रतीकोंमें जमी छिपी रहती हैं। उदाहरणके लिए सिगरेट पीना ही लीजिए। बच्चेको सिगरेट न पीनेके अक्सर ये कारण बताए जाते हैं —

१ सिगरेट पीनेसे शारीरिक विकास रुक जाता है।

२ तम्बाकू विष है।

३ माँ सिगरेट पीनेसे मना करती है।

—गलत। पहली बात सरासर झूठ है और अभिभावक जानता है कि यह झूठ है। दूसरी बात ठीक है, किन्तु कही इस प्रकार जाती है कि प्रभाव उलटा ही पड़ता है, क्योंकि बच्चेके मनमें यह शंका बैठ जाती है कि तम्बाकू यदि उसके लिए विष है तो पिताजी के लिएभी विष क्यों नहीं है? तीसरी बात

जबरदस्ती की तो है, किन्तु उसमें ईमानदारी अवश्य है। यदि कहीं बच्चा पूछ बैठे—'माँ, सिगरेट पीनसे तुम मुझे मना क्यों करती हो ?' तो माँ के लिए ठीक उत्तर देना कठिन हो जायगा। वास्तवमें 'मुमानियत (मनाई) की कोई आवश्यकता ही नहीं है। मेरे स्कूलमें आनेवाले लगभग प्रत्येक बच्चे पर स्वतन्त्रता की एक ही प्रतिक्रिया होती है कि वह सिगरेट पीना प्रारम्भ कर देता है। छोटे बच्चे लगभग दो दिन तक ऐसा करते हैं। सिगरेट पीनेमें उन्हें कोई विशेष आनन्द प्राप्त नहीं होता। उनका उद्देश्य तो यही होता है कि वे भी बड़ी उम्र के लोगोंके 'समान' काम करनेमें स्वतन्त्र हों। काम करनेकी स्वतन्त्रता समस्या को हल कर देती है। दस वर्ष पहले आठ वर्षका एक लड़का मेरे स्कूलमें आया था। वह हफ्ते भर तक काले जमन चुरुट पीता रहा। उसका छोटा भाई सिगरेटोंसे ही अपना काम चला लेता था। आज उन दोनों में से कोई भी सिगरेट नहीं पीता।

सिगरेट पीनेके निषेधका कारण सिगरेट पीने का गूढ़ अर्थ ढूँढने पर मिलेगा। भीरु माता और रूढ़िवादी पिताके लिए सिगरेट पीनेके निम्न अर्थ हो सकते हैं —

१ चरित्रहीनताका आरम्भ यह डर कि सिगरेट पीने वाली लड़की आगे क्या न करेगी ! २ प्रौढ़ोंकी अधिकार-सीमामें बच्चोंका अनधिकार प्रवेश, ३ नई सांतानिक विषयमें चिंता; ४ बच्चसे घृणा। अंतिम बात महत्वपूर्ण है,— क्योंकि अधिकतर निषेध का उद्देश्य बच्चको सुखसे वंचित कर देना होता है। हस्त-मैथुन को ही लीजिए। क्या 'झूठ' अभिभावक नहीं बताते ? पागल बन जाओगे, बीमार पड़ जाओगे, बच्चा पैदा करनेकी योग्यता जाती रहेगी आदि, ये सब झूठ हैं और बच्चे इन्हें वेद वाक्य मान लेते हैं। जिस किसी अभिभावकमें थोड़ी सी भी ईमानदारी होती है, वह ऐसी झूठी बातें नहीं करता। ऐसे अभिभावकोंके लिए अच्छा होगा कि वे अपना ही दिल टटोलकर देखें कि "जब हस्तमैथुनने मुझको ही (अभिभावकको) नपागल बनाया, न बीमार किया, और न नपुंसक ही बनाया तब क्यों मैं अपने बच्चेसे पुरानी झूठी बातें कह रहा हूँ जो बचपनमें मुझसे कही गई थी !" उत्तर एक ही है—"क्योंकि मैं यौन का गंदा समझता हूँ, क्योंकि मैं अपने ही अनुभव पर विश्वास करनेके लिए तैयार नहीं हूँ।"

किन्तु अपने आपके साथ इस प्रकार तर्क करना बहुत कठिन है, क्योंकि बेईमानी अक्सर अचेतन होती है। सम्पूर्णरूपसे कभी किसीमें परिवर्तन नहीं किया जा सकता, रोमन कैथोलिकके प्रोटेस्टेंट हो जाने पर भी वह अचेतन-रूपसे कैथोलिक ही रहता है। इसी प्रकार यौनके प्रति उचित रुख रखने वाला भी अज्ञातरूप, अपनी पुरानी नैतिक शिक्षाके कारण यौनसे घृणा ही करता है। इसी कारणसे धर्मके पचड़ोंमें न पड़नेवाले माता-पिताओंके बच्चोंके मनमें भी स्वर्ग और नरकका भय घुस ही जाता है। मंत्रि-मण्डलका समाजवादी मन्त्री भी अपने पुत्रको पब्लिक स्कूलमें भेजता है। अधार्मिक अभिभावक अचेतन-मनमें धार्मिक बना रहता है। समाजवादी मन्त्री अचेतन रूपसे उच्च वर्गमें ही विश्वास करता है।

हाल ही में जब मैं एक जगह भाषण दे रहा था, एक स्त्रीने उठ कर कहा—'तो अपने विद्यार्थियोंको गर्भ निरोध करनेकी प्रणालियाँ क्यों नहीं सिखलाते?' मैं केवल यही उत्तर दे सका कि 'मेरा लालन-पालन काल्विन-मतकी छायामें हुआ था और अचेतन-रूपसे मैं अब भी काल्विन-मतमें विश्वास करता हूँ।' उस समय तो ऐसा लगा मानो यही उत्तर सच्चा था, किन्तु बादमें सोचने पर लगा कि एक उत्तर और हो सकता था – 'इसलिए भी कि मेरी उम्र चालीस वर्षसे ऊपर हो चुकी है और मैं नई संततिसे ईर्ष्या करता हूँ।'

सत्य गहराईमें, अचेतनमें छिपा रहता है। इमानदारीका आदर्श तो व्यर्थ है, क्योंकि वह तो इस बात पर निर्भर करता है कि एक आदमी स्वयंके व्यक्तित्वको कितना समझता है। एक आम भ्रम यह फैला हुआ है कि जैसे-जैसे आदमीकी उम्र बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे उसका चेतना क्षेत्र बढ़ता जाता है, इसीलिए सफेद बाल बुद्धिमानीके चिन्ह समझे जाते हैं, और इसीलिए राष्ट्र अपने बुजुर्गोंको शासक और न्यायाधीश नियुक्त करता है। यूरोपके बुजुर्गोंने अपनी बुद्धिमानीके कारण १९१४-१८ में सहस्रों नवयुवकोंको युद्धके जरिये मौतके मुँहमें भेज दिया—नौजवान अभी इस चीजको समझ ही नहीं पाए हैं। पिताके प्रतीकमें उनका विश्वास बड़ा गहरा होता है। नौजवान जैसे-जैसे अधेड़ावस्थाके निकट पहुँचते जाते हैं, वैसे-वैसे बुजुर्गोंके

अक़्लमन्दीके प्रति उनका सम्मान भी बढ़ता जाता है क्योंकि वे स्वयं भी तो अब मानवताके पथ प्रदर्शक बननेकी उम्रके निकट आने-लगे होते हैं। यह बड़ी खतरनाक उम्र होती है, क्योंकि इसी उम्रमें आदमी अपने जीवन-भरके झूठोंको इकठ्ठा करके, उन्हें एक 'जीवन-दर्शन' का रूप देकर, लम्बे-चौड़े शब्दों और मुहावरोंमें व्यक्त करता है जैसे—'साम्राज्य, राष्ट्रकी नैतिक धारणाएँ, प्राचीन महिमा ।' इस उम्रमें मनुष्य नौजवानोंसे घृणा करने लगता है एक तो इसलिए कि वे उसकी बुद्धि और शक्तिको ललकार सकते हैं, और दूसरे इसलिए भी कि वे यौवनके आनन्द, सौंदर्य और उसकी शक्तिके धनी होते हैं। कल अपने विद्यार्थियोंके साथ पत्थर फेंकनेकी प्रतियोगितामें मैं सबसे निकम्मा निकला किन्तु जब मैं लड़का था तब पत्थर भली प्रकार फेंक सकता था। बात छोटी-सी थी, किन्तु अपनी बाहुको कमज़ोर होते देख मैं खीज उठा था, लेकिन एक अध्यापकके नाते लड़कोंद्वारा हार पर, उन्हें खुश होते देख कर मैं उछल पड़ा था।

घरमें जो नियन्त्रण रखा जाता है उसका उद्देश्य तो बच्चोंको जान-बूझ कर—स्वार्थसे—दबाना होता है। ईमानदार होनेका अर्थ है-अपना हृदय टटोलना जिसके परिणाम अक्सर अहंको चोट पहुँचानेवाले होते हैं। घृणित उद्देश्योंको झूठोंकी एक चादरके नीचे ढक देना, कहीं अधिक सरल होता है जैसे—'मेरे पुत्रको सत्यवादी, वीर और वफ़ादार होना चाहिए, क्योंकि सत्य, साहस और वफ़ादारी जीवनके सबसे बड़े गुण हैं।' मैं अब तक एक भी ऐसे अभिभावकसे नहीं मिला जो सत्यवादी, वीर या ईमानदार था। हाँ, इतना मैंने अवश्य देखा है कि सबसे अधिक अत्याचारी और भीरु प्रकृतिके अभिभावक ही होते हैं।

अब तक मैं पिताओंके विषयमें ही लिखता आ रहा हूँ—मानो संसारमें पिता ही बेईमान होते हों। माताएँ भी बेईमान होती हैं, किन्तु मेरा अपना विचार है कि बेईमानीकी ओर स्त्रियोंसे अधिक पुरुषोंका झुकाव होता है। अक्सर माताएँ मेरे पास आकर कहती हैं—'मैंने अपने लड़केके साथ बिलकुल गलत ढंगसे व्यवहार किया है। मैं असफल रही हूँ। क्या आप, की हुई गलतीको सुधार देंगे?' किन्तु पिता कभी अपने दोष स्वीकार नहीं

करते। माताएँ अक्सर इस प्रकारकी कथाएँ कहती हैं 'मेरा लड़का प्रारंभिक-शाला में है और उसे वहाँ बहुत तग किया जाता है, किन्तु उसके पिता उसे वहाँ से हटाना ही नहीं चाहते। वे स्वय पब्लिक स्कूलमें शिक्षा पा चुके हैं, इसलिए वे सोचते हैं कि चरित्रके खातिर उसे सब यातनाएँ भोगनी ही चाहिए।' परम्परा आदमीको बहुत जोरोंसे अपने शिकंजेमें कस लेती है। चूँकि परम्पराका बुद्धिसे कोई सम्बन्ध नहीं होता है, अत बच्चोंसे व्यवहार करनेमें पिता अक्सर माताओंसे अधिक बेवकूफ होते हैं। पिताओंको दूर तक्की सोचनेका बड़ा अभिमान होता है देखिए, मेरा लड़का एक इकाई है उसकी आकृति अच्छी होनी चाहिए उसे एक ऐसी इकाइ होना चाहिए जो हमारे इस शक्तिशाली साम्राज्यकी शोभा बढ़ा सके, आदि आदि।' माताका दृष्टिकोण सकुचित किन्तु अधिक सच्चा होता है। वह अपने पुत्रको सुखी देखना चाहती है और साम्राज्य या अच्छी आकृति जैसे बड़े-बड़े शब्दोंके धोखेमें नहीं आती। यहाँ मैं स्वीकार करता हूँ कि माताओंके प्रति मेरा कुछ पक्षपात इसलिए भी है कि मेरे ४२ विद्यार्थियोंमेंसे लगभग सभीको उनकी माताओंने भेजा है। पिताओंने तो अक्सर घोर विरोध ही किया है।

माँ बेइमान तभी होती है जब वह अपनी पुत्रीसे घृणा करती है। उम्रमें बढ़ता हुआ लड़का पिताके लिए उतना खतरनाक नहीं होता जितना कि उसकी लड़की अपनी माँके लिए होती है। बायरनका यह कथन कि प्रेम ही 'स्त्रीका सम्पूर्ण अस्तित्व है, कुछ अतिरंजित है, लेकिन इतना अवश्य है कि प्रेमका महत्व पुरुषसे अधिक स्त्रीके लिए होता है। पुरुष तो एक अस्थिर प्राणी है वह तो किसी भी सुन्दर स्त्रीके प्रति आकर्षित हो सकता है, किन्तु स्त्री इससे कुछ और अधिक चाहती है। वह किसीकी बन-कर रहना चाहती है, ताकि दूसरोंको अपना बना सके वह अपने पुरुषकी सब कुछ बन कर रहना चाहती है। उसका सुरुचिपूर्ण परिधान, उसका साज सिंगार, कई आदमियोंको नहीं—एक आदमीको आकर्षित करनेकी कला होती है। जब समाजमें स्त्रियाँ आर्थिक दृष्टिसे स्वतन्त्र हो जायेंगी तो

वे भी अपने प्रेम-सम्बन्धोंमें पुरुषोंके समान अ-नियत हो जायेंगी, इसमें कोई सन्देह नहीं किन्तु इस समय तो हम इसी परम्परामें जीवन यापन कर रहे हैं कि एक स्त्रीको अपने निर्वाहके लिए एक ही पुरुषको चुन लेना चाहिए।

पुरुषकी खोपड़ी गजी हो जाने पर भी स्त्रियाँ उसके प्रति आकर्षित हो सकती हैं, लेकिन स्त्रीके मुखपर झुर्रियाँ पड़नेके बाद उसका आकर्षण घट जाता है। सेक्स और सत्ताके क्षेत्रमें पिता अपने जवान होते हुए पुत्रको प्रतिस्पर्धी समझता है, लेकिन बहुत अधिक चिन्ता नहीं करता, किन्तु बुढ़ापेकी ओर बढ़ती हुई माता अपनी लड़कीकी रवानीदार त्वचा, चमकती आँखें और उसका तरल अंग विन्यास देखकर घोर ईर्ष्यासे भर उठती है कि 'वह मुझसे अधिक आकर्षक है।' केवल वही स्त्री बुड्ढी होने से दुखित नहीं होती कि जिसे जीवनमें आकर्षित करते-फिरनेके बजाय कुछ और काम करनेका क्षेत्र मिल जाता है। किन्तु वह भी जिसकी काम भावना सतुष्ट नहीं होती है, अपनी पुत्रीके प्रति बेइमान हो सकती है। ऐसी स्त्रीका विवाहित जीवन दुखी होता है। उसका अज्ञात उद्देश्य होता—'जो मैं *प्राप्त न कर सकी अपनी पुत्रीको भी प्राप्त न करने दूँगी।'*

कुछ वर्षों पहिले ऐसी ही एक माता अपनी सोलहवर्षीय पुत्रीको लेकर मेरे स्कूलमें आई। उसने लड़कीकी बड़ी गम्भीर तस्वीर मेरे सामने खींची—'आज्ञा भंग करती है, उद्दत है, लड़कोंसे बहुत अधिक मिलती जुलती है, झूठ बोलती है, आलसी है, घृणित है, क्रूर है। उसका मुख्य दोषारोपण यह था कि बेसी अपनी गरदन नहीं धोती। माँ द्वारा खींची गई तस्वीर बिल्कुल ठीक थी बेसी घृणित लड़की थी और उसके मुष्टिका-प्रहारों द्वारा मुझे उसकी घृणा भी झलकनी पड़ी। किन्तु मेरी तो मुख्य कठिनाई बेसीको अपनी गरदन धोनेसे रोकना था—उसकी यही शिकायत थी कि वह जब-तब गरम पानीसे नहाती है, और सबका सब गरम पानी खर्च कर देती है। बेसीको सुधारनेमें दो वर्षसे भी अधिक लगे। लेकिन चूँकि हम माँकी बात पर रह हैं, इसलिए बेसीके सुधारकी बातको जाने दें। उसका जीवन अब बिल्कुल सुखी है। किन्तु माँने इस अनुभवसे कोई शिक्षा न ली और अब वह बेसीकी छोटी बहिनके जीवनको एक छोटा-मोटा नरक बना दे रही है। बेसी

की माँने अपनी घृणाको विभिन्न प्रकारकी वेइमानियोंमें प्रकट किया। अपनी पुत्रीपर किये गये अत्याचारके लिए उस माँकेपास ऊपरी रूपसे देखनेमें उचित जानपड़नेवाले कारण भी थे। सक्षेपमें इस स्त्रीका जीवन यों था—अठारह वर्ष की उम्रमें उसने एक ऐसे आदमीसे विवाह किया, जिसे वह प्यार नहीं करती थी (—पिताका स्थानापन्न), और विवाहके थोड़े ही दिनोंके पश्चात यह आदमी नपुंसक हो गया। (—उसके मातृ-व्यासगके कारण दूसरी पुत्रीका जन्म शराबके आधिक्यसे हुआ था।) अतृप्त कामके कारण इस स्त्रीने स्वाभावत घर भरको दु खी कर दिया और इसी कटु वातावरणमें बेटी बड़ी हुई। उसे धुँधला सा आभास हो गया था कि कहीं कुछ गड़बड़ अवश्य है। अपनी दमी हुई कामवृत्तिके लिए माताने सस्ते उपन्यास पढ़ने, होठोंको रंगने और अच्छे अच्छे वस्त्र पहनना प्रारम्भ किया। बेचारीको स्वय अपने को ही धोखा देनेकेके लिए विवश होना पड़ा वरना उसे सचाईका सामना पड़ता यह करना कि

'मैं अपने पति और बच्चोंसे घृणा करती हूँ। जीवन मैंने कभी जिया ही नहीं। "दी डाल्स् हाऊस" की नोराके समान मुझे भी बाहर निकल कर अपनी और अपने सुखकी खोज करनी चाहिए। एक और किन्तु अधिक सरल मार्ग भी हो सकता था सारी स्थितिपर लीपा पोती करना।

"मैं अपनी बेटीको इतना अधिक प्यार करती हूँ कि मेरा संपूर्ण जीवन ही उसको सुखी बनानेमें लग गया है। मैं चाहती हूँ कि यह मेरे और अपने लिए एक गर्वकी वस्तु बन जाय उसे एक कुलीन महिलाके समान अपना शरीर और मस्तिष्क स्वच्छ रखना चाहिए। "

बेटी द्वारा लड़कोंके साथ जाकर पथ भ्रष्ट हो जानेके विषयमें माँकी जो चिन्ता थी, वह स्वय,उसकी अपनीपर पुरुषोंको खोजनेकी इच्छा प्रकट करती थी। निय ंत्रण उसका बेटीके लिए इन बातोंपर जोर देनेका प्रभाव बेटीपर ठीक उलटा पड़ा बेटी वही करने लगी जिसे स्वय उसकी माँ अचेतनरूपसे करना चाहती थी। सच है, बच्चा अभिभावकका 'अचेतन-मन' होता है। जटिल बालक—जटिल अभिभावकका 'अचेतन मन' होता है। जैसे मानसिक विकृतिसे पीड़ित व्यक्ति अपनी विकृतिसे जुदा नहीं होना चाहता, वैसे ही मन मानसिक मानसिक ग्रसित बच्चेसे जुदा नहीं होना चाहता, यानी उसे सुधरने नहीं देना चाहता।

वे भी अपने प्रेम-सम्बन्धोंमें पुरुषोंके समान अनियत हो जायँगी, इसमें कोई सन्देह नहीं, किन्तु इस समय तो हम इसी परम्परामें जीवन यापन कर रहे हैं कि एक स्त्रीको अपने निर्वाहके लिए एक ही पुरुषको चुन लेना चाहिए।

पुरुषकी खोपड़ी गंजी हो जाने पर भी स्त्रियाँ उसके प्रति आकर्षित हो सकती हैं, लेकिन स्त्रीके मुखपर झुर्रियाँ पड़नेके बाद उसका आकर्षण घट जाता है। सेक्स और सत्ताके क्षेत्रमें पिता अपने जवान होते हुए पुत्रको प्रतिस्पर्धी समझता है, लेकिन बहुत अधिक चिन्ता नहीं करता, किन्तु बुढ़ापेकी ओर बढ़ती हुई माता अपनी लड़कीकी रवानीदार त्वचा, चमकती आँखें और उसका तरल अंग विन्यास देखकर घोर ईर्ष्यासे भर उठती है कि 'वह मुझसे अधिक आकर्षक है।' केवल वही स्त्री बुड्ढी होने से दुखित नहीं होती कि जिसे जीवनमें आकर्षित करते-फिरनेके बजाय कुछ और काम करनेका क्षेत्र मिल जाता है। किन्तु वह भी जिसकी काम भावना सन्तुष्ट नहीं होती है, अपनी पुत्रीके प्रति बेईमान हो सकती है। ऐसी स्त्रीका विवाहित जीवन दुखी होता है। उसका अज्ञात उद्देश्य होता—'जो मैं प्राप्त न कर सकी अपनी पुत्रीको भी प्राप्त न करने दूँगी।'

कुछ वर्षों पहिले ऐसी ही एक माता अपनी सोलहवर्षीय पुत्रीको लेकर मेरे स्कूलमें आई। उसने लड़कीकी बड़ी गम्भीर तस्वीर मेरे सामने खींची—'आज्ञा भंग करती है, उद्धत है लड़कोंसे बहुत अधिक मिलती जुलती है, झूठ बोलती है, आलसी है, घृणित है, क्रूर है। उसका मुख्य दोषारोपण यह था कि बेसी अपनी गरदन नहीं धोती। माँ द्वारा खींची गई तस्वीर बिल्कुल ठीक थी बेसी घृणित लड़की थी और उसके मुष्टिका प्रहारों द्वारा मुझे उसकी घृणा भी झेलनी पड़ी। किन्तु मेरी तो मुख्य कठिनाई बेसीको अपनी गरदन धोनेसे रोकना था—सबकी यही शिकायत थी कि वह जब-तब गरम पानीसे नहाती है, और सबका सब गरम पानी खर्च कर देती है। बेसीको सुधारनेमें दो वर्षसे भी अधिक लगे। लेकिन चूँकि हम माँकी बात कर रहे हैं, इसलिए बेसीके सुधारकी बातको जाने दें। उसका जीवन अब बिल्कुल सुखी है। किंतु माँने इस अनुभवसे कोई शिक्षा न ली और अब वह बेसीकी छोटी बहिनके जीवनको एक छोटा-मोटा नरक बना दे रही है। बेसी

भी माँने अपनी घृणाको विभिन्न प्रकारकी बेइमानियोंमें प्रकट किया। अपनी पुत्रीपर किये गये अत्याचारके लिए उस माँकेपास ऊपरी रूपसे देखनेमें उचित जानपड़नेवाले कारण भी थे। संक्षेपमें इस स्त्रीका जीवन यों था—अठारह वर्ष की उम्रमें उसने एक ऐसे आदमीसे विवाह किया, जिसे वह प्यार नहीं करती थी (—पिताका स्थानापन्न), और विवाहके थोड़े ही दिनोंके पश्चात यह आदमी नपुंसक हो गया। (—उसके मातृ-व्यासंगके कारण दूसरी पुत्रीका जन्म शराबके आधिक्यसे हुआ था।) अतृप्त कामके कारण इस माने स्वाभावत घर भरको दुःखी कर दिया और इसी कटु वातावरणमें बेसी बड़ी हुई। उसे धुँधला सा आभास हो गया था कि कहीं कुछ गड़बड़ अवश्य है। अपनी दबी हुई कामवृत्तिके लिए माताने सस्ते उपन्यास पढ़ने, होठोंको रंगने और अच्छे अच्छे वस्त्र पहनना प्रारम्भ किया। बेचारीको स्वयं अपने को ही धोखा देनेकेके लिए विवश होना पड़ा वरना उसे सचाईका सामना पड़ता यह कहना कि •

“मैं अपने पति और बच्चोंसे घृणा करती हूँ। जीवन मैंने कभी जिया ही नहीं। “डी डाल्स् हाऊस” की नोराके समान मुझे भी बाहर निकल कर अपनी और अपने सुखकी खोज करनी चाहिए। एक और किन्तु अधिक सरल मार्ग भी हो सकता था सारी स्थितिपर लीपा पोती करना।

“मैं अपनी बेसीको इतना अधिक प्यार करती हूँ कि मेरा संपूर्ण जीवन ही उसको सुखी बनानेमें लग गया है। मैं चाहती हूँ कि वह मेरे और अपने लिए एक गर्वकी वस्तु बन जाय उसे एक कुलीन महिलाके समान अपना शरीर और मस्तिष्क स्वच्छ रखना चाहिए। ”

बेसी द्वारा लड़कोंके साथ जाकर पथ-भ्रष्ट हो जानेके विषयमें माँकी जो चिन्ता थी, वह स्वयं उसकी अपनीपर पुरुषोंको खोजनेकी इच्छा प्रकट करती थी। निश चित उसका बेसीके लिए इन बातोंपर जोर देनेका प्रभाव बेसीपर ठीक उलटा पड़ा बेसी वही करने लगी, जिसे स्वयं उसकी माँ अचेतनरूपसे करना चाहती थी। सच है, बच्चा अभिभावकका ‘अचेतन-मन होता है। अटिन बालक—अटिल अभिभावकका ‘अचेतन मन’ होता है। जैसे मानसिक विकृतिसे पीड़ित व्यक्ति अपनी विकृतिसे जुदा नहीं होना चाहता, वैसे ही जटिल अभिभावक अपने जटिल बच्चेसे जुदा नहीं होना चाहता, यानी उसे सुधरने नहीं देना चाहता।

वे भी अपने प्रेम-सम्बन्धोंमें पुरुषोंके समान अनियत हो जायँगी, इसमें कोई सन्देह नहीं, किन्तु इस समय तो हम इसी परम्परामें जीवन यापन कर रहे हैं कि एक स्त्रीको अपने निर्वाहके लिए एक ही पुरुषको चुन लेना चाहिए।

पुरुषकी खोपड़ी गंजी हो जाने पर भी स्त्रियाँ उसके प्रति आकर्षित हो सकती हैं, लेकिन स्त्रीके मुखपर झुर्रियाँ पड़नेके बाद उसका आकर्षण घट जाता है। सेक्स और सत्ताके क्षेत्रमें पिता अपने जवान होते हुए पुत्रको प्रतिस्पर्धी समझता है, लेकिन बहुत अधिक चिन्ता नहीं करता किन्तु बुढ़ापेकी ओर बढ़ती हुई माता अपनी लड़कीकी रवानीदार त्वचा, चमकती आँखें और उसका तरल अंग विन्यास देखकर घोर ईर्ष्यासे भर उठती है कि 'वह मुझसे अधिक आकर्षक है।' केवल वही स्त्री बुड्ढी होने से दुःखित नहीं होती कि जिसे जीवनमें आकर्षित करते-फिरनेके बजाय कुछ और काम करनेका क्षेत्र मिल जाता है। किन्तु वह भी जिसकी काम भावना सन्तुष्ट नहीं होती है, अपनी पुत्रीके प्रति बेईमान हो सकती है। ऐसी स्त्रीका विवाहित जीवन दुखी होता है। उसका अज्ञात उद्देश्य होता—'जो मैं प्राप्त न कर सकी अपनी पुत्रीको भी प्राप्त न करने दूँगी।'

कुछ वर्षों पहिले ऐसी ही एक माता अपनी सोलहवर्षीय पुत्रीको लेकर मेरे स्कूलमें आई। उसने लड़कीकी बड़ी गम्भीर तस्वीर मेरे सामने खींची—'आज्ञा भंग करती है, उद्दत है, लड़कोंसे बहुत अधिक मिलती जुलती है, झूठ बोलती है, आलसी है, घृणित है, क्रूर है। उसका मुख्य दोषारोपण यह था कि बेसी अपनी गरदन नहीं धोती। माँ द्वारा खींची गई तस्वीर बिलकुल ठीक थी बेसी घृणित लड़की थी और उसके मुष्टिका प्रहारों द्वारा मुझे उसकी घृणा भी माननी पड़ी। किन्तु मेरी तो मुख्य कठिनाई बेसीको अपनी गरदन धोनेसे रोकना था—सबकी यही शिकायत थी कि वह जब-तब गरम पानीसे नहाती है, और सबका सब गरम पानी खर्च कर देती है। बेसीको सुधारनेमें दो वर्षसे भी अधिक लगे। लेकिन चूँकि हम माँकी बात कर रहे हैं, इसलिए बेसीके सुधारकी बातको जाने दें। उसका जीवन अब बिल्कुल सुखी है। किंतु माँने इस अनुभवसे कोई शिक्षा न ली और अब वह बेसीकी छोटी बहिनके जीवनको एक मोटा-मोटा नरक बना दे रही है। बेसी

की माँने अपनी घृणाको विभिन्न प्रकारकी बेईमानियोंमें प्रकट किया। अपनी पुत्रीपर किये गये अत्याचारके लिए उस माँके पास ऊपरी रूपसे देखनेमें उचित जान पड़नेवाले कारण भी थे। संक्षेपमें इस स्त्रीका जीवन यों था—अठारह वर्ष की उम्रमें उसने एक ऐसे आदमीसे विवाह किया, जिसे वह प्यार नहीं करती थी (—पिताका स्थानापन्न), और विवाहके थोड़े ही दिनोंके पश्चात यह आदमी नपुंसक हो गया। (—उसके मातृ-व्यासंगके कारण दूसरी पुत्रीका जन्म शराबके आधिक्यसे हुआ था।) अतृप्त कामके कारण इस स्त्रीने स्वाभावत पर भरको दुःखी कर दिया और इसी कटु वातावरणमें बेटी बड़ी हुई। उसे धुँधला सा आभास हो गया था कि कहीं कुछ गड़बड़ अवश्य है। अपनी दबी हुई कामवृत्तिके लिए माताने सस्ते उपन्यास पढ़ने, होठोंको रंगने और अच्छे अच्छे वस्त्र पहनना प्रारम्भ किया। बेचारीको स्वयं अपने को ही धोखा देनेकेके लिए विवश होना पड़ा वरना उसे सचाईका सामना पड़ता यह करना कि

"मैं अपने पति और बच्चोंसे घृणा करती हूँ। जीवन मैंने कभी जिया ही नहीं। "दी डाल्स् हाऊस" की नोराके समान मुझे भी बाहर निकल कर अपनी और अपने सुखकी खोज करनी चाहिए। एक और किन्तु अधिक सरल मार्ग भी हो सकता था सारी स्थितिपर सीधा रोती करना।

"मैं अपनी बेटीको इतना अधिक प्यार करती हूँ कि मेरा संपूर्ण जीवन ही उसको सुखी बनानेमें लग गया है। मैं चाहती हूँ कि यह मेरे और अपने लिए एक गर्वकी वस्तु बन जाय उसे एक कुलीन महिलाके समान अपना शरीर और मस्तिष्क स्वच्छ रखना चाहिए। "

बेटी द्वारा लड़कोंके साथ जाकर पथ-भ्रष्ट हो जानेके विषयमें माँकी जो चिन्ता थी, वह स्वयं उसकी अपनीपर पुरुषोंको खोजनेकी इच्छा प्रकट करती थी। निषेधात्मक उसका बेटीके लिए इन बातोंपर जोर देनेका प्रभाव बेटीपर ठीक उलटा पड़ा बेटी वही करने लगी, जिसे स्वयं उसकी माँ अचेतनरूपसे करना चाहती थी। सच है, बच्चा अभिभावकका 'अचेतन-मन' होता है। जटिल बालक— जटिल अभिभावकका 'अचेतन मन' होता है। जैसे मानसिक विकृतिसे पी[illegible] व्यक्ति अपनी विकृतिसे जुदा नहीं होना चाहता, वैसे ही जटिल अभिभावक— जटिल बच्चेसे जुदा नहीं होना चाहता, यानी उसे सुधरने नहीं देना चाहता।

अभिभावकोंकी बेइमानीका हेतु अक्सर अस्पष्ट होता है। इस बातका प्रमाण सौतेले बच्चोंके, (जिन्हें अपने इतिहासके बारेमें अंधेरेमें रखा जाता है।) उदाहरणोंमें मिलेगा। एक छोटी लड़की मेरे पास भेजी गई। आग उगलनेवाली इस लड़कीमें विद्रोह और शैतानी कूट-कूटकर भरी हुई थी। जिस स्कूलमें वह थी वहाँ उसका रहना असम्भव हो गया था। समरहिलमें कुछ हफ्तों तक उसने हममेंसे अधिकांशका जीना हराम कर दिया। एक बार जब वह बिगड़ी हुई थी तो मैंने धीमेसे कहा—'पेगी, तुम्हारी सौतेली माँ तो अच्छी है न?' आश्चर्यचकित होकर वह मेरी ओर देखने लगी।—'सौतेली माँ! वह चिल्लाई, मेरे सौतेली माँ नहीं है!' मैंने उसे विश्वास दिलाया कि 'है'।

'किसने कहा?' उसने पूछा।

'तुम्हारे पिताने मुझसे कहा था। तुम्हारी माँ तो तुम्हारे जन्मके बाद ही मर गई थी।'

उस समय हम कारखानेमें थे। वह एकाएक बाहर भागी और सारे घर भरको सर पर उठा लिया—'नील कहता है मेरे सौतेली माँ है।'

उसी क्षणसे पेगीमें आमूल परिवर्तन हो गया, सत्यके एक झोंकेमें उसकी घृणा और उसका विद्रोह उड़ गये। अब सब उसे प्यार करते हैं। अचेतनरूपसे वह जानती थी कहीं कुछ रहस्य है और इसी शंकाने उसे समाज विरोधी बना दिया था। उसे घृणासे भर दिया था। पिता और सौतेली माँ (यद्यपि वह सौतेली माँ अच्छी थी।) उसे सच-सच कहनेसे डरते थे। उद्देश्य अच्छा था, किन्तु इसी कारण संपूर्ण घर एक प्रवचना बन गया था।

दत्तक लिए हुए बच्चोंके माता-पिता भी अक्सर ऐसी ही गलतियाँ करते हैं। बच्चेको सच बात कह देना, बार-बार कहना अत्यन्त आवश्यक है। मेरी एक मित्र एक अवैध बच्चीकी माता है। मेरी सलाह मानकर उसने उस तीन वर्षकी बच्चीको सब सच बातें कह दी। मैंने उसे यह भी चेतावनी दे दी है कि इसी बातको जैसे-जैसे वह बड़ी होती जायगी वैसे-वैसे उसे दोहरानी पड़ेगी।' चौदह वर्षके बच्चेको [illegible] बात बतानेसे बड़ा भयंकर परिणाम होता [illegible] नैतिक धारणाओं, और

वर्ण-संकरताके साथ लगी पाप और शर्मकी भावनाके कारण किसी भी माता के लिए अपने बच्चेको उसकी अवैधानिकताकी बात बतानेमें बड़ी कठिनाई होती है। यही कारण है समाजकी आँखोंमें गिरनेके बजाय स्त्रियाँ गर्भपातको अधिक अच्छा समझती हैं। अचेतन मनमें स्त्री गर्भपातको हत्या ही समझती है कोई स्त्री गर्भपातसे कभी प्रसन्न नहीं होती। हमारे लिए यह प्रसन्नताकी बात है कि नई संततिमें कई ऐसी दृढ संकल्पकी स्त्रियाँ हैं, जो हमारी झूठी नैतिक धारणाओं और धर्म आदिकी परवाह किये बिना खुलेआम बच्चों को जन्म देती हैं।

'काम' के क्षेत्रमें अभिभावक सबसे अधिक बेईमान होते हैं। इसकी जड़ सीधे बचपनके भय और निषेधोंमें है। कई अभिभावक जन्मके विषयमें थोड़ा बहुत सच कह देते हैं किंतु संपूर्ण सत्य—बच्चा कैसे पैदा किया जाता है—कहनेमें आना कानी करते हैं। हमारे स्कूलोंमें लड़के लड़कियोंको अलग रखे जानेके लिए अभिभावकोंकी यही मनोवृत्ति कुछ कुछ जिम्मेदार है। पब्लिक स्कूलके लड़के-लड़कियोंका यौनसंबंधी ज्ञान अधकचरा होता है और यह अधकचरा ज्ञान भी विकृत होता है। मैं अनुभवसे यह बात जानता हूँ कि सहशिक्षाके स्कूलोंसे निकले लड़कोंकी तुलनामें पब्लिक स्कूलके लड़कोंकी भाषा अधिक अश्लील होती है, पब्लिक स्कूलकी लड़कियोंमें लड़कोंके प्रति अधिक अस्वाभाविक आकर्षण होता है। लड़कोंके स्कूलमें 'पवित्रताकी परंपरा के कारण 'काम' नीचे धकेल दिया जाता है—जिसका साफ साफ अर्थ होता है हस्तमैथुनसे परे रहो। लड़कियोंके स्कूलमें जो अकसर ऐसी स्त्रियों द्वारा चलाए जाते हैं, जो या तो स्वेच्छासे अपनी कामभावना दबा देती हैं, या किसी और कारणवश उन्हें ऐसा करना पड़ता है तो यही मानकर चला जाता है कि 'काम' जैसी कोई वस्तु है ही नहीं। तब इसको संतुष्ट करनेका एक ही मार्ग होता है—अध्यापिकाओं या अपनेसे बड़ी उम्रकी लड़कीके प्रति आकर्षण।

जब ऐसे स्कूलसे निकले लोग ब्याह करते हैं तो अभिभावकोंकी काम-ग्रंथियों (Complexes) के कारण बच्चोंका जीवन दुःखमय हो जाना स्वाभाविक ही है।

कभी कभी अभिभावकोंमें चतुर और दुष्ट प्रकृतिकी बेईमानीके भी उदाहरण मुझे मिलते हैं। बारह वर्षका एक लड़का मेरे स्कूलमें बहुत गुस्सी था, किन्तु

उसके माता पिता बड़े तीसमारखाँ थे और वे उसे लड़कोंके ऐसे स्कूलमें भेजना चाहते थे, जहाँ वह 'भला आदमी' बन सके। लड़केकी 'भला' बननेकी कोई इच्छा नहीं थी। जब समरहिल छोड़नेकी बात चली तो वह रो पड़ा। अभिभावकोंमें तुरत ईर्ष्या जाग उठी स्कूलसे वह आवश्यकतासे अधिक प्यार करता है। और यहाँ उन्होंने चालाकीसे काम लिया। उन्होंने एक नया स्कूल चुन लिया और उसके बहुत आकर्षक चित्र एडगरको दिखानेके लिए लाए। छुट्टियोंमें उन्होंने उस नए स्कूलके विषयमें एडगरसे इतनी चतुराईसे बात की कि उन्होंने एडगरके मनमें यह जमा दिया कि वह स्कूल उसने अपने लिए स्वयं चुना है। बादमें जब वह रोने लगा और समरहिलमें रहनेकी हठ करने लगा तो उसकी माँने कहा—'लेकिन नन्हें स्कूल तो तुमने स्वयं ने चुना था। तुम्हींने तो कहा था कि तुम वहाँ जाओगे। 'जब एडगर पुन रोने लगा तो वह साहस करके बोली 'एक टर्म तो वहाँ रहकर देखो। मैं वादा करती हूँ कि यदि वहाँ तुम्हें अच्छा न लगेगा तो तुम्हें पुन समरहिल भेज दूँगी।' यह झूठ था और वह जानती थी कि यह झूठ था। मेरा विश्वास है कि एडगर भी इस झूठको भाँप गया था, क्योंकि इस वादेसे उसकी मुरझाई उदासी जरा भी कम न हुई।

घटनाको कुछ वर्ष हो गये हैं किंतु जब भी मुझे इसकी याद आ जाती है तो मुझे क्रोध आ जाता है। एडगरने उस स्कूलमें कुछ वर्षों तक दुखी जीवन बिताया। अब वह जवान हो गया है। मेरे पास जब भी आता है बड़ी कटुतासे कहता है—'उन्होंने धोखा देकर मुझे उस स्कूलमें भेज दिया था।'

ऐसा ही उदाहरण एक माँ और बेटीका है। बहुत दिनोंबाद लड़कीने मुझसे कहा—"मुझे कभी अवसर ही न मिला। माँ हमेशा मुझसे अधिक चालाक निकली। जब भी मैं कहती कि मुझे उस स्कूलसे नफरत है तो वह ऐसे चतुर तर्कसे काम लेती कि मुझे विश्वास होने लग जाता था कि 'वह स्कूल तो मैंने स्वयने चुना है।

इस प्रकार कपटतापूर्ण बेईमानी तो सरासर गुनाह है। यह बहुत प्रचलित है और आसानीसे पहिचानी जा सकती है। मैं एक ऐसी माताको जानता हूँ जो अपनी अठारह वर्षकी लड़कीके लिए कपड़े स्वयं खरीदती है। वह हमेशा ऐसे वस्त्र और टोपियाँ चुनती है, जिनसे उसकी लड़कीको घृणा

होती है। किंतु वह सदा इस प्रकार तर्क करती है कि ऐसा लगता है मानों लड़कीने स्वयं उनका चुनाव किया हो। ऐसे अभिभावक अक्सर बातूनी होते हैं और बच्चोंके सामने बेइमानीसे भरे हुए शब्दोंकी झड़ी लगा देते हैं 'देखो बेटा (या बेटी), मैं तुम्हारी ही भलाईकी बात सोच रही हूँ। तुम्हारे पिता तुमसे अधिक अकलमन्द हैं' ऐसी माताएँ जिम्मेदारी हमेशा पतिके सर पर पटक देती हैं, जो बेचारा अपनी पत्नीका दास होता है। 'और वे (पिता) दूरकी सोच सकते हैं, और इसके लिए तुम्हें कभी पछताना न पड़ेगा' इस प्रकार कहती हुई कपट-चाल चलती रहती है।

ऐसे माता पिता यह कभी नहीं सोचते कि उनकी ऐसी बातोंका परिणाम यह होता है कि उनके बच्चे उनसे घृणा करने लगते हैं। उनका तिरस्कार करने लगते हैं। ऐसे अभिभावक अपने बच्चोंसे अधिक अपनेको प्यार करते हैं। वे पूर्ण स्वार्थी और नितान्त भीरु होते हैं वे इतने अन्यायी, जिद्दी, ढोंगी होते हैं कि बच्चेका जीवन नष्ट कर देते हैं। ऐसी माताएँ बड़ी दृढ़-संकल्पकी होती हैं, और उनमें महत्वाकांक्षा और सत्ताकी अस्वाभाविक इच्छा बड़ी प्रबल होती है। किंतु ऐसी स्त्रियोंके स्वयंके जीवन असफल होते हैं। वे अपने बच्चोंके साथ तादात्म्य स्थापित कर लेती हैं और उनके द्वारा नई सफलताओंकी इच्छा करती हैं। ऐसी माताएँ जन्मजात कलाकारोंको वकील और डाक्टर और जन्म जात नर्तकोंको अध्यापक बनने पर मजबूर कर देती हैं। किंतु ऐसी माताएँ सौभाग्यसे बहुत कम होती हैं।

यह स्पष्ट है कि अभिभावकोंकी बेइमानीमें 'मूलत सत्य'को बच्चोंसे नहीं, बरन् अपनेसे छिपानेका एक प्रयत्न होता है। बच्चेपर इसका प्रभाव बड़ा हानिकारक होता है, क्यों कि 'माँ झूठी है'—जैसे भयकर विचारोंको उसे दबा देना पड़ता है। जब ऐसा लड़का मेरे पास आता है तो मेरी परिस्थिति बड़ी विचित्र हो जाती है और मुझे मजबूर होकर स्वीकार करना पड़ता है कि—माँ झूठी है। कई लड़कोंने मुझसे कहा—'लेकिन माँ ने तो कहा था कि बच्चोंको 'डॉक्टर' लाता है।' आजकल मेरे स्कूलमें कमसे कम छ लड़के ऐसे हैं जो शंका-आशंकामें भूल रहे हैं कि 'कौन सच कहता है—माँ या नील!' इसी प्रश्नमें यह प्रश्न भी समाया हुआ है कि 'कौन सबसे अच्छा है—पिताजी

या माँ ?' अर्थात्— दोनोंके झगड़ेमें मैं किसका साथ दूँ ?' मेरा अनुभव यह है—जब जब बच्चोंको उनके माता पिताओंकी बेइमानियोंसे परिचित करा दिया गया, तब-तब परिणाम अच्छे निकले—क्योंकि बच्चा यह जानकर प्रसन्न हो जाता है कि आखिर पिताजी और माँ भी आदमी ही हैं।

शिक्षित अभिभावकोंमें फैले 'झूठों' के विषयमें मैंने कुछ नहीं कहा है। रेलमें यात्रा करते समय अक्सर निम्न, मध्यम या मजदूर-वर्गकी स्त्रीको अपने बच्चोंपर खीझते हुए देखा जा सकता है—'कट दिया, मत कर! देख, वह पुलिसवाला आ रहा है!' या—'रोएगा तो वह काला आदमी तुझे उठा ले जाएगा।' ये झूठ, सफेद झूठ इस अर्थमें हैं कि ये अनैतिक हैं। इनका उद्देश्य प्रौढ़ोंको शान्त-जीवन व्यतीत करने देना होता है और मैंने अब तक एक भी बच्चा ऐसा नहीं देखा, जिसने पुलिसवालेके डरसे अपना काम बन्द कर दिया हो। इन्हीं उपरोक्त कथनोंको दुहरानेसे बच्चेमें 'तिरस्कार' पैदा होता है। ऐसे स्पष्ट झूठसे 'पवित्रता' और वफादारीकी दुहाईके नैतिक झूठ अधिक घातक होते हैं। झूठ तभी झूठ होता है जब वह आत्माको विकृत कर दे। मच्छी पकड़नेवाला यदि हाथ फैलाकर वर्णन करने लगे कि कैसे मछली पकड़ी जाती है (मानों वह हाथ ही से मच्छी पकड़ सकता है!) तो वह न अपनेको और न दूसरोंको नुकसान पहुँचाता है। उसका उद्देश्य मात्र अपने अहंको महत्व देना होता है। साधारणतया जनता अतिरंजित बातोंपर सरलतासे विश्वास कर लेती है यदि ब्राउन कहे कि उसने मोटर सत्तर मील प्रति घंटेके हिसाबसे चलाई, तो लोग समझ जाते हैं कि गति कमसे कम पचपन तक तो पहुँची ही होगी। मेरी मोटर मेरा अपना ही भाग है, अत उसकी प्रशंसा करके मैं यही कहना चाहता हूँ कि मैं कितना अद्भुत व्यक्ति हूँ! बच्चे ऐसे झूठ आसानीसे बिना भले-बुरेके विचारके बोल देते हैं। ग्रेगीके 'सेन्टीमेन्टल टॉमी' ग्रन्थमें शॉवेल एक घरबारहीन-बच्चा,—टॉमीके साथ प्रतियोगितामें भाग लेता है। डींग हाँकनेमें टॉमी जीत रहा था, अत शावेल निराश होकर चिल्लाया—'मैंने पिताने एक आदमीको फाँसीपर लटकाते हुए देखा है।' टॉमीने एकदम उत्तर दिया—'वो आदमी मेरा पिता था।' मेरे विद्यार्थियोंमेंसे छोटे लड़के अपने दवाई महात्रोंकी सख्याके विषयमें डींग हाँकते हैं। यहाँ मुख्य वस्तु याद रखनेकी

यह है कि जब टॉमी कहता है कि फाँसीपर लटकाया जानेवाला आदमी उसी का पिता था तो वह जानता है कि वह झूठ बोल रहा है किन्तु जब कोई अभिभावक अपने पुत्रसे कहता है कि झूठ बोलना बुरा है तो वह यह नहीं जानता कि वह स्वयं झूठ बोल रहा है।

आजकल जिन वस्तुओंमें हम विश्वास नहीं करते हैं, वे एक समय सच्ची मानी जाती थीं। लोग सचमुच यह मानते थे कि चूल्हेमें या भाड़में जाओ' (Damon) कहनेपर नरककी यातना भोगनी पड़ती है। बड़े-बड़े मामलोंमें संपूर्ण जाति झूठको सत्य मान लेती है, जब मैं बच्चा था तो हम सब, क्या वृद्ध—क्या जवान, यह विश्वास करते थे कि बोअर युद्ध क्रूर और जंगली किसानोंके विरुद्ध एक धर्म-युद्ध था ऐसे लोग अब भी मौजूद हैं जो सोचते हैं कि जर्मनोंने कैनेडियन अफसरोंको चारों ओर पेड़ोंसे लटका दिया था। और रोमांचक समाचारोंमें रुचि रखनेवाले पाठक अब भी यही विश्वास करते हैं कि रूसके लोग जंगली हैं और गुलामोंसे डंडेके जोर पर काम करवाते हैं। गैरजिम्मेदार और न्यस्त स्वार्थमय प्रेसके जमानेमें, जिसका काम ही लोगोंको स्वयं विचार करनेसे रोकना है, यदि छपा हुआ शब्द वेद वाक्यकी महत्ता प्राप्त कर ले तो इसमें आश्चर्य ही क्या?

चलते-चलते प्रेसके विषयमें भी कुछ कह दूं। दो पत्रोंको छोड़कर अन्य कोई पत्र मेरे लेख नहीं छापते। हो सकता है हमारे दैनिक पत्रोंके पास ऐसे लेखकोंकी एक 'ब्लेक लिस्ट' हो, जिनके विचार इस भारी सामाजिक प्रवंचनाके लिए खतरनाक हों। कुछ दिन पहले हमारे एक प्रतिष्ठित दैनिकमें एक पब्लिक स्कूलके मालिकने अभिभावकोंके नाम पत्र लिखते हुए कहा कि अध्यापकोंको हजार आर्थिक चिन्ताएँ होती हैं, अत अभिभावक लोग अपने बच्चोंकी फीस जल्दी जमा करवा दें। मैंने एकदम उस पत्रका एक उत्तर लिखकर सम्पादकको भेज दिया, जिसका सार यह था कि अभिभावकोंसे प्रार्थना करना व्यर्थ है, क्योंकि जो अभिभावक फीस नहीं देते वे वास्तवमें अपने बच्चोंसे घृणा करते हैं। उसपर पैसा क्यों खर्च करें? मेरे पत्रमें अनुभव से प्राप्त किया हुआ एक सत्य था। उस दैनिक पत्रने मेरा पत्र लौटा दिया। क्योंकि यह खतरनाक था, क्योंकि माता-पिताके प्रेमकी वर्तमान परम्परागत

व्यापक मिथ्या धारणाको उसने ललकारा था, क्योंकि उसने याजके पिताके अधिकारको ललकारा था। सम्पादक एक भी रूढ़ि-प्रिय पाठक या पूँजीपति विज्ञापनदाताको अप्रसन्न करनेका साहस नहीं कर सकता था! मैंने यह घटना अपने एक अनुभवी पत्रकार मित्रको बताई। उसने कहा—"मैं भी तुम्हारी चिट्ठी नहीं छापता और कारण बतानेकी भी कोई आवश्यकता नहीं समझता। हम पत्रकारोंको अचेतन-रूपसे ही यह समझ लेनेकी आदत हो गई है कि हमारे पूँजीपति मालिक क्या चाहते हैं? हमारा नियम है जब कभी निश्चय न कर पाओ, मत छापो! हमारा काम जनताको ऐसी महत्वहीन, साधारण खबरें देते रहना है, जिससे वह किसी नई वस्तु पर विचार न कर सके।"

अब मैं समझा कि जब पौंडका मूल्य घटता जा रहा था और बेकारी बुरी तरह फैली हुई थी, तब हमारे समाचार-पत्रोंमें 'वेस्ट एण्ड फ्लेटर्स रिवाल्वर चल' जैसी खबरें क्यों छपती थीं?

अभिभावकोंकी बेईमानी पर विचार करते समय मोटे रूपमें सामाजिक बेईमानियों पर विचार करना असम्भव है। महान गृह-युद्धको अपना आशीर्वाद देकर चर्चने बेईमानीकी, लोमड़ीका शिकार, जेल, फाँसी, बच्चोंको पीटना, 'सजातीय' कामसे पतित लोगोंके साथ क्रूर-व्यवहार आदिके प्रति भी चर्चका रुख ईमानदारीका नहीं है। कोई भी चर्च जो राज्यके साथ गठबन्धन कर लेती है वह, ढोंग भरे नकारात्मक रुखके कारण राज्यका ढिंढोरा ही पीट सकती है।

हमारी शिक्षा प्रणाली झूठोंसे भरी पड़ी है। हमारे स्कूलोंमें प्रत्यक्ष यह भूल फैलाया जाता है कि आज्ञापालन, परिश्रम और सम्मान करना गुण है, और 'इतिहास' तथा 'भूगोल' का नाम शिक्षा है। अभी बहुत दिन नहीं हुए एक प्रधानाध्यापिका को इसलिए निकाल दिया गया कि उसने विद्यार्थियोंको बच्चोंके जन्मके विषयमें स्पष्ट सत्य बताया था। जो कोई भी अध्यापक किसी भी वस्तुके विषयमें सत्य कहनेका साहस करता है, वह निश्चित ही अधिकारियोंका कोप-भाजन बन बैठता है।

वकालतमें वकील लोग अपनेसे पहलेके लोगोंपर जिम्मेदारी डालकर बेईमानीसे अपने आपको बचा लेते हैं वे 'नजीर (उदाहरण)' का आधार

देकर चलते हैं। जैसे—"चूँकि जज 'क' ने १८४० में चौर्योन्मादके एक मामलेमें एक प्रकारका फैसला दे दिया है, अत १९३२ में जज 'ख' को भी वैसे ही मामलेमें वैसा फैसला देना चाहिए !" क़ानून पीछे देखता है उसे जो सबसे निर्जीव वस्तु होती है । प्रारम्भमें धनवानोंने गरीबोंसे अपनी रक्षा करनेके लिए कानून बनाए थे आज भी क़ानूनका यही मुख्य काम है। प्रतिदिन हम ऐसे व्यक्तियोंके विषयमें पढ़ते हैं, जिनका उपचार डाक्टर ही कर सकते हैं, किन्तु क़ानून उन्हें जेलमें भेज देता है । १८४० के बुजुर्गोंने मनोविज्ञानका नाम भी न सुना था । और चूँकि पचास वर्ष पहले 'क' को कोड़ेकी सजा मिली थी, अत आज 'ख' को भी कोड़ेकी सजा मिलनी चाहिए । क़ानून बीते जमानेके राज्यका प्रतिनिधित्व करता है और उस राज्यकी धारणा या विश्वास था कि दुष्टताके लिए दण्ड मिलना ही चाहिए—और कि सुधारके लिये पहले प्रायश्चित करना और दुख उठाना आवश्यक है।

रूसकी नई सभ्यताने पुरानी 'मूठों' को उखाड़ फेंका है किन्तु दुर्भाग्य से उसके स्थानपर वहाँ एक नई मूठका प्रचार हो गया है कि मजदूर ही सबसे महत्वपूर्ण प्राणी है। साम्यवादका भविष्य जिस बातपर निर्भर करता है, वह यह है कि वह कहाँ तक अपने आपको नई मूठोंसे सुरक्षित रख सकता है । और हममेंसे कइयोंका यह विचार है कि इंगलैण्डका भविष्य तभी अच्छा हो सकता है कि जब वह अपने पुराने मूल्योंको त्याग देगा । हमारी मूठों का घड़ा भर चुका है। क्रांतिका अर्थ सदा पिताके प्रतीकको ललकार कर उसे नष्ट कर देना होता है । रूसमें यह प्रतीक बहुत स्पष्ट था 'लिटल फ़ादर'—ज़ार, किन्तु हमारी अंग्रेजी सभ्यतामें यह प्रतीक बहुत गूढ़ और उलझा हुआ है । बहुत कम लोग ऐसे हैं जो सम्राट् जार्जको हटाना चाहते हों । हम जानते हैं कि सम्राट जार्ज तो मात्र भावनाके, और वास्तविक सत्तासे वंचित प्रतीक हैं हमारे वास्तविक पितृ प्रतीक कई और हैं जैसे चर्च, कामधन्धे, पब्लिक स्कूल, पूँजीपति, सेना, नौसेना, साम्राज्य आदि आदि । जो इन प्रतीकोंमें विश्वास करता है, वह अपने घरेलू देवी-देवताओंको नहीं त्याग सकता (अर्थात् संकुचित दृष्टिकोणका त्याग कर एक स्वस्थ दृष्टिकोणको नहीं अपना सकता—अनु०)

घरोंमें तब तक सुधार नहीं किया जा सकता, जब तक राज्य में सुधार न किए जाएँ क्योंकि घर छोटा-मोटा राज्य ही होता है। घरमें स्वतन्त्रता कुछ अधिक होती है आप अपने घरके पिछवाड़ेके बगीचेमें, यदि दीवार काफी ऊँची है तो नंगे होकर धूप स्नान कर सकते हैं, किन्तु समुद्रके किनारे आप वैसा नहीं कर सकते। (घर यहाँ राज्यका प्रतीक है) एक मनुष्य अपने समाजमें फैले मिथ्याचारोंको ठिकाने लगानेमें चाहे असफल रहे किन्तु अपने चारोंओर फैले मिथ्याचारोंका तो वह खात्मा कर ही सकता है। लेकिन सुधारक लोग 'अपने ही मिथ्याचारों से सुधार करना आरम्भ कर देते हैं, और इसीलिए सुधार करना उतना कठिन हो जाता है क्योंकि एकके मिथ्याचार दूसरेके मिथ्याचारोंसे अक्सर बिलकुल भिन्न होते हैं। मैं अपने स्कूलमें मिथ्याचारोंको मिटानेका पूरा प्रयत्न करता हूँ। मेरे विद्यार्थी कभी 'धन्यवाद' तक नहीं कहते, क्योंकि इसके कोई मानी नहीं होते। दूसरी ओर वे न कभी किसी लंगड़े आदमीका मजाक उड़ाते हैं, और न कभी पशु-पक्षीसे छेड़-छाड़ करते हैं। लेकिन जब मैं अपने स्कूलके आदर्शों और उद्देश्योंको लिखकर या भाषण देकर और लोगोंको समझानेका प्रयत्न करता हूँ, तो मुझे बहुत अधिक सफलता नहीं मिलती क्योंकि मेरी अपनी पहुँच, मात्र उन्हीं तक हो सकती है कि जिनकी सत्यविषयक धारणा वैसी ही है जैसी कि मेरी।

बच्चोंको समयका कोई ख्याल नहीं होता (जब मैं बच्चा था तो एक साल मेरे लिए बहुत लम्बा होता था) और बचपन अधिकांशतः 'अज्ञात मानस' से जिया जाता है। जिस समय लड़का बड़ा होकर मोटर या हवाई जहाज चलानेकी बात सोचता है, उस समय अभिभावक पीछे मुड़कर बचपन के सुखी दिनोंकी याद करने लगता है। वह यह भूल जाता है कि नियन्त्रण, अपरत्व, निषेध आदिने उसके बचपनको कितना दुखी बना दिया था। वास्तवमें बचपन की ओर इस प्रकार भावुक रीतिसे देखने का कारण यह है कि नियन्त्रण और निषेधोंके बधनोंके कारण हमें कभी 'बचपन' जीने ही नहीं दिया गया। अतः प्रौढ़ोंकी यह मनोदशा बचपनकी निरोधित भावनाओंका स्वाभाविक परिणाम है। सत्य यह है कि हम सब पीछे लौटकर बचपन की सभी तरंगोंका आनन्द उठा लेना चाहते हैं—एक 'कमी' पूरी कर लेना चाहते हैं। आधुनिक शिक्षा इस महत्वको समझती है, अतः वह बच्चे को अपना 'कल्पना-जीवन' जीनेका सपूर्ण अवसर देती है। स्कूलके विषयक्रम (पाठ्य-क्रम) के अत्याचार को मिटानेका प्रयत्न किया जा रहा है—ऐसा विषय क्रम जो जीवनको बुढ़ापेमें बदल देता है। शिक्षा का एक उद्देश्य यह होना चाहिए कि वह बच्चेको 'विचार (Think)' करनेसे रोके।

कितना खयाल करती हूँ' अपने रुद्ध बचपनके कारण ही यह बच्ची की सी इच्छा उसमें (माँमें) जग उठी थी।

पुरुष अपने बचपनको स्त्रियोंसे अधिक स्पष्ट रूपसे प्रकट करते हैं। पुरुष उसे अपने कार्यमें प्रकट करते हैं, स्त्रियाँ अपनी बातों में। माँ अपनी पुत्रीके खिलौनोंसे कभी नहीं खेलती, किन्तु पिता अपने पुत्रके खिलौनोंसे जी भर कर मन बहलाव करता है। जहाज, इंजन आदि खिलौनोंको चाहनेवाले सहस्रों बड़े लड़कोंके लिए एक यंत्रसबंधी साप्ताहिक प्रकाशित किया जाता है। किन्तु पिता मिलीके धरातल पर उतर कर बात करनेकी कल्पना भी न करेगा जब कि माँ सूसानके साथ बचपन भरा वार्तालाप सरलतासे कर सकती है। व्यक्तिगत रूपसे मैं प्रौढ़ोंके बचपनके प्रति कड़ा रुख इख्तियार नहीं करना चाहता। जो प्रौढ़ अपने बचपनको छिपानेका प्रयत्न करते हैं, वे बच्चोंसे घृणा करते हैं। सत्य यह है कि अभिभावकोंमें स्वस्थ और अधिक बचपनकी आवश्यकता है। उन्हें अपने बच्चोंके खेलमें साथ देना चाहिए। अपने लड़केके खिलौनोंके साथ खेलनेवाला पिता उस पितासे कि जो बचपन भुलाकर हर समय मुँह चढ़ाए रहता है, कहीं कम खतरनाक है। निकृष्टतम पिता तो वह होता है, जो अपनी बच्चकी-सी भावनाओंको जानबूझकर दबा देता है। वह अपने आपको बच्चोंसे अलग रखता है और सम्मानकी दीवार खड़ी करके उनसे अपनी रक्षा करता है। उसे डर लगा रहता है कि कहीं वे उसके बीते जीवनके विषयमें कुछ जान न लें। उसे यह भी डर रहता है कि कहीं उसके भाई-बहिन उसके बच्चोंके सामने उसके बचपनकी बातें न कर बैठें। और बचपनमें उसे जिस नामसे पुकारा जाता था, वह न बता बैठे। मेरे स्कूलमें ऐसे पिताओंके एक-दो बच्चे सदा रहते हैं और वे जीवनसे सदा कुछ-कुछ असंतुष्ट रहते हैं।

चौदहवर्षीय जॉर्जका पिता क्रूर और रूखा है। वह धनी है। परंपरामें विश्वास करनेवाला आदमी है: गोल्फ, ब्रिज, क्रिकेट वह सभी सुधारों और नए आन्दोलनोंसे घृणा करता है। खेलोंमें उसकी रुचिसे उसका बचपन स्पष्ट हो जाता है उसे अन्य भूतपूर्व छात्रोंके साथ लॉर्ड्समें देखा जा सकता है .जॉर्जमें उसकी इतनी ही रुचि है कि वह चाहता है कि

जॉर्ज इतनी योग्यता प्राप्त करले कि लार्ड्सर्में खेल सके। अपने पिता तक पहुँच न होनेके कारण जॉर्जको बड़ा कष्ट होता है। छुट्टियोंमें घरमें उसका जीवन रुँधा-रुँधा-सा और अस्वाभाविक होता है। अपने पितासे अभिन्नता स्थापित करनेकी उसकी बहुत इच्छा है। उसने मुझसे कहा—'मैं पिताजी के साथ निकटता स्थापित करना चाहता हूँ, किन्तु जब-जब मैं प्रयत्न करता हूँ, वे एक दीवार-सी खड़ा कर देते हैं।' यह पिता बोतलसे निकलते कागकी या पानीसे निकलती बतखकी बड़ी अच्छी नकल कर सकता है, अत उसके प्रति न्यायकी दृष्टिसे मुझे स्वीकार करना चाहिए कि मामला सुधरनेकी सीमासे बिलकुल बाहर तो नहीं है।

मेरे एक परिचितने मुझे बताया कि उसके जीवनमें सबसे बड़ा दुःख यही रहा कि उसकी माँ न कभी उससे साथ खेली, न कभी लाड़ प्यार किया और न कभी उससे स्नेह ही किया। ऐसे अभिभावक अपने बचपनको दबाते हैं। इनके उद्देश्य कई और नाना प्रकारके होते हैं। साधारणतया ऐसे अभिभावकोंका बचपन स्नेहहीन होता है उनके पिताओंने उन्हें अपनेसे दूर रखा, अत आगेके जीवनमें न वे प्रेम कर सके, न आनन्द प्राप्त कर सके। वे सुखकी खोजमें लगे रहते हैं। उनके बच्चे उनके लिए भाररूप होते हैं, क्योंकि वे तो अपने अभिभावकोंसे हँसी-मज़ाक, खेल कूदकी आशा रखते हैं, किन्तु अभिभावक अपने दुःखी जीवनकी चिंतामें ही रत रहते हैं, बच्चे निराश हो जाते हैं। इज़्ज़तका ख़याल करनेवाला पिता अन्तर्मुखी होता है इस प्रेमके कारण इज्जतके प्रश्नको वह बहुत अधिक महत्व दे बैठता है, और यह कि बच्चोंके सामने वहीं भेद न खुल जाय। मैं ठीक-ठीक तो नहीं कह सकता, किन्तु मेरा अनुमान है कि ऐसे ही लोग बुढ़ापेमें दूसरा बचपन प्राप्त करते हैं ये पचहत्तर वर्षकी उम्रमें मात बरसके बनना चाहते हैं।

अभिभावकोंके इस बचपनमें एक खतरा है। इसके कारण उनमें बच्चेके प्रति ईर्ष्या जागृत हो सकती है खास कर जब शिशु-पति (Child husband) अपनी पत्नीसे माँ का प्यार चाहता है। वह अपने बच्चोंको अपना प्रतिस्पर्धी समझता है। इसी प्रकार माताएँ भी अपने पतिसे पिताके

प्यारकी चाहना करता है, और अपनी पुत्रियोंको अपना प्रतिस्पर्धी समझता है। यह सब अचेतन क्षेत्रमें होता है और अक्सर शिष्ट-व्यवहारमें इसकी झलक दिखाई पड़ जाती है। बच्चोंकी तरफ देख देख कर आँखें निकालना, इसका साधारण लक्षण है। एक 'केस' में, माताकी मृत्युके पश्चात पिताका रुख एकदम बदल गया, और वह अपने पुत्र और पुत्रीसे बहुत स्नेह करने लग गया, जब कि पहले वह अपने कुटुम्बके उन्हीं लोगोंसे ईर्ष्या करता था और उनके साथ बहुत बुरा व्यवहार करता था। उसका तर्क यह था कि 'उनके लिए मैं ही अब पिता और माता हूँ,' किन्तु उसकी अज्ञात भावना यह थी कि 'बच्चोंकी माँ चली गई; अब उसके प्यारको लेकर एक दूसरेसे ईर्ष्या करनेका कोई कारण नहीं है।'

जो भी हो, हृदयसे अपने आपको 'बच्चा' अभिव्यक्त करनेमें हानिकी अपेक्षा लाभ कहीं अधिक है। प्रत्येक सफल अध्यापक हृदयसे बच्चा होता है, वह बच्चोंके काम और खेलोंकी तह तक जा सकता है, क्योंकि वह उन्हींके विकासकी भावना-सतह पर होता है। आजसे बीस वर्ष पहले मैं कहीं अधिक अच्छा अध्यापक था। जब कभी मैं यह अनुभव करूँगा कि मैं वृद्ध होता जा रहा हूँ, तो अध्यापकका काम छोड़ कर अपने परिचित समाजवर्गमें होटल खोल कर ऐसे लोगोंका अतिथिरूपमें स्वागत करूँगा जो हँसना खेलना और मस्त रहना भूल गए हैं। लेकिन उसमें अभी देर है।

अभिभावक और शिक्षा [७]

२६

हमारा युग निपुणताका युग है। रोजमर्राके जीवनमें हम निपुण लोगोंकी सलाह लेते हैं—ऑपरेशनके लिए हम सर्जनको बुलाते हैं, और टैंकी खराब हो जाती है तो हम कुशल कारीगरको बुलाते हैं। रूसमें भी जहाँ कहीं पुराने आर्थिक और राजनीतिक सिद्धान्त उखाड़ कर फेंक दिए गए हैं, टीके और अपेंडीसाइटिस (पेटका रोग) के विषयमें डॉक्टरोंकी ही बात सत्य मानी जाती है। धूप-स्नान और फलाहार पर विश्वास करनेवाली नई संतति कल इन्हीं चीजोंको अन्धविश्वास समझ कर अमान्य कर दे सकती है। हम वकीलों, पादरियों, इंजीनियरों, और शिल्पियोंकी सलाह मानते हैं, किन्तु एक क्षेत्र ऐसा है जिसमें सब अपने आपको निपुण समझते हैं—जो है 'शिक्षा'। हो सकता है इसी कारण उपाधियोंकी फेहरिस्तमें कभी अध्यापकका स्थान नहीं होता, मोटरें बनानेवालेको लॉर्ड बनाया जा सकता है, किन्तु ईटनका प्रधानाध्यापक 'नाइट' कभी नहीं बनाया जाता। अभिभावक शिक्षाकी रूढ़िवादी प्रणाली तो स्वीकार करते ही हैं किन्तु साथ ही उन्हें इस बातका भी बड़ा अभिमान होता है कि उन्होंने बहुत सोच समझकर ही ऐसा किया है। ईसाई धर्मके समान 'शिक्षा' को भी हमने इतना स्वीकार कर लिया है कि उसपर निष्पक्षरूपसे विचार करना असम्भव सा हो गया है। अभिभावक अध्यापककी व्यक्तिगत रायको कोई महत्त्व नहीं देते किन्तु विषय व्यवस्था (Curriculum) को वेद वाक्य मान कर चलते हैं। आज का अभिभावक शिक्षाकी दृष्टिसे 'ग्रांट' को उतना महत्व नहीं देता, किन्तु

प्यारकी चाहना करता है और अपनी पुत्रियोंको अपना प्रतिस्पर्धी समझती है। यह सब अचेतन चेतनमें होता है, और अक्सर शिष्ट-व्यवहारमें इसकी झलक दिखाई पड़ जाती है। बच्चोंकी तरफ देख देख कर आँखें निढाल लना, इसका साधारण लक्षण है। एक 'केस में, माताकी मृत्युके पश्चात पिताका रुख एकदम बदल गया, और वह अपने पुत्र और पुत्रीसे बहुत स्नेह करने लग गया, जब कि पहले वह अपने कुटुम्बके इन्हीं लोगोंसे ईर्ष्या करता था और उनके साथ बहुत बुरा व्यवहार करता था। उसका तर्क यह था कि 'उनके लिए मैं ही अब पिता और माता हूँ,' किन्तु उसकी अज्ञात भावना यह थी कि 'बच्चोंकी माँ चली गई अब उसके प्यारसे लेकर एक दूसरेसे ईर्ष्या करनेका कोई कारण नहीं है।'

जो भी हो, हृदयसे अपने आपको 'बच्चा' अभिव्यक्त करनेमें हानिकी अपेक्षा लाभ कहीं अधिक हैं। प्रत्येक सफल अध्यापक हृदयसे बच्चा होता है, वह बच्चोंके काम और खेलोंकी तह तक जा सकता है, क्योंकि वह उन्हींके विकासकी भावना-सतह पर होता है। आजसे बीस वर्ष पहले मैं कहीं अधिक अच्छा अध्यापक था। जब कभी मैं यह अनुभव करूँगा कि मैं वृद्ध होता जा रहा हूँ, तो अध्यापकका काम छोड़ कर अपने परिचित सान्ध्यपर्णमें होटल खोल कर ऐसे लोगोंका अतिथिरूपमें स्वागत करूँगा; जो हँसना खेलना और मस्त रहना भूल गए हैं। लेकिन उसमें अभी देर है।

५२

हमारा युग निपुणताका युग है। रोजमर्राके जीवनमें हम निपुण लोगोंकी सलाह लेते हैं—ऑपरेशनके लिए हम सर्जनको बुलाते हैं और टंकी खराब हो जाती है तो हम कुशल कारीगरको बुलाते हैं। इसमें भी जहाँ कहीं पुराने आर्थिक और राजनीतिक सिद्धान्त उखाड़ कर फेंक दिए गए हैं, टीके और अपेंडीसाइटिस (पेटका रोग) के विषयमें डॉक्टरोंकी ही बात सत्य मानी जाती है। धूप-स्नान और फलाहार पर विश्वास करनेवाली नई संतति भले इन्हीं चीजोंको अन्धविश्वास समझ कर अमान्य कर दे सकती है। हम वकीलों, पादरियों, इंजीनियरों, और शिल्पियोंकी सलाह मानते हैं, किन्तु एक क्षेत्र ऐसा है जिसमें सब अपने आपको निपुण समझते हैं—वो है 'शिक्षा'। हो सकता है इसी कारण उपाधियोंकी फेहरिस्तमें कभी अध्यापकका स्थान नहीं होता, मोटरें बनानेवालेको लॉर्ड बनाया जा सकता है, किन्तु इटनका प्रधानाध्यापक 'नाइट' कभी नहीं बनाया जाता। अभिभावक शिक्षाकी रूढ़िवादी प्रणाली तो स्वीकार करते ही हैं, किन्तु साथ ही उन्हें इस बातका भी बड़ा अभिमान होता है कि उन्होंने बहुत सोच समझकर ही ऐसा किया है। ईसाई धर्मके समान 'शिक्षा' को भी हमने अधिक स्वीकार कर लिया है कि उसपर निष्पक्षरूपसे विचार करना असम्भव सा हो गया है। अभिभावक अध्यापककी व्यक्तिगत रायको कोई महत्व नहीं देते किन्तु विषय व्यवस्था (Curriculum) को वेद वाक्य मान कर चलते हैं। आज का अभिभावक शिक्षाकी दृष्टिसे 'ग्रीक' को उतना महत्व नहीं देता, किन्तु

गणित, इतिहास, और अंग्रेजी साहित्यको वह काफी महत्व देता है। इसलिए जब मैं कहता हूँ कि प्रत्येक अभिभावक शिक्षा क्षेत्रमें निपुण होता है, तो मेरा मतलब यह है कि वह स्कूलोंमें पढ़ाए जानेवाले विषयोंको अत्यधिक महत्वपूर्ण मानता है। नए विचारोंके अभिभावक शिक्षाके पुराने सिद्धान्तोंको अरचनात्मक और अत्यधिक बुद्धिवादी मान कर अस्वीकार करते हुए भी मॉन्टेसरीके नैतिक बुद्धिवादको और डाल्टन-योजना कि जो पुरान अरचनात्मक विषयोंको पढ़ानेमें विश्वास करते हैं—को स्वीकार कर लेते हैं। यह संतोषकी बात है कि इंग्लैंडमें शिक्षाके नाम पर हम उतना अनर्थ नहीं करते, जितना कि यूरोपके अन्य देशोंमें किया जाता है। कुछ दिन पहले हंगरीका एक नौजवान विद्यार्थी मुझे बुडापेस्टके स्कूलोंके बारेमें बता रहा था कि हंगरीमें मैट्रिक परीक्षाके लिए इतना अधिक परिश्रम करना पड़ता है, कि शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य टुकड़े टुकड़े हो जाता है। यह विद्यार्थी कभी-कभी सारी सारी रात बैठ कर, घरके लिए दिया हुआ काम (Homework) किया करता है। मुझे बताया गया है कि यूरोपके दूसरे देशोंमें भी ऐसी ही अमानुषिक प्रणालियाँ प्रचलित हैं।

बचपनसे ही जब एक प्रणाली हमारे खूनमें घर कर जाती है, तो फिर उससे छुटकारा पाना असम्भव-सा हो जाता है। फिर चाहे उसकी व्यर्थताको प्रमाणित करनेके लिए अगणित प्रमाण क्यों न मिल जायँ 'शिक्षा' के प्रति जो धारणा बन चुकी है, वह मिटती ही नहीं। शेक्सपियर नगण्य सी 'लैटिन' और उससे भी कम ग्रीक जानता था। आइन्स्टाइन स्कूलमें बुद्धू माना जाता था और दूसरी ओर अपने विद्यार्थी-जीवनमें मैंने कई इनाम जीतने और युनिवर्सिटी-मेडल प्राप्त करनेवालोंको जीवनमें असफल होते देखा है। आँख खोल कर देखनेवाले किसीकी भी समझमें आ जायगा कि हमारे विद्वान् लोग अक्लमन्द नहीं होते। अगर ऐसा होता तो देशके क़ानून बनानेका काम हमारे राजनीतिक अध्यापकोंको न सौंपा जाता? इंग्लैंड निपुणतामें विश्वास करता है फिर भी शासन करनेके लिए साधारण योग्यताके लोगोंको नियुक्त करता है। इसका अर्थ यही है कि महत्वपूर्ण प्रश्नोंपर हम निपुण लोगोंकी तनिक भी परवाह नहीं करते।

और प्रेम शिक्षा'—महत्वपूर्ण वस्तु ही नहीं है, लेकिन वास्तवमें शिक्षा ही

एकमात्र महत्वपूर्ण वस्तु है। फिलिप स्नोडनको राष्ट्रके खजानेका भार सौंप दिया गया, किन्तु किसी रेलवे कुलीको हैरोका प्रधानाध्यापक बना देनेकी बात सुन कर ही लोग तिरस्कारसे हँस पड़ेंगे, क्यों? अब तक एक बहाना यह था कि शिक्षा पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है, कोई भी नागरिक नौकरीसे रिटायर होकर अपना स्कूल खोल सकता है। शिक्षा-बोर्ड उसमें कोई बाधा नहीं देता किन्तु अब राज्य प्राइवेट स्कूलों पर नियन्त्रण करना चाहता है—यानी उन्हें शिक्षा-शास्त्रियोंके आधीन कर देना चाहता है। 'रिटायर्ड'—हत्यारोंको स्कूल न खोलने देनेके मैं बिलकुल पक्षमें हूँ क्योंकि वे शिक्षाके स्वीकृत मापदण्डोंसे आगे न बढ़ सकेंगे और शिक्षाकी प्रगतिमें कोई सहायता न कर सकेंगे। किन्तु राज्यके इस नियन्त्रणमें एक खतरा है वह प्रगतिको रोक देगा, क्योंकि प्रगतिका जहाँ तक प्रश्न है– राज्य' व्यक्तिसे सदा पिछड़ा रहता है, और शिक्षाके क्षेत्रमें तो राज्य नि सदेह मार्ग-दर्शकोंसे मीलों पीछे रह जाता है। राज्य द्वारा नियन्त्रित शिक्षाके क्षेत्रम सुधार असभव है। इस समय लकाशायरके महान् शिक्षा शास्त्री इ एफ ओ नील का मुझे स्मरण हो रहा है। उन्होंने जब राज्यके स्कूलोंमें सुधार करनेके प्रयत्न किए, तो शिक्षा विभागके अधिकारियोंने उनका तीव्र विरोध किया था। जो खर्च करता है, उसकी चलती भी है, अत जब तक कोई आदमी राज्यसे आर्थिक दृष्टिसे स्वतत्र न हो जाय, तब तक वह अपने विचारोंके अनुसार शिक्षाका काम नहीं कर सकता।

इस किताबके लिखनेके समय तक शिक्षा बोर्डकी कमेटीने प्राइवेट स्कूलोंपर अपनी रिपोर्ट प्रकाशित नहीं की है किन्तु मैं आशा करता हूँ कि यदि नियंत्रण करना ही है, तो वे स्कूलोंकी व्यवस्था 'स्थानीय अधिकारियोंके हाथमें छोड़ देंगे। इसलिये कि ऐसे जो अधिकारी होंगे, वे उन (शिक्षाके) प्रयोगोंको स्थानीय-रूपसे रहकर स्वय ही देख समझ सकेंगे लेकिन लन्दनके केन्द्रीय सरकारके दफ्तरसे यह असंभव है। दूसरा कारण यह है कि साधारणतया स्थानीय-अधिकारीका सेक्रेटरी अध्यापक रह चुका होता है। पढ़ानेके भारसे मुक्त होनेके कारण वह अधिक निष्पक्ष होकर सोच सकता है। बहुत कम अध्यापक ऐसे होते हैं, जो संकुचित दृष्टिकोणसे अपने आपको मुक्त

कर सकें। मैं यह नहीं कहता कि प्रत्येक स्थानीय अधिकारीका सेक्रेटरी सुलझे हुए मस्तिष्कका होता है मेरे अपने जिलेका सेक्रेटरी बहुत उदार है और संभव है, इसीलिए मैं सक्रेटरियोंके प्रति कुछ उदार हूँ। जो मैं कहना चाहता हूँ, वह यह है कि विकेन्द्रीकरण वांछनीय है। जैसे मैं स्कॉटलैंडके लिये स्वायत्त-शासन चाहता हूँ, वैसे ही विभिन्न जिलोंके लोगोंके लिए भी शिक्षाके मामले में मैं स्वायत्त-शासनकी माँग करता हूँ। यदि महान गृहयुद्धसे हमें कोई शिक्षा मिली है, तो वह यह है कि 'एक बड़ी राष्ट्रीय इकाई' का आदर्श व्यर्थ है। मानवताका कल्याण 'मोनॉक्को' या अधिकसे अधिक 'हॉलैंड' जैसे छोटे देशोंसे ही हो सकता है। ऐसे छोटे छोटे क्षेत्रोंमें 'नागरिकका व्यक्तित्व' केन्द्रीय सरकारके 'विदेशी'-शासन द्वारा दबाया न जा सकेगा।

अपरिचित क्षेत्रमें बहुत भटक जानेके बाद मैं पुन शिक्षा और अभिभावका पर आता हूँ। मैं स्वीकार करता हूँ कि अभिभावक आजकी शिक्षा प्रणालीको कुछ विवशताओंके कारण स्वीकार करते हैं क्योंकि शिक्षा पर बुजुर्ग लोगोंका अधिकार है। मैं नये विचारोंका प्रवर्तक हूँ, किन्तु इन बुजुर्ग लोगोंसे कि जिन्होंने इतनकी मैट्रिकको इतना महत्व दे रखा है कि वह नौकरियाँ प्राप्त करनेके लिए खुल जा सामम (जीवन निर्वाहके लिय व्यवहार-क्षेत्रमें प्रवेशका मार्ग) है—छुटकारा नहीं पा सकता। मेरी धारणा है कि पन्द्रह वर्षकी उम्र तक 'हाथ और आँख (करना और देखना)' की शिक्षा ही मुख्य वस्तु है किन्तु बुजुर्ग लोग मुझे ऐसे विद्वान अध्यापक रखनेके लिए मजबूर करते हैं, जो बच्चों को मैट्रिक की परीक्षा पास करवा सकें। परिणामत मैं, जैसे चाहिए वैसे अध्यापक नहीं रख सकता—जैसे नृत्यकार, कलाकार, साहित्यिक, लकड़ी धातु मिट्टी आदिके काममें कुशल व्यक्ति आदि। अत अंतत बुजुर्ग लोग ही मार्ग-दर्शकों (हम जैसे शिक्षकों पर) हावी (अधिकार रखते) रहते हैं।

प्राचीन युगोंसे जो कुछ हम इकट्ठा करते चले आ रहे हैं, उसीको हमने शिक्षाका नाम दे दिया है लेकिन यह शिक्षा नहीं है वह तो 'ज्ञान-संग्रह' है! यह बुद्धिगत अधिक है। उससे ज्ञान प्राप्त हो सकता है, लेकिन 'रचनात्मकता' नहीं आ सकती। उदाहरणके लिए अपराधोंको लीजिए। लन्दन-मैट्रिकमें कुछ

साल (सन् १९३१ में) तीन किताबें हैं—शेक्सपियरका 'हेनरी पंचम', लेम्ब के 'लेख' और वर्डस्वर्थकी कविताएँ । विद्यार्थियोंको इन पुस्तकोंका अध्ययन करना पड़ता है—यानी चरित्र चित्रण कर सकना, उदाहरण या पूर्वापर अन्वय या सन्दर्भ बता सकना दो लेखोंकी तुलना कर सकना इत्यादि । सीधे शब्दोंमें इसका अर्थ यह होता है कि हेजलिट, कोलरिज, सेन्ट्सबरी जैसे व्यक्तियोंकी सम्मतियाँ रटकर उन्हें याद कर लेना । मैंने अपनी मैट्रिक-कक्षाके विद्यार्थियों को संक्षेपमें राजकुमार हॉल का चरित्र-चित्रण लिखनेके लिए कहा । एक लड़केने अपने विचार स्पष्टरूपसे लिखे कि 'हॉल' कमीना था, मित्राके प्रति कपट और विश्वासघात करता था, अपने पिताके सामने भीगी बिल्ली बन जाता था । इसके पश्चात् उस लड़केने अपनी पाठ्य पुस्तक में लिखा हुआ हॉलका गुण-वर्णन' (Appreciation) दिखाया उस पुस्तकमें पिजूनकी बकवास थी कि फॉल स्टाफ को हटाकर हॉल ने यह प्रमाणित कर दिया कि वह दृढ़ चरित्रका व्यक्ति था । उस लड़केने मुझसे कहा— इस पुस्तकमें लिखी बकवासके साथ मैं सहमत नहीं हो सकता, लेकिन मेरी धारणा है कि परीक्षामें मुझे इसीको उद्धृत करना पड़ेगा । और अगर मैंने कहीं लिख दिया कि राजकुमार जानवर था तो मैं सच कहता हूँ—परीक्षक बुरी तरह बिगड़ खड़ा होगा ।'

एक दूसरे लड़केको लेम्ब' और 'वर्ड्सवर्थ' नीरस लगते थे, उसके लिए उनका कोई महत्त्व नहीं था । यह लड़का बिजली ज्ञान (Flectricity) के पीछे पागल था जब जब मैट्रिककी परीक्षामें बैठता था तो अंग्रेजीमें अनुत्तीर्ण किन्तु इलेक्ट्रिसिटीमें पास हो जाता था । ये बुद्धिशाली लड़के मुझसे कहा करते हैं—"कितना अच्छा होता—यदि अभिभावक भी यही प्रश्न पूछते कि—'जब दुनियामें इतनी देखने समझनेकी चीजें पड़ी हैं तो हमें लेम्बका अध्ययन करने पर क्यों मजबूर किया जाता है ?

इसका उत्तर यही है कि बुजुर्गों को वर्ड्सवर्थ और लेम्ब' ही में भरोसा है; ये मात्र उनके लिये संस्कृतिके प्रतीक हैं । अतः ये युवकोंको 'साहित्यके जुए' को ग्रहण करने पर मजबूर करते हैं । उनकी दृष्टिमें नवयुवक विद्रोह कर सकता है, तब उनसे यह तर्क करना चाहिये कि हमारी संस्कृतिका

अंग्रेजी साहित्य तक ही क्यों सीमित रखा जाता है ? हमें गटे, दाँते, इ‍ब्सन, वाल्तेयर भी क्यों नहीं पढ़ाये जाते ? और फिर संस्कृतिके दूसरे पहलुओंको छोड़ क्यों दिया जाता है ? किताबोंमें तो आप मेरी (लेखककी) रुचिको रूप देना चाहते हैं, किन्तु संगीत और कलाके विषयमें आप क्या कहते हैं ? उस सम्बन्धमें क्यों चुप रह जाते या विरोध करते हैं ?

एक बात और पढ़ाई की हर वस्तुमें रचनात्मकता को क्यों भुला दिया जाता है ? मैट्रिक परीक्षा शेक्सपियर और लेम्बके गुणोंको समझनेके योग्य बनानेका तो प्रयत्न करती है, किन्तु शेक्सपियर आदि तो 'गुण-वर्णन' नहीं करते थे वे तो 'रचयिता थे। किसी बुजुर्गने लेम्बको ऐसी कोई रूप रेखा बनाकर नहीं दी थी कि वह क्यों और कैसे लेख लिखे, और शेक्सपियर ने तो अपने नाटकोंमें रस-संचार करनेके लिए इतिहास तक को बदल दिया।

बुजुर्ग—'भूत काल' में रहते हैं वे भूत से चिपटे रहते हैं क्योंकि वर्तमान और भविष्यसे उन्हें भय लगता है। वे सोचते हैं कि निर्माण करने के लिए जो कुछ निर्मित किया जा चुका है उसका जानना आवश्यक है। यन्त्रोंके विषयमें यह बात ठीक हो सकती है, क्योंकि अगर मैंने कभी मोटर देखी ही नहीं, तो मैं अच्छे कारबूरेटर कैसे बना सकता हूँ ? किन्तु साहित्य और कलाके सम्बन्धमें यह सोचना कि रचना के लिए—'पहले जो कुछ रचा जा चुका है, उसका ज्ञान आवश्यक है,' एक भ्रम है। बच्चे इस भ्रमको बखूबी जानते हैं। मेरे स्कूलमें कोई विद्यार्थी अगर ऐसी वस्तु बनाता है, जो किसी दूसरे विद्यार्थी द्वारा बनाई गई वस्तुसे तनिक भी मिलती जुलती होती है, तो लड़के तिरस्कारसे चिल्ला पड़ते हैं—नकलची।

बुजुर्गों और उनद्वारा प्रचारित प्रचलित परीक्षाओंका वास्तविक उद्देश्य 'संस्कृति' का विकास है, इसमें मुझे शंका है। उनका उद्देश्य 'नियन्त्रण' है। एक पुराना अध्यापक कहा करता था कि विद्यार्थीको वही पढ़ाना चाहिए कि जिसे वह नापसन्द करता है। परीक्षक इस सिद्धान्तसे शायद सहमत होंगे। उनका विश्वास है कि बच्चोंको मुसीबतें उठानी ही चाहिए। रक्षा करनेवाले दलको मारकर भगाना प्राप्त करना ही चाहिए; माने बुजुर्ग, बच्चोंपर 'अपना अधिकार' नहीं छोड़ेंगे क्योंकि यौवन 'भूत'से घृणा करता

है, क्योंकि वह उसपर जबरदस्ती लादा जाता है। वैसे वह उसके प्रति सदा हीन रहता है। मेरे स्कूलमें, जहाँ बच्चे अपनी रुचिकी करनेको स्वतन्त्र हैं, मैं देखता हूँ कि 'स्कूलके' पुस्तकालयमें डिकन्स, थेकरे और स्कॉटको कोई छूता तक नहीं, जब कि एडगर वालेसकी बेहद माँग है। सिनेमाके इस नए युगमें स्कॉटकी पुरानी कहानियोंमें बच्चोंको बहुत आनन्द नहीं आता। यह कहना कि फलाँ फलाँ चीज जीवनमें आवश्यक है—बेमानी है। मैंने हजारों बहुमूल्य पुस्तकें नहीं पढ़ी हैं—बासवेलकी लिखी हुई डा० जोन्सनकी जीवनी, दान्ते, रूसो, वॉलतेयर, और गेटे अनेक की मैंने एक-एक ही किताब पढ़ी है और लेसिंग की एक भी नहीं प्राचीन महान चित्रकारोंके विषयमें मैं कुछ भी नहीं जानता और बीथोवेन या बाखके गुणोंको समझनेमें भी बहुत कुशल नहीं हूँ। मैं इतिहास, ग्रीक, वनस्पति-शास्त्र, तर्कशास्त्र आदिके विषयमें कुछ नहीं जानता। संक्षेपमें कई चीजोंके विषयमें मेरा अज्ञान बहुत गहरा है किन्तु फिर भी मैं अपने काममें दक्ष हूँ और डीलियस या खेलके संगीतमें, पीतलके काममें, रूसी फ़िल्में देखनेमें मुझे बहुत आनन्द आता है। जैसे कि चार्ली चेपलिन, आइन्स्टाइन, और स्टालिन लन्दनकी मैट्रिक पास किए बिना ही अपने अपने काममें दक्ष हैं।

कई अभिभावक मेरी इस उपरोक्त बातसे सहमत हैं उनकी बुद्धि इस बातकी सचाईको मानती भी है, किन्तु बुजुर्ग लोगोंका असर उनपर इस बुरी तरह हावी है कि वे प्रचलित स्कूलोंमें पढ़ाए जानेवाले विषयों—समयकी जो बरबादी होती है, उसके विषयमें जबान तक नहीं हिला सकते बिलकुल हटा देनेकी बात तो अलग जाने दीजिए। लेकिन, भाई, लोग पूछ सकते हैं— यदि हम इन साहित्यिक रत्नों (Classics) को हटा देंगे तो इनके स्थानपर क्या रखेंगे?'

स्कूलोंमें पाठ्य क्रमकी प्रवचना फ्रॉयडके पूर्वके कालसे चली आती है जो बाल-सभ्यताके उस युगकी वस्तु है, जिसकी धारणा थी कि चेतन मस्तिष्क ही महत्वपूर्ण है। लगभग तीस वर्ष पहले फ्रायडने यह प्रमाणितकर दिखाया था कि मस्तिष्कका प्रच्छन्न, अचेतन भाग ही 'मूल गत्यात्मक भाग है, और कि हमारे आचरणकी गूढ़ प्रेरक शक्ति 'बुद्धि' नहीं 'भावना' है। रचना-

— अपना अपना नाम लिखो।' इसके पश्चात् मैंने कहा—'अब अपना नाम इस प्रकार लिखो मानो तुम दो हो।' मेरे पुराने विद्यार्थियोंने तो जल्दी से लिख डाला, किन्तु नए विद्यार्थियोंने दूसरा नाम भी ठीक वही लिखा जो पहले लिखा था। उनकी कल्पनाको विकसित होनेका अवसर ही नहीं मिला था। मैं स्वीकार करता हूँ कि रूढ़िवादी स्कूलोंमें भी ऐसे लड़के मिल सकते हैं, जिनकी कल्पना शक्ति काफी तीव्र होती है, किन्तु उनकी संख्या स्वतंत्र स्कूलकी तुलना में बहुत अधिक नहीं होती।

इसके पश्चात् अपनी कक्षामें मैंने ये प्रश्न पूछे—ये कहाँ हैं ?—बर्लिन, मर्लिन, स्टालिन, ईश्वर, टैंगानिका, बीता हुआ कल, महान युद्ध, आशा, आदि आदि। नए लड़कोंमेंसे एकने भी मौलिक उत्तर नहीं दिए, पुराने लड़कोंमेंसे एकने ईश्वरके विषयमें कहा 'कि वह समरहिलके अलावा सब जगह है।' नए लड़के इस प्रश्नका उत्तर देनेमें भी असफल रहे—कि निम्नलिखितकी कौमियत और धर्म बताओ मेके, बर्नस्टीन, कोलन, ..., टॉप्सी फ्लाउडर्स, स्पोलेन्स्की, साइकस के मीन्स, डॉन पेड्रो, हामिद अब्बास। मैं यह बता दूँ कि मेरे विद्यार्थी इन प्रश्नोंको परीक्षाकी दृष्टिसे नहीं देखते। वे इन्हें इसलिए पसन्द करते हैं कि इनके कारण उन्हें अपनी मौलिकताको व्यक्त करनेका लम्बा-चौड़ा क्षेत्र मिल जाता है। अतः जब मैं पाँच मिनटका टेस्ट लिखवाता हूँ, तो कोई एक शब्द या मुहावरा दे देता हूँ, और फिर सब, मैं भी, पाँच मिनट तक तीव्र गतिसे लिखते रहते हैं। अगर मैं 'टूटा हुआ' एक शब्द दे देता हूँ, तो मेरे पुराने विद्यार्थी नए विचारोंकी खोजमें लग जाते हैं—कोई 'टूटे हुए दिल' की, कोई 'असफल जीवन' की और कोई 'बरबाद हो जाने' की बात लिखता है; किन्तु नए विद्यार्थी 'टूटी हुई खिड़कियों' के बारेमें लिखते हैं। मैंने यह भी पाया है कि नए विद्यार्थियोंकी विनोदकी भावना नितान्त अविकसित रहती है। जब मैं कोई विनोदमय उत्तर दे देता हूँ या विनोदभरा प्रश्न पूछ लेता हूँ, तो वे भयभीतसे होकर मेरी ओर घूरने लगते हैं। वे कभी खयाल तक नहीं कर पाते कि अध्यापक भी मजाक कर सकता है। बचपनसे बने बनाए विचार और तैयार धारणाएँ लेकर आते हैं और जब मौलिकता व्यक्त करनेका समय आता है तो वे साहस खो देते हैं। रूढ़िवादी शिक्षा

उनकी कोई सहायता नहीं कर पाती।

स्वतंत्र बच्चे प्रौढ़ोंकी बनी-बनाई धारणाएँ कभी स्वीकार नहीं करते और उनका सामान्य ज्ञान औसत बच्चोंसे कहीं अधिक व्यापक होता है। मैं जानता हूँ कि यह बात सब जगह लागू नहीं हो सकती। मेरे स्कूलका वातावरण अधिकांश अन्य स्कूलोंकी अपेक्षा अधिक स्वतंत्र है। संसारके प्रत्येक भागसे हमारे यहाँ लोग आते हैं रूसी, जर्मन, स्वीड, जापानी, फ्रांसीसी, डच, अमरीकन और कई अंग्रेज। इसका परिणाम यह होता है कि विद्यार्थी अपने ज्ञान और जीवनके प्रति अपने दृष्टम अचेतन रूपसे उदार हो जाते हैं। पिछले सप्ताह गाँधीके स्कूलके एक भारतीयने सन्ध्या भर हमसे बात चीत की और हिन्दुस्तान और उसकी आकांक्षाओंकी एक ऐसी तस्वीर खींची कि हजारों सबक वैसा न कर पाते। इस मेलजोल का एक परिणाम तो यह होता है कि हमारे विद्यार्थी विदेशी भाषाओंमें रुचि लेने लगते हैं। क्लासमें बैठकर कोई भाषा—मान लीजिए फ्रेंच—सीखना नीरस और कष्टदायक होता है किन्तु जब हम हर ग्रीष्ममें एक दल को फ्रांस या जर्मनी भेजते हैं तो उनकी भाषा सीखनेकी इच्छा (हेतु) बड़ा तीव्र हो जाती है। परीक्षाके सङ्कुचित दृष्टिकोण से भी स्वतंत्रता का मूल्य तनिक भी नहीं घटता। गत वर्ष सत्रह वर्ष के दो लड़कोंने मैट्रिक पास की; एक मेरे पास आठ वर्षकी उमरसे था। यदि किसी सौभाग्यपूर्ण चमत्कारसे लन्दन मैट्रिक दूर दी जाय तो मेरे विद्यार्थी क्या करेंगे, मैं नहीं जानता। मुमकिन है वे विज्ञान और दस्तकारीमें अपना चित्त लगाएँ हों, भाषाएँ सीखना वे अवश्य जारी रखेंगे।

समरहिल का उक्त वर्णन एकांगी है, क्योंकि हम बच्चेके सामाजिक और मनोवैज्ञानिक विकास को ज्ञान प्राप्तिसे कहीं अधिक महत्त्व देते हैं। स्पष्ट ही प्रत्येक समाजके अपने नियम होते हैं। साधारण स्कूलोंमें नागरिता का अनुभव तो नगण्य-सा होता है। नियम तो बुजुर्गों द्वारा बना ही दिए जाते हैं इस प्रकार बच्चोंको जीवन और शिक्षा के सबसे बड़े वरदानसे वंचित कर दिया जाता है—याने कि 'स्व-शासन' द्वारा दूसरों पर शासन करना। मैंने कई बार ऐसे बच्चोंको कि जो न लिखना जानते थे न पढ़ना, स्कूलकी सभामें खड़े होकर सामाजिक विषयपर बुद्धिमत्ता

'करे भी तो परवाह नहीं, !' वह बोला, जो कोइ ऐसी कोशिश करेगा उसे मैं अच्छी तरह समझ लूँगा।'

प्रचलित शिक्षा म न सिर्फ नागरिकताके व्यावहारिक ज्ञानकी शिक्षाका अभाव है, बल्कि 'काम' (sex) का भी उसमें कोइ स्थान नहीं होता। वह 'धर्म' को बाइबल के संदिग्ध इतिहास के एक स्थूल भागसे अधिक नहीं समझती। मैं ऐसी लड़कियोंसे परिचित हूँ जिन्होंने गणितकी ऊँची परीक्षाएँ पास की हैं। लेकिन विवाहके समयमें 'काम' और बच्चोंकी पैदाइशके विषयमें कुछ नहीं जानती थी। साथ ही मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि क्लासमें 'काम'के विषयमें कुछ कहना या पढ़ना गलत है। फूलोंके गर्भाधानकी बात करके या ऐसी ही कोई और बात करके काम वृत्तिको समझाना तो कामकी शिक्षाका मखौल उड़ाना है। कामके विषयमें कुछ बताना ही है तो एक एक लड़केको अलग-अलग बुलाकर बताना चाहिए। स्कूलके अध्यापकोंमें यदि एक मनोवैज्ञानिक भी हो तो यह काम बहुत सरल हो जाता है।

मैं यह बतानेके लिए काफ़ी लिख चुका हूँ कि शिक्षाके प्रति हमारी आधुनिक धारणा बहुत सकुचित है। सच पूछा जाय तो बुद्धिगत शिक्षाका जहाँ तक प्रश्न है, एक बच्चेके लिए पठन लेखन और थोड़ी बहुत गणितकी योग्यतासे अधिककी आवश्यकता नहीं होती। उच्च गणित, बीजगणित और रेखा गणित को सरलतासे हटाया जा सकता है। कमसे कम इतना तो किया ही जा सकता है कि इन्हे केवल उनके लिए छोड़ दिया जाय जिनको इनमें रुचि होती है। अंग्रेजीकी पढ़ाई तो रचनात्मक होना चाहिए अध्यापकोंको समझना चाहिये कि 'ग्रे' की 'एलिजी'को रटनेसे उत्पटांग कविता बनाना कहीं अधिक अच्छा है। बाकीकी 'शिक्षा' लड़केकी इच्छा पर छोड़ देनी चाहिए चाहे पढ़े, चाहे न पढ़े।

रसायन-शास्त्रको विज्ञान होनेसे पहले कला होना चाहिए। जब बच्चोंको अपने मनकी करनेकी स्वतन्त्रता होती है, तो वे रसायन-शास्त्रका आरंभ 'लेमन' और 'केक' बना कर करते हैं। इसके पश्चात वे साबुन बनाने (हालांकि वे उसे काममें नहीं लाते,) बूटका रोगन बनाने या आतिशबाजी बनानेका प्रयत्न करते हैं—विशेष कर आतिशबाजी! विद्वानोंकी पढ़ानेकी वैज्ञानिक प्रणाली

जिसके अनुसार हर बच्चेको नीरस प्रयोग खड़े-खड़े देखना पड़ता है और फिर उसे लिखनेमें व्यर्थ समय नष्ट करना पड़ता है, अ-मनोवैज्ञानिक है। साहस और कल्पनाका उसमें कोई स्थान नहीं होता अर्थात् वास्तविक क्रीड़ा तत्व तो उसमेंसे छूट ही जाता है।

भूगोल सब स्कूलोंमें गैरलाजमी होनी चाहिए। समशीतोष्ण रेखा, ज्वार-भाटा आदि वस्तुएँ सिर्फ उनके लिए छोड़ देनी चाहिए जो इस विज्ञान में दक्षता प्राप्त करना चाहते हों।

इतना कहनेके पश्चात् यह तो स्पष्ट हो गया होगा कि मैं स्कूलोंमें पढ़ाए जानेवाले विषयों पर 'व्यावहारिक दृष्टिकोण'से विचार कर रहा हूँ। मुझे गणित बहुत पसन्द है और अक्सर स्वान्त सुखायके उद्देश्यसे बीजगणितकी समस्याओंको हल भी करता हूँ किन्तु जहाँ तक व्यवहारका प्रश्न है, गणितसे यदि कोई भी मूल्यवान वस्तु मैंने सीखी है तो वह यह कि 'त्रिकोणकी कोई भी दो रेखाएँ मिलकर तीसरीसे बड़ी होती हैं' खेत पार करनेमें यह ज्ञान सहायक होता है—किन्तु यह बात तो कोई अनपढ़ गँवार भी जानता है कि कर्ण रेखा सबसे छोटा मार्ग होता है।

पंडित लोग उत्तरमें कहते हैं कि गणित, भूगोल, और—व्याकरणका उद्देश्य लोगोंको व्यावहारिक बनाना नहीं है, उनकी उपयोगिता तो उनके मस्तिष्कको संतुलित बनाए रखनेमें है। और भी, न जाने, क्या-क्या वे कहते रहते हैं? शिक्षाकी इस धारणाका मैं विरोध करता हूँ। यों तो क्रॉसवर्ड पज़ल भी मस्तिष्कको शिक्षित करता है, किन्तु क्या इसी कारण कोई पंडित क्रॉसवर्डको विषय-क्रममें स्थान देनेका विचार भी करेगा? मेरी दृढ़ धारणा है कि ये पंडित लोग बुद्धिकी आड़ लेकर लीपापोती करनेमें लगे हुए हैं। स्कूलों में पढ़ाए जानेवाले विषयोंका प्रचलन मुख्यतः इसलिये है कि (उन्हें) 'सीखना' कठिन होता है। अर्थात् ये (विषय) उनपर न हों तो भगवान जाने, वे बच्चे क्या न कर डालें! ये विषय उनपर नियन्त्रणका काम करते हैं। 'शिक्षित' आदमी अन्य आदमियोंसे अधिक नैतिक या बुद्धिमानी नहीं होता। हमारे चौकड़ कानूनोंमें सुधार या युद्धको रोकने जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर बातचीत

के लिये नियुक्त की गई समितियोंमें खान-मजदूरोंकी यूनियनसे चुने हुए दस आदमी उतने ही बुद्धिशाली प्रमाणित होंगे, जितने कि अध्यापकोंकी राष्ट्रीय यूनियनके दस आदमी। यदि स्कूलोंमें 'विषय' न पढ़ाए जाते तो विश्वविद्यालयों के लिये क़ानून डॉक्टरी और विज्ञान जैसे वास्तविक, व्यावहारिक विषयोंकी शिक्षा पर अधिक ध्यान देना सम्भव हो जाता। जब तक किसी विशेष वस्तुमें दक्षता प्राप्त नहीं करना है, तब तक उस विषय-विशेषकी शिक्षा व्यर्थ है, कभी-कभी खतरनाक भी हो सकती है। मुझे १९१२ का वह समय याद आ रहा है, जब मैं एक दैनिक पत्रमें नौकरी पानेका प्रयत्न कर रहा था, वहाँके एक आदमीने मुझसे कहा, 'जब मालिक तुमसे मिले और पूछे कि क्या तुमने विश्वविद्यालयमें शिक्षा पाई है, तो कह देना—नहीं। न कहोगे तो नौकरी नहीं मिलेगी।'

शिक्षा अपने उद्देश्यमें तभी सफल हो सकती है, जब वह बच्चेको समझे उसका अध्ययन करे और अपनेको उसकी गतिशील इच्छाओंके अनुकूल बना ले। यह तभी सम्भव है जब आप बच्चेसे प्यार करें और उसे सुखी देखनेका हर प्रयत्न करें। यदि आप उससे घृणा करते हैं तो आप भी बुजुर्गों का, जो उसे पाठ्य पुस्तकोंके भारसे दबा मारते हैं, साथ देंगे, और उन्हींके समान आप अपने बच्चेको भ्रमोत्पादक मत द्वारा उचित ठहरानेका प्रयत्न करेंगे। बेहूदी, व्यर्थकी चीजें सीख लेनेसे बच्चा, जीवनमें, भविष्यमें आनेवाली कठिनाइयोंके लिए तैयार नहीं हो पाता। अच्छा तो यही है कि उसे 'आत्म-निर्णय'के साहस और 'आत्म-संस्कार' के साथ जीवनमें प्रवेश करने दिया जाय। प्रौढ़ोंका जीवन आर्थिक आवश्यकताओंसे जकड़ा रहता है—उन्हें नौ बजे दफ़्तर पहुँचना ही चाहिए—वे गैरहाजिर होकर साइकल चलानेके मजे लूटनेका साहस नहीं कर सकते। यह ठोस आर्थिक सत्य है। किन्तु बच्चा तो छोटा प्रौढ़ नहीं होता, अपने वाली मुसीबतोंको दृष्टिमें रखकर उसे शिक्षा नहीं देनी चाहिए; उसका मूल क्षेत्र तो खेल-कूद है।

जिन बच्चों पर भविष्यके जीवनकी जिम्मेदारियाँ लाद दी जाती हैं, उनसे एक तरहसे जीवन ही छीन लिया जाता है। अभिभावक और अध्यापक 'विषय' और 'परीक्षा' को कठिनाइयोंके लिए उम्मीदवारी (तैयारी) समझते हैं; उनकी धारणा है कि जीवनमें सफलता प्राप्त करनेके लिए कष्ट उठाना

आवश्यक है। इस विचारको त्यागना कठिन है, कठिन इसलिए कि यह हमारे 'अहं'को सन्तुष्ट करता है किसी शकाशील अभिभावकसे यह कहते हुए मुझे बड़ा आनन्द होता है कि 'मेरा ही उदाहरण लीजिए। चौदह वर्षकी उम्रमें मुझे गाँवका स्कूल छोड़ना पड़ा और विश्वविद्यालयमें भरती होने के लिये काम करना पड़ा था। विश्वविद्यालय में मुझे दिनों तक बिना कुछ खाए रहना पड़ता था, क्योंकि मेरे पास पैसा नहीं था'। वास्तवमें मैं कहना यह चाहता था—जरा सोचो तो, मैं क्या था और अब क्या हूँ!' मनुष्यकी अहकार-भावना क्षम्य है, किन्तु यदि हम बच्चोंको सुधारने या उनपर प्रभाव डालनेके लिए इस अहकारका उपयोग करते हैं तो वह अक्षम्य है। चूँकि पिताने कठिनाइयाँ उठाई हैं, इसलिए पुत्रको भी उठानी चाहिए, इस तर्कके कोई मानी नहीं होते। और फिर कठिनाइयाँ उठाना अपने आपमें कोई बहुत बड़ा गुण नहीं है, लाखों व्यक्ति कष्ट उठाते हैं और सफलता कभी उनके हाथ नहीं लगती, मजदूरका जीवन कठिनाइयोंसे भरा हुआ होता है, किन्तु इन्हीं कठिनाइयोंके कारण वह अपने भारमय जीवनसे मुक्ति तो नहीं पाता।

एक तर्क जो अक्सर पेश किया जाता है, वह यह है कि कठिनाइयोंसे चरित्र निर्माण होता है। चरित्र-निर्माण तो होता है, किन्तु प्रश्न यह है कि क्या सर्वश्रेष्ठ चरित्र' का निर्माण होता है? कौन कह सकता है? स्कॉटलैंड की गरीबी और वहाँकी सरदी और शीत आबोहवाने स्कॉच लोगोंको दुनियादार बना दिया है, किन्तु कोई सकुचित मनोवृत्तिवाला ही यह कहेगा कि इन्हीं कारणोंसे स्कॉच लोगोंका चरित्र अंग्रेजोंसे या स्पेनवासियों या चीनियोंसे अच्छा होता है। स्कॉटलैंडके आदमियोंके विषयमें वास्तविकता यह है कि आर्थिक कमियोंके साथ संघर्ष करनेके कारण उनके व्यक्तित्वके कई बहुमूल्य तत्त्व अविकसित रह जाते हैं। अगर मुझे 'डेविल्स आइलैंड' भेज दिया जाय तो निश्चित ही मुझमें कुछ चारित्रिक विशेषताएँ आ जायँगी परिश्रमके प्रति उदासीनता, आत्म-निरीक्षण, अपने दमनकारियोंके प्रति घृणा, किन्तु कोई समझदार आदमी अपने पुत्रको चरित्र-निर्माणकी दृष्टिसे वहाँ नहीं भेजेगा - वह भेजना तो व्यर्थ है, क्योंकि वह काम शक्तिको नकारात्मक मार्गोंमें मोड़

देता है और ठीक यही बात 'स्कूलोंमें पढ़ाए जानेवाले विषय' हमारे बच्चोंके साथ कर रहे हैं। उल्लास और रचनामें जिस काम-शक्तिको लगाना चाहिए था, उसे वे (विषय) अपनी ओर खींच लेते हैं। इस प्रकारका 'घरके लिए दिया गया काम' बच्चेकी आन्तरिक शक्तियोंको दबा देता है। क्रिकेट मैच देखने पर मजबूर करना बच्चेकी मासूम ज़िन्दगीको नष्ट करना है। औसत बच्चेकी शिक्षाका ६/१० वाँ हिस्सा तो बिलकुल समयकी बरबादी होता है। और मज़ा यह है कि समयकी बरबादीसे अभिभावक आवश्यकतासे अधिक डरते हैं। अध्यापकगण उनके इस डरको 'टाइम-टेबल' दिखाकर शान्त कर देते हैं। (वास्तवमें इन टाइम-टेबलोंको समय बरबाद करनेके लेटवे ['वेस्ट (रही)-टाइम-टेबल'] कहना चाहिए।) यदि हम इन अभिभावकों और अध्यापकोंसे 'समयकी बरबादी' की व्याख्या पूछते हैं, तो वे एक गोल-माल-सा उत्तर दे देते हैं। किसी व्यक्तिके समयका मूल्य कोई दूसरा व्यक्ति कभी नहीं आँक सकता। लॉर्ड्समें बैठकर शाम भर क्रिकेट-मैच देखना मैं समय की बरबादी समझता हूँ, लेकिन मेरीके लिए लॉर्ड्समें संध्या व्यतीत करना बहुत मूल्य रखता है। जब मैं कोई ऐसी चीज़ करता हूँ, जिसमें मुझे रुचि नहीं होती तो मैं समय बरबाद करता हूँ। आप भी ऐसा ही करते हैं।

मैं बुडापेस्टके अपने उस नन्हे दोस्तकी बात कह चुका हूँ, जिसे 'मैट्रिक' के लिए घोर परिश्रम करना पड़ता था। यह बुद्धिशाली लड़का, जो लगभग एक दर्जन विषयोंमें क्लास भरमें सदा प्रथम रहता था, जब ग्रीष्ममें समरहिलमें छुट्टियाँ बिताने आया, तो वह हमारे 'किंडर-गार्टन' कमरेमें पड़ी लकड़ीकी ईंटोंसे दिन भर खेलता रहता था। नाना प्रकारके मकान बना-बना, फिर उन्हें गिरा देता था और इसमें उसे बड़ा आनन्द आता था। उसके अध्यापक इसे समयकी बरबादी ही समझते, किन्तु वास्तवमें वह अपनी प्रकृतिकी प्रेरणाका अनुसरण कर रहा था—खेलना, कल्पना लोकमें विचरण करना! अभिभावक यह समझते ही नहीं कि उनके बच्चोंमें खुशी एकमात्र महत्वपूर्ण वस्तु है। अगर खुश है तो बाकी सब चीजें आप-आप तुम्हारे पास आ जाएँगी। यह कहना कि स्वतन्त्र सुखी बच्चे आगे चलकर जीवनमें कठिनाइयाँ उठाते हैं, ग़लत है। होमर लेनने, 'लिटल

कॉमनवेल्थ-(जटिल बच्चोंका स्व-शासित समाज)'—से निकले सभी स्वतंत्र युवक युद्धमें सेनाके अनुशासनका पालन करनेमें सफल रहे थे। उनमें साहस और क्षमता दोनों थे।

अपने स्कूलके कारखानेमें जब कोई लड़का मुझसे पूछता है—'मैं क्या बनाऊँ?' तो मैं कहता हूँ—'मैं नहीं जानता।' जब कोई लड़की मुझसे कहती है—'क्या मैं अपनी राखदानीके बीचमें कोई चित्र बनाऊँ?' तो मैं उत्तर देता हूँ—'इच्छा हो तो बनादो।' लेकिन अब बच्चेको कोई टेकनिकल (शिल्प विषयक)—कठिनाई होती है, जैसे जोड़ना या झालन लगाना—तो मैं मार्ग प्रदर्शनके लिए उसके हर प्रश्नका उत्तर देता हूँ। अर्थात् जहाँ तक '*रचना*'का प्रश्न है, मैं पथ प्रदर्शन नहीं करता, किन्तु '*प्रणाली*'में अवश्य सहायता करता हूँ, क्योंकि जीवन इतना छोटा है कि हर वस्तु प्रयत्न और प्रयत्न पद्धतिसे नहीं सीखी जा सकती जब बर्तनसे काफ़ी चू रही हो तो उस समय झालन लगाना सिखाने मैं नहीं जाऊँगा।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि भविष्यका स्कूल मेरे कारखानेका ही विस्तृत रूप होगा। बच्चे वही सीखेंगे और बनाएँगे, जिसमें उन्हें रुचि होगी और अध्यापकगण टेकनिकल कठिनाइयोंमें उनकी सहायता करेंगे।

जब मैं भाषण देता हूँ तो उत्सुक अभिभावक एक प्रश्नके द्वारा अक्सर अपनी एक शंका प्रकट करते हैं—'क्या ये बच्चे आगे आकर अपने ही माता-पिताओंको दोष न देंगे कि उन्होंने कुछ आवश्यक चीजें क्यों न सिखाई?' उदाहरणके लिए संगीतको ही लीजिए। 'यदि बच्चेको सात वर्षकी उम्रसे ही रियाज़ न करवाया जाय तो बीस वर्षकी उम्रमें वह संगीतमें दक्ष नहीं हो सकता। जब हमारे बच्चे उलटकर हमसे पूछेंगे कि 'क्यों नहीं तुमने अभ्यास करवाया?' तो हम क्या उत्तर देंगे?'

साधारणतया संगीत ही का उदाहरण दिया जाता है, किन्तु कभी-नृत्यका भी उदाहरण दिया जाता है।

हाल ही में मिड्लैंडमें भाषण देते समय मैंने यह उत्तर दिया था—'अगर आपके बच्चेमें संगीतके लिए प्रेरणा और प्रतिभा है तो वह पाँच वर्षकी उम्रमें ही प्यानो बजाने लग जायगा, और आप उसे रोक नहीं

सकेंगे। किन्तु यदि उसमें वैसी प्रतिभा नहीं है तो मार मारकर इसीय बनाना व्यर्थ होगा। यह यदि संगीतज्ञ न बनेगा तो संसारका कोई नुकसान न होगा। लेकिन यदि यह मान भी लिया जाय कि कुछ हालतोंमें कुछ चीजें न सिखानेके लिए बच्चको अपने अभिभावकोंसे शिकायत हो सकती है; तो भी, जरा एक बच्चेके असंतोषके साथ—हमेशा हजारों बच्चोंकी संगीत ज्ञानके प्रति घृणा और असंतोषकी तुलना करके तो देखिए! फिर, जो बच्चा कुछ चीजें न सिखानेके लिए अपने अभिभावकोंको दोष देता है, उसकी बात अक्सर प्रतीकात्मक होती है। जब वह कहता है—"तुमने मुझे प्यानो बजाना नहीं सिखाया, तो उसका अर्थ होता है—'जीवनमें मेरी असफलताके लिए तुम्हीं जिम्मेदार हो।' यह तो कमजोर लोगोंका दूसरोंके सर पर दोष मढ़नेका 'जाना हुआ ढंग' है।

मैं यह बात बड़ी संवेदनाके साथ लिख रहा हूँ, क्योंकि बचपनमें मैं स्वयं प्यानो न सीख सका, जबकि मेरे कुटुम्बके हर व्यक्तिने प्यानो बजाना सीखा था।

क्रमशः चौदह, उन्नीस, पच्चीस, और इकतीस वर्षकी उमरमें मैंने प्यानो सीखनेका निर्णय किया और निर्णय करनेके पश्चात् एक हफ्ते तक कस कर परिश्रम भी करता रहता था। मेरे गानेके बोल होते थे—'हर अच्छा लड़का स्नेहका अधिकारी होता है।' पीछे मुड़कर (भूतकी ओर) देखनेपर मुझे लगता है कि अगर मेरी इच्छा सचमुच तीव्र होती, तो मैं बहुत अच्छा प्यानो बजाना सीख सकता था। मेरे एक भाईने, जिसे चार वर्ष तक प्यानोका अभ्यास करवाया गया था, चालीस वर्षसे प्यानो नहीं छुआ है और प्यानो सुनना उन्हें नापसन्द है। पिछली बार जब मैं उनसे मिला तो वे शिकायत कर रहे थे कि उन्हें वॉयलिन बजाना नहीं सिखाया गया। मेरे स्कूलमें सोलह वर्षका एक लड़का है। वह दिन भर प्यानो पर बैठे-बैठे अपने मनसे नई-नई तर्जें बनाता रहता है। हो सकता है, भविष्यमें वह इरविंग बर्लिनके समान महान् संगीतज्ञ बन जाय।

मुझके क्षेत्रमें कई स्त्रियोंने, बचपनमें अँगुलीपर संतुलन करनेकी कष्टपूर्ण क्रियाओंके बिना ही बहुत योग्यता, यहाँतक कि प्रतिभा दिखाई

है। पेवलोवाने तो शायद बचपनहीमें सीखना आरंभ कर दिया था, किन्तु इसाडोरा डंकन या मेरी विगमेनके विषयमें ऐसा नहीं कहा जा सकता। योग्यता अपना मार्ग ढूँढ ही लेती है और केवल इसलिए कि संभव है उनमेंसे एक पेवलोवा निकल आए। हजारों लड़कियोंको यातना भुगतनेके लिए मजबूर करनेका तो कोई कारण नहीं है। व्यक्तिगत रूपसे मैं सोचता हूँ कि क्रूर हृदयके संगीत अध्यापकों और नीरस नृत्य सिखानेवालोंके प्रचलन'का मूल कारण बच्चोंका अरुचिकर ढर्रेके प्रति विरोध है (उन्हें जबरदस्तीसे डंडे मार कर सिखानेके लिए ऐसे लोगोंका रखना तो हमारे बुजुर्ग आवश्यक समझते हैं)। लोगोंका जीवनमें उन्नति न कर पानेका एक मुख्य कारण यह है कि वे अपने कठोर अभिभावकोंसे बदला लेना चाहते हैं

पब्लिक स्कूलोंसे निकले हुए अधिकतर लोग अक्सर मुझसे यह प्रश्न करते हैं—'अगर आप स्कूलमें लड़केको अपने मनकी करनेकी स्वतन्त्रता देते हैं, तो क्या वह जीवनमें आगे चलकर पब्लिक स्कूलसे निकले लोगोंसे मिलनेपर घबरा-सा न जायगा?' ये प्रश्नकर्त्ता ऐसे लोग होते हैं जो वर्ग शिक्षा चाहते हैं ये वर्ग-सीमाके बाहर सोच ही नहीं सकते और ऐसी सभ्यताका खयाल भी नहीं कर सकते, जिसमें किसान और जमींदारका भेद न हो। मेरे स्कूलमें दो 'ऑनरेबल' खानदानोंके बच्चे हैं, अफ़सरों और धनी व्यापारियोंके लड़के हैं, गरीब पदाधिकारियों, अध्यापकों और साधारण स्थितिके व्यापारियोंकी लड़कियाँ हैं। मेरे यहाँ पब्लिक स्कूलके और रूसके कम्युनिस्टोंके भी लड़के हैं। अपने स्कूलमें मैंने कभी वर्ग भावनाके चिह्न नहीं देखे। सेनाके अनुदारदली पदाधिकारीका लड़का प्रारंभिक स्कूलके कम्युनिस्ट अध्यापकके लड़केके साथ मैत्री स्थापित कर लेता है। डाकके जरिये चीजें भेज-भेज कर अभिभावक अक्सर कठिनाइयाँ उपस्थित कर देते हैं। कभी-कभी जब किसी धनी बच्चेके लिए नई साइकल या टेनिस खेलनेका बल्ला आता है, तो मैं कई बच्चोंके मुँह उतरे हुए देखता हूँ, लेकिन धनी लड़केको अपनी चीज़ोंके प्रति अत्यधिक मोह नहीं होता, वह अपनी साइकल बिना हिचकके दूसरोंको चलानेके लिए दे देता है—इसलिए नहीं कि उसमें परोपकारकी भावना होती है, बल्कि इसलिए कि भौतिक वस्तुओं

के मूल्यको यह समझता ही नहीं।

बच्चोंको 'वर्ग भेद' की भावना प्रौढ़ोंसे प्राप्त होती है। यह तो सर्वविदित है कि हमारे पब्लिक स्कूल एक श्रेष्ठ शासक-वर्गका निर्माण करनेमें लगे हुए हैं और हमारे पूँजीपति समाजका उद्देश्य राज्यके स्कूलों द्वारा ऐसे आज्ञाकारी, तमीजदार नौकर पैदा करना होता है जो बिना चीं-चपड़ किए अपना काम करें। अत इंग्लैंडमें स्कूल लोगोंके सामाजिक स्थान निश्चित करते हैं। इंग्लैंडका धर्म—'वर्ग' है। मैं यह 'मेन्टन' में लिख रहा हूँ। प्रतिदिन प्रात काल मैं 'डेलीमेल' का यूरोपीय संस्करण पढ़ता हूँ। इसके सामाजिक-समाचार 'वर्ग समाचार' होते हैं, किन्तु यह जन्म-वर्ग (Birth-class) और पूँजी-वर्ग (Money-class) में भेद नहीं करता। यह प्रतिदिन एक कॉलममें पेरिसके होटलोंमें आकर ठहरनेवाले अमरीकनोंके नाम देता है, किन्तु उनमें कोई नाम ऐसा नहीं होता, जिसे मैंने पहले कभी सुना हो। वर्ग म सबस मजेकी बात यह होती है कि चाहे आपमें गुण हो या न हो आपको महत्व तो मिल ही जाता है। और सच कहा जाय तो गुणी लोगोंका कोई वर्ग होता ही नहीं। बर्नार्ड शॉ, पॉल रोबसन, चेपलिन, आइन्स्टाइन, एमी, जॉनसन, थॉर्नडाइक ऑन, इथेल मेनिन ऐसे लोगोंका कोई विशेष वर्ग नहीं होता लगभग प्रत्येक समाजमें वे सम्मान्य होते हैं। वर्ग स्थितिकी दृष्टिसे अध्यापकका स्थान नीचा होता है। मैंने देखा है कि जब मेरा परिचय अध्यापक नहीं वरन् लेखककी हैसियतसे कराया जाता है, तो मेरी सामाजिक स्थिति कहीं अधिक ऊँची हो जाती है। अध्यापककी वर्ग-स्थितिके विषयमें समाजकी इस अचेतन धारणाका कि शिक्षा निम्न श्रेणीकी वस्तु है, बहुत बड़ा हाथ होता है। और हम इसी धारणाको प्रकट करते हैं कि अध्यापककी सामाजिक स्थिति सिपाही या वायवानसे कुछ ही ऊँची है।

... पब्लिक स्कूलके लोगोंके मदक बारेमें मुझे यहाँ पढ़ना है कि हमें निष्पक्ष होकर मान लेना चाहिए कि हम सब 'रंगे सियार' हैं। मैं जानता हूँ कि मि० स्मिथ या एक हमीं हो सकते हैं—जो स्कूल छिपाते समय यदि विम आफ गेम्स आ जाये तो मैं एकदम दर्शाता होकर राजकुमारसा

स्कूल दिखाने लग जाऊँगा। लेकिन मैं यह भी कहता हूँ कि यदि उसी समय चार्ली चेपलिन आ जायगा, तो मैं राजकुमार को अपने किसी अध्यापक को सौंपकर (निश्चय ही, क्षमा माँगते हुए) चल दूँगा। इसलिए यह स्पष्ट है कि चीजों पर लेबल लगाना (यह, वह, आदि वर्गीकरण करना) खतरनाक है, मेरा अपना 'मिथ्याभिमान' सामाजिक, बौद्धिक और कलासंबंधी मिथ्या गर्वका मेल है (विशेषकर मानसिक स्थितियोंके कारण एक नहीं कई होते हैं। किसी एक कारणको एकमात्र कारण मान लेने पर अगणित भ्रमपूर्ण धारणाएँ पैदा हो सकती हैं। —अनु०,)।

'मिथ्यागर्व' का ऊपरी कारण 'निम्नश्रेणी (गरीब Poverty-Complex)का समझ लिए जाने' का डर है, किन्तु वास्तविक कारण तो 'स्वयंकी गरीबी' (Inferiority Complex) का डर है। लोगोंसे मेरे कमरेमें यदि वार्तालापके दौरानमें मैं यों ही कह दूँ— मेरे मित्र लार्ड क ने मुझसे कहा .'तो मुझे बेहद संतोष प्राप्त होता है, क्योंकि मैं न सिर्फ उसकी सामाजिक कीर्ति का एक भाग चुरा लेता हूँ मैं न सिर्फ लोगोंको सूचित करता हूँ कि मैं भारी आदमी हूँ और उपाधिधारी लोग मेरे मित्र हैं, वरन् मैं यह भी कहता हूँ कि —'मैं अब धनी और सम्माननीय व्यक्तियों में से एक हूँ।' ऐसे समाजमें—जहाँ पैसा महत्वपूर्ण नहीं होगा, हमारे मिथ्यागर्वमें से 'निर्धनताका यह भय' निकल जायगा, किन्तु उसके स्थान पर हम कला, विज्ञान, और साहित्यकी प्रसिद्ध हस्तियोंसे अपनी जान-पहचान की डींग हाँकने लगेंगे, यह भी निश्चित है।

'आजकल मास्कोमें मिथ्याभिमानी लोग कहते हैं—'कल रात स्तालिन मुझसे कह रहा था: ' ।' हाल ही में मैंने' ड्राइंग-रूममें बैठे पुंड लोगोंसे एक स्त्री द्वारा कि 'मेरी पिकफोर्डेन मुझसे कहा था ' '—कहने पर प्रशंसामें मुँह बाते देखा है। इस प्रकारका मिथ्यागर्व पूँजीके मापदण्डोंसे पैदा हुए मिथ्याभिमानसे बिलकुल भिन्न होता है। उसका उद्देश्य अपने पदके महत्वको बढ़ाना होता है, उससे लोग आकर्षणके केन्द्र बन जाते हैं। जो लोग अटलान्टिक पार उड़कर आनेके कारण या पतिको विषसे मार डालनेके कारण प्रसिद्ध या बदनाम हुई स्त्रियोंको विवाहके प्रस्ताव भेजते हैं, उनके विषयमें भी यही बात लागू होती है।

किन्तु अभिभावकोंका मिथ्यागर्व प्रतिबिम्बित कीर्तिकी अपेक्षा नहीं होता। उसका उद्देश्य अपरिवर्तनशीलता (स्थिति जैसी हो वैसी ही बनाए रखनेका प्रयत्न) होता है, नयी सफलताएँ प्राप्त करना नहीं। वे स्कूल से माँग करते हैं कि स्कूल उनके बच्चोंको उनके ही वर्गके साथी बना दें। वे ऊपरी तड़क-भड़ककी पूजा करते हैं और प्रत्येक नई वस्तु से डरते हैं क्योंकि उन्हें डर होता है कि कोई नई वस्तु आकर वर्ग प्रणाली को ही न उलट दे। अभिभावक यह नहीं कहता कि उसका मध्यम-वर्गका पुत्र उच्च वर्गके बच्चों से मेल-जोल बढ़ाए यह यही चाहता है कि उसके बच्चोंको नल लगानेवालों के बच्चोंके साथ उठने-बैठने पर मजबूर न किया जाय। यही कारण है कि छोटे नगरोंमें बच्चों को खराब प्राइवेट स्कूलोंमें भेज दिया जाता है। क्योंकि वहाँ वर्ग-रक्षाका बहुत खयाल किया जाता है। प्राइवेट स्कूलमें न भेजें तो बोर्डिंग स्कूल ही एक रास्ता रह जाता है, और बोर्डिंग स्कूलमें अपने बच्चों को भेजनेमें अभिभावकों डर रहता है कि कहीं निम्नवर्गके बच्चोंसे मिल कर उनके बच्चे गलत उच्चारण न करने लगें।

मैं अभिभावकोंको दोष नहीं देता। हमारी आजकी सभ्यतामें गलत उच्चारण—विशेषकर कोकनी (Cockney) × उच्चारण—बहुत बड़ी बाधा बन कर खड़ा हो जाता है। विचित्र बात यह है कि कोकनी उच्चारण बनी-बनाई बात पर पानी फेर सकता है, जब कि स्कॉच, आयरिश या मिडलैंड-उच्चारण बहुत अच्छी चीज समझा जाता है। कोकनी उच्चारण का संबंध 'सर्वहारा' वर्गसे बड़ा घनिष्ट हो गया है, और पूँजीपति सभ्यता में 'सर्वहारा' होनेका अर्थ तिरस्कार और अवांछित होना होता है। इसलिए हमें वर्ग-युद्ध है, किन्तु आक्रमक उच्च वर्ग ही होता है। 'जिनके पास है' वे 'जिनके पास नहीं है' उनसे घृणा करते हैं, क्योंकि वे उनसे डरते हैं। वे उनसे जितना बन सकता है, उतना दूर रहते हैं रेलोंमें, थिएटरोंमें, घरोंमें, कब्रोंमें भी, स्कॉटलैण्डमें मेरे गाँवमें उच्च वर्गके लोगोंने कब्रस्तान का सबसे अच्छा भाग अपने कब्जेमें कर रखा है ... उन्हें डर है कि

× लन्दनका साधारण नागरिक।

पुनर्मीवनके समय कहीं निम्न श्रेणीके लोग उनके साथ न मिल जायँ।

अभी उस दिन जहाज पर यात्रा करते समय वर्ग भेदका एक बड़ा कड़ुआ अनुभव हुआ। मैं अपने कुछ पुराने विद्यार्थियोंके साथ यात्रा कर रहा था। उनके पास पैसे बहुत कम थे। तीसरे दर्जकी हालत शर्मनाक थी धक्कमधक्का, सर्दी, सोनेकी जगहका अभाव। मैं, पूँजीपति (और कायर) होनेके कारण पहले दर्जेमें चला गया। दूसरे दिन प्रातःकाल जब मैंने अपने इन न‍ह मित्रों की दुर्दशा देखी तो शर्मके मारे गड़ गया। उसी समय हम लोगोंमें 'स्वर्ण प्रमाण' पर गरमागरम बहस छिड़ गई और हम सब एकमतसे इस निर्णय पर पहुँचे कि सुविधा का आधार व्यक्तिगत धनाढ्यता नहीं होनी चाहिए!

अक्सर जब मैं यूस्टन या लिवरपूल स्ट्रीट स्टेशनके आस पासकी गन्दी बस्तियोंसे होकर गुजरता हूँ, तो अपने आपसे पूछता हूँ—'निम्नवर्गके लोग यह सब सहन क्यों करते हैं? क्यों नहीं एक साथ खड़े होकर वे उस प्रणालीका ही खात्मा कर देते, जो उनकी निर्धनता, दमतोड़ परिश्रम और हीनताका कारण है? मैं नहीं जानता वे क्यों नहीं खड़े होते? यह कहना कि नीत्शेकी 'दास मनोवृत्ति' के सिद्धान्तसे यह समस्या सुलझ जाती है, गलत है रूसके मजदूरोंने इस सिद्धान्तको झूठ प्रमाणित कर दिखाया है। इसका उत्तर शायद यह है कि पूँजीपति प्रणालीने धीरे-धीरे और छन्न-पूर्ण रीतिसे इतना ज्यादह प्रवेश कर लिया है और अपने गिरजाघरों, स्कूलों और प्रेस द्वारा मजदूरोंके मानसिक जीवनको इतना निकृष्ट कर दिया है कि हीनता उनकी रग-रगमें समा गई। मजदूरोंको बचपनसे यही सिखाया जाता है कि भगवानने ही उनको उस हालतमें पैदा किया है। यों 'दास मनोवृत्ति' है अवश्य, किन्तु वह जन्मजात नहीं है वह अचेतन-रूपसे प्राप्त की जाती है। और सर्वहारा-वर्ग एक निद्रित सिंहके समान है। सहनशक्ति समाप्त होनेपर जिस दिन भूखसे तड़पकर वह उछल खड़ा होगा, उस दिन प्रलय मच जायगा। और धनवान इसे भी जानते हैं,अतः वे उसके सामने टुकड़े फेंकते रहते हैं।

मैं न राजनीतिज्ञ हूँ न अर्थशास्त्री जनताके जन आन्दोलनोंसे अधिक जनतामें (मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोणमें अनु०) मेरी रुचि है। किन्तु अंधा भी

यह देख सकता है कि पूँजीवादी प्रणाली बेकार है और उसे दूसरी प्रणाली को स्थान देना पड़ेगा अन्ततः किसी न किसी प्रकारका समाजवाद या साम्यवाद ही होगा, जो वर्गके पूँजीगत मापदण्डोंको हटानेका प्रयत्न करेगा। आज कल आर्थिक पुरस्कारका आधार योग्यता नहीं, वरन् व्यापार करनेकी निपुणता है। मैं हेनरी फोर्डसे कम चतुर नहीं हूँ मेरा काम समाजके लिए अधिक महत्वपूर्ण है, फिर भी मुझे अपने कामसे गुजारा करने भरको मिलता है किन्तु वह अपने कामसे करोड़पति बन बैठा है। आइनस्टाइन सर विलियम मोरिससे अधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति है, फिर भी आइन्स्टाइन रेलके तीसरे दर्जेमें यात्रा करता है। सच है कि मोरिस और फोर्ड हजारों आदमियोंको काम देते हैं और मोटरें बनाकर समाजकी सेवा करते हैं। किन्तु जैसा कि शॉ ने कहा है—'काम देना आवश्यक रूपसे कोई गुण नहीं है' उदाहरण स्वरूप फिर उसने कहा है कि 'यदि वह एक बच्चेपर मोटर चला दे तो तुरंत ही डाक्टरों, मुर्दा ले जानेवालों और गाड़नेवालोंके लिए भी काम मुहैया कर देता है किन्तु ?

मैं तो मनुष्यकी सुख-सुविधाके दृष्टिकोणसे सोचता हूँ। फोर्डको तीसरे दर्जेकी लकड़ीकी असुविधाजनक बेंचोंपर बैठकर ऊँघना नहीं पड़ता, और वह अच्छा स्वादिष्ट भोजन खरीद सकता है कीमती रेडियो रख सकता है और चाहे तो अन्दर कौशेय वस्त्र पहन सकता है, यात्रा करते समय भारी भार उठाकर नहीं चलना पड़ता, गाड़ीमें चढ़नेके लिए पसीनेसे लथपथ होकर, धक्कमधुक्का नहीं करना पड़ता और न उसे सर्दीकी रातमें थिएटरका टिकट खरीदनेके लिए दो घंटे तक क्यूमें प्रतीक्षा ही करनी पड़ती है ? या कोई यह कहता है कि ये मामूली बातें हैं, वह अपने आपको धोखा देता है। सब लोगोंकी एकमात्र इच्छा सुख सुविधाकी, एक निश्चित सीमा तक पहुँचनेकी होती है। मारगेरीन से असली मक्खन तक पहुँचने की। पैसा अधिकारका प्रर्वतक हो सकता है, किन्तु जब कोई आदमी सम्पत्ति प्राप्त करना चाहता है, तो उसका मुख्य जीवन-उद्देश्य सुख और सुविधा प्राप्त करना होता है। और यह कि फोर्ड सादा व्यक्ति है, ऐश और आरामको नापसन्द करता है, यह तर्क जनताके लिए कुछ महत्व नहीं रखता, क्योंकि फिर भी हजारों अन्य

पूँजीपति हैं, जो सुखी जीवन और ऐश्वर्यमय वातावरणके लिए खर्च करते ही हैं।

किन्तु सम्पत्तिमें न केवल अधिकार (सुख) ही की भावना तीव्र रहती है, बल्कि उसमें रचनात्मक भावना भी तीव्र होती है। यदि बच्चोंको पढ़ाना भी उतना ही लाभप्रद (आर्थिक दृष्टिसे--अनु०) होता, जितना मोटरें बनाना, तो समाजके बच्चोंका असीम लाभ होता। आज मेरा अपना काम इसीलिए रुका पड़ा है कि मुझे जितने अध्यापक चाहिए उतने मैं नहीं रख सकता। और रख सकता तो मेरे कारखाने और मेरा पुस्तकालय और अधिक अच्छे तथा संपन्न हो सकते थे मेरे खेलनेके मैदानोंको और अच्छा बनाया जा सकता था और मैं निःशुल्क विद्यार्थियोंकी संख्या और बढ़ा सकता था क्योंकि अब जैसे फोर्ड और मोरिस अपने मुनाफोंको अपने कारखानोंकी उन्नतिमें लगाते हैं, वैसे ही तब एक अध्यापक भी अपने मुनाफेको निजक स्कूलकी उन्नतिमें लगा सकता है।

सम्पत्तिकी शक्तिके विषयमें रूसका कोई भ्रम नहीं है, वह बेईमान नहीं है कि आत्मिक विकासको भर पेट भोजनसे अधिक महत्व दे इसीलिए उसका आदर्श है--'सबके लिये सुख'। इसीलिए आज 'ट्रैक्टर' उसका 'ईश्वर' है। उसका उद्देश्य सबके जीवनको सुखी बनाना है। एक सोवियट पदाधिकारी पहले दर्जेमें यात्रा करके मुझसे मिलने आया, मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ लेकिन जब मैंने उससे यह कहा तो वह बोला--'इसमें ताज्जुबकी क्या बात है? हम तो चाहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति पहले दर्जेमें यात्रा करे।'

इस परिच्छेदके विषयसे मैं बहुत दूर भटक गया हूँ --हालाँकि बहुत दूर नहीं क्योंकि शिक्षापर विचार करते समय संपूर्ण सामाजिक-पद्धति पर विचार न करना असम्भव है। जब हम, राज्य द्वारा शिक्षा पर किए गए नगण्य-से खर्चके साथ, युद्धकी तैयारी पर और पिछले युद्धोंमें चढ़े कर्जेको बेबाक करनेके लिए किए गए अपरिमित खर्चकी तुलना करते हैं, तो यह पता चल जाता है कि शिक्षामें सुधार तभी सम्भव है, जब सम्पूर्ण समाजमें सुधार किया जाय। यहाँ 'प्रचार'का कठिन प्रश्न आ खड़ा होता है। मेरे साम्यवादी अध्यापक मित्रगण मुझे साम्यवादकी शिक्षा न देनेके लिये दोष देते हैं, किन्तु इसी प्रकार रूढ़िवादी मित्र फासिस्टवाद न पढ़ानेके लिए भी दोष दे सकते हैं। मेरा विश्वास है कि बच्चोंके मस्तिष्कको निश्चित साँचेमें ढालना भयंकर अपराध है--फिर चाहे वह साँचा नैतिक हो, धार्मिक हो, या राजनैतिक हो।

स्वतंत्र शिक्षाका परिणाम स्वतंत्र और दुराग्रहहीन मस्तिष्क होना ही चाहिए।

मान लीजिए, मेरा विद्रोही मित्र कहता है 'दूसरा पक्ष आपकी तटस्थता को न स्वीकार करे तो?' और साथ ही वह दूसरे पक्ष द्वारा स्कूलों पर जबरदस्ती लादे गए प्रचारकी मुझे याद दिलाता है—'याने साम्राज्य दिवस पर झंडा-भिवादन' और 'संधि-दिवस पर सेनाका प्रदर्शन।' मेरे लिए अपने प्राईवेट स्कूलमें संकुचित, विषैले और समाजवादी भी, दोनों प्रचारको तिलांजलि देना सरल है। किन्तु 'टीचर्स लेबर लीग' के सदस्योंके साथ कि जिन्हें साम्राज्य और सेना-सबधी उत्सवोंमें भाग लेनेके लिए बाध्य किया जाता है, मेरी सहानुभूति है। बच्चोंमें किसी भी प्रकारका प्रचार करनेसे मुझे घृणा है, किंतु फिर भी मैं सोचता हूँ कि समाजवादमें विश्वास करनेवाले अध्यापकको अधिकार है कि वह विद्यार्थियोंके सामने प्रश्नका दूसरा पहलू रखकर पूँजीपति राज्य द्वारा किए गए प्रचारके प्रभावको नष्ट कर दे। जब मैं राज्यके स्कूलोंमें पढ़ाता था, तब बोअर्रोको पराजित करनेमें हमारी वीरताके विषयम इतिहासकी पाठ्य पुस्तकमें जो कुछ लिखा था बतलानेके बाद मैं स्वय अपना दृष्टिकोण भी बतलाता था—कि बोअरोंके विरुद्ध हमारा युद्ध शुद्ध डाकाजनी थी, अगर आज भी मुझे पाठ्य-पुस्तकें पढ़ाना पड़े तो मैं विद्यार्थियोंको यह अवश्य बताऊँगा कि "महान गृह-युद्धमें ब्रिटेनने 'बहादुर नन्हें बेलजियम' के कारण भाग नहीं लिया था, और न वह भारतमें इसलिए अधिकार जमाये हुए है कि उसे भारतीयोंकी सुन्दर आँखोंके प्रति कोई आकर्षण है!" जैसा कि मैंने कहा—मैं आजकल विद्यार्थियोंको घटनाओंके प्रति अपना दृष्टिकोण नहीं बताता, क्योंकि वे उनके दूसरे पहलूसे अनभिज्ञ रहते हैं। मैंने सुना है कि रूस और फासिस्ट देशोंमें पाठ्य पुस्तकों पर अधिकारीगण ही नियंत्रण रखते हैं, और वे ही उन्हें जारी भी करते हैं। अगर ऐसा है तो यह बच्चोंके प्रति भयकर अपराध है। मैंने हाल ही में एक रूसी-साम्यवादीसे कहा था 'ध्यान रहे तुम्हारे यहाँ प्रचारका उद्गम-स्थान है राज्य—पिताका प्रतीक। पिताके विरुद्ध स्वाभाविक प्रतिक्रियाके आवेशमें बहुत समव है वे (सोवियत-जन) बड़े होकर तुम्हारे अति प्रचारित साम्यवादको उठाकर फेंक दें और इस प्रकार प्रगति विरोधी बन जायें।' प्रचार सदा भयसे प्रेरित होता है, अत अक्सर वह अपने मार्गमें स्वयं ही

बाधा बनकर खड़ा हो जाता है। कई अभिभावक जो बड़े उत्साह और लगन से मेरे स्कूलका प्रचार करते हैं, कभी एक भी नया विद्यार्थी लानेमें सफल नहीं हुए। उनके प्रचारका उद्देश्य वास्तवमें अपना ही मत परिवर्तन करना था। ऐसे लोगोंको अनजानमें मेरी प्रणालीमें गंभीर शंकाएँ होती हैं, जिन्हें वे अति उत्साहके नीचे दबा देते हैं। उनके श्रोता किसी न किसी प्रकार अस्पष्ट रूप से यह समझ जाते हैं कि प्रचार करनेवाले स्वयंको अपनी बातमें पूर्ण विश्वास नहीं है और निसर्गत वे अपने बच्चोंको अन्य स्थान पर भेज देते हैं।

किंतु क्या यह पुस्तक स्वयं शुद्ध प्रचार नहीं है? लोग कटाक्ष करेंगे—'तुम भी तो वही करते हो।' पर मुझे इसकी चिन्ता नहीं मैं अपने आप पर काफी हँस सकता हूँ।

बिगड़ा हुआ बच्चा

[८]

इडिपस ग्रंथि—'पुत्रका माताके प्रति प्रेम और पिताके प्रति घृणा'—और 'इलेक्ट्रा ग्रंथि—' पुत्रीका पिताके प्रति प्रेम और माताके प्रति घृणा'—के विषयमें बहुत कुछ लिखा जा चुका है। मैं अक्सर बिलकुल उलटी ग्रंथियाँ पाता हूँ—पुत्र या पुत्री के प्रति अतिशय प्रेम। 'पिता पुत्री' ग्रंथिसे अधिक 'माता-पुत्र ग्रन्थि' पाई जाती है। माता पुत्र ग्रंथिसे मेरा आशय माता का पुत्रके प्रति असामान्य (Abnormal) प्रेम से है। हम सबने ऐसी माताएँ देखी हैं, जो अपने पुत्रोंको आँखोंसे ओझल नहीं होने देना चाहती, जो अपने चौदहवर्षीय पुत्रको अकेले सड़कपर नहीं जाने देना चाहतीं। मैं एक या दो माताओंके लाडलोंका उदाहरण देता हूँ।

नौ-वर्षीय जेम्स हेनरीको उसकी माता मेरे पास लाई। उसकी कहानी यों थी —जेम्स हनरी हमेशा उसे परेशान करता था। हालाँ कि वह सम्पन्न थी और उसके लिए नर्स रख सकती थी, किन्तु वह अपनी माताका पल्ला छोड़ता ही नहीं था और उसने उसका जीना दूभर कर दिया था। उसने मुझ से बड़े करुण शब्दोंमें प्रार्थना की कि मैं उसके लड़के के उसके प्रति लगावको तोड़ दूँ। जब वह उसे छोड़कर स्कूलसे जाने लगी तो वह अपनी माँसे चिपक गया, हाथ-पाँव पटकने लगा; अन्तमें वह जब चली गई तो वह दाँत भींचकर, आँसू रोकनेका भगीरथ प्रयत्न करते हुए मेरे अध्ययन-कक्षमें ऊपर-नीचे घूमने लगा और सिसक-सिसककर कहता रहा,—'माई पूअर ममी' (बेचारी माँ) माई पूअर ममी! किन्तु आप ही वह रह-रहकर सिसकी

के बाहर देखता जाता था और कोई राग गुनगुनाता जाता था। फिर एका एक अपनी स्थितिका स्मरण करके 'माइ पुअर ममी!' कहना शुरू कर देता था। उसके राग गुनगुनानेसे ही मैं समझ गया था कि अपनी माँसे अलग होनेपर अधिकांशत वह खुश ही था!

तीन सप्ताह पश्चात् उसकी माँने लिखा कि वह उससे भेंट करने आ रही है। मैंने बहुत मना किया, किन्तु वह न मानी, आई ही। जेम्स हेनरी उस समय कारखानेमें वायुयान बना रहा था। मैंने एक दूसरे लड़केके साथ सँदेशा भिजवाया कि उसकी माँ आई है। खबर पाकर उसने सर तक न उठाया, बोला—'मैं उससे नहीं मिलना चाहता। उससे कह दो यहाँसे अपना मुँह काला करे।' अचतुर सदेशावाहकने लौटकर, जो कुछ जेम्स हेनरीने कहा था, शब्दश माँ से कह सुनाया। माँ का बड़ा धक्का लगा। मैंने उसे समझानेकी कोशिश की कि वह उससे लगाव तोड़नेकी चेष्टा कर रहा है और चूँकि लगाव बहुत गहरा था, अत उसे तोड़नेका प्रयत्न भी उतना ही प्रबल होगा। उसके चेतन मनने तो मेरी बात समझ ली, किन्तु मुझे डर है कि उसके अचेतन मनको बड़ा गहरा घाव लगा था। इस उदाहरणमें लगाव दोनों ओरसे था, सम्भवत पुत्रसे अधिक माँ को था। अचेतन-रूपसे वह चाहती थी कि उसका पुत्र सदा उसपर निर्भर रहे, उसके सरक्षणमें रहे। इस माँ ने तो स्थिति का साहससे सामना किया, किन्तु दूसरी—चौदह वर्षके लड़के की, एक माँने तो उसे, जैसे ही लगाव टूटनेके प्रथम लक्षण दिखाई पड़ने लगे, स्कूलसे हटा लिया। इसमें मजेदार बात यह है कि लड़का भी जानेको उत्सुक था, वह स्वतन्त्रतासे डरता था और माँ के पल्लेसे चिपटे रहनेके लिए बेचैन था। पुन निवेशनके ऐसे उदाहरणोंमें पुत्रके मनमें तीव्र घृणा होती है। प्रकृतिका नियम है कि बच्चोंको अपनी माताओं को छोड़कर, बिना मातृ-सरक्षणके ही जीवनका सामना करना चाहिए। कोई अपना नाता सपूर्णत नहीं तोड़ता; और मानव मनमें माँ के प्रेम और उस द्वारा रक्षणकी ओर प्रत्यागमनके विरुद्ध बराबर झगड़ा चलता रहता है। इस झगड़े का परिणाम अक्सर सांकेतिक अनुरूप

(Symbolic substitutes) होते हैं। माता-चर्च, मातृ भूमि, माता अम्बुधि (आत्म हत्या)। माँ से अपने आपको अलग करनेके लिए द्वन्द तो बहुत जल्दी छिड़ जाता है, लेकिन यौवनावस्थाके पहले—बहुत प्रबल नहीं हो पाता।

पुत्र पर माताके निवेशनसे स्थिति बहुत उलझ जाती है। यहाँ तक कि लगावका टूटना असंभव हो जाता है। बच्चेमें एक दूसरीसे विरुद्ध दो नितान्त इच्छाएँ होती हैं—एक माँ से चिपके रहनेकी और दूसरी माँ से अलग होने की। अति प्यार करनेवाली माता पहली इच्छा को प्रोत्साहित करती है और दूसरी का दमन करती है। इस प्रकार स्वतन्त्र होनेकी इच्छा अवरुद्ध हो जाती है और बच्चेमें विकृत भयके रूपमें प्रकट होती है—कि वह माँ को खो देगा—(एक सुविदित मरणेच्छा)। माँ से छुट्टी पानेकी यह अचेतन इच्छा चेतन-मनमें माँ के प्रति असाधारण क्रोधके रूपमें—याने घृणाके रूपमें प्रकट होती है यह स्वाभाविक है क्योंकि बच्चेके अचेतनमें नियन्त्रण करने-वाली माता भयंकर माता, भक्षिका, पिशाचिनीका रूप ले लेती है, एक ऐसे राक्षसका रूप लेती है जिसे (स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके लिए) पहले मौतके घाट उतारना पड़ता है।

यही कारण है कि हम माता पुत्र निवेशनके अधिकतर उदाहरणोंमें घरका वातावरण दुखी पाते हैं। बच्चेकी घृणा उसे माँसे अगणित और निरर्थक प्रश्न पूछ पूछ कर माँ को परेशान करनेके लिए प्रेरित करती है। मैं सत्रह वर्षके एक ऐसे लड़केको जानता हूँ, जिसने अपनी माँका जीना दूभर कर दिया—क्योंकि वह सदा उसके आरामका ख्याल रखता था 'माँ, उस कुर्सीमें तुम्हें अवश्य तकलीफ हो रही होगी। लो, इसपर बैठ जाओ।' उसका एकमात्र उद्देश्य अपनी माँको कष्ट देनेका था। दूसरे लड़केमें इस पर-पीड़न वृत्तिने हर चीजमें माँकी सलाह लेनेका ढंग अपनाया 'मैं कौन-सा निकर पहनूँ—सफेद या भूरा? क्या मैं सिनेमा देखने जाऊँ?' दोनों अपनी माँको आँचल न काटनेका दण्ड दे रहे थे। माता पुत्र ग्रंथिका शिकार स्वार्थी, क्रूर, अरचनाशील, क्षीण होता है, कभी कभी इसका प्रभाव शरीरपर भी पड़ता है और छाती कमजोर हो जाती है या हाथ-पाँव पतले स्नायु आता

रहता है। उसकी दशा बड़ी दयनीय होती है और उसके उद्धारकी कोई आशा नहीं होती, क्योंकि उसकी माता उसका उद्धार होने ही नहीं देगी। यह सदा ढोंगी होता है। एक मनोवैज्ञानिक थोड़े ही अनुभवके पश्चात, उसकी कष्टपूर्ण आवाजके कारण, उसकी असलियतका पता लगा सकता है। बेचारा! उसे अपने स्वरमें भी कपटसे काम लेना पड़ता है, क्योंकि अपनी माँ और अपने आपसे यह कटु सत्य कि वह दोनोंसे घृणा करता है, छिपाना आवश्यक होता है।

आइए, अब माँके मनस्तत्वको समझानेका प्रयत्न करें। क्योंकि वह अपने पुत्रको सदा अपनेसे चिपटाये रखना चाहती है? हर दशामें कारण एकसे नहीं होते, किन्तु परिणाम लगभग एकसे होते हैं। साधारणतया ऐसी स्त्रीका दाम्पत्य-जीवन दुखी होता है मैंने देखा है कि ऐसी स्त्रियाँ मेरी पत्नीके साथ तो अच्छी तरह व्यवहार करती हैं, किन्तु मेरे प्रति उनका रुख घृणात्मक और आक्रमक होता है। मैं प्रतीकसे पतिका प्रतिनिधित्व करता हूँ। प्रत्येक बिगड़े हुए लड़केकी माता अपने पतिसे डरती है, क्योंकि उसे शंका होती कि कहीं वह उससे उसके लाड़लेको न छीन ले। ऐसी माताके लिए पिता (पति) का स्थान पुत्र ले लेता है, वह पिता (पति) पुत्रका सम्मिश्रण बन जाता है। कमसे कम कुछ उदाहरणोंमें पति-पत्नीका सम्बन्ध आरम्भ ही से स्नेहहीन था और इसीलिए लड़केकी कामना की गई थी, ताकि वह दोनोंको निकट ला सके। बच्चा अपने अभिभावकको निकट लानेमें शायद ही कभी सफल होता है। उल्टे वह अक्सर उनके स्वतन्त्रताके मार्गमें बाधा बनकर खड़ा हो जाता है 'अगर बच्चा न होता तो हम अलग हो जाते।' बच्चा दोनोंको बाँधता अवश्य है, किन्तु एक दूसरेसे नहीं-दकियानूसी (रूढ़िवादी) नैतिकतासे।

अब हमें उस अभागी स्त्रीकी मनस्थिति समझनेका प्रयत्न करना चाहिए जिसने गलत आदमीसे ब्याह कर लिया है। यह याद रखना चाहिए कि जो स्त्री गलत आदमीसे ब्याह करती है, उसमें विवाहके समय, एक प्रकारकी मृत्युकी इच्छा होती है, यानी दुखानुसन्धान मनोवृत्ति होती है। अचेतनरूपसे वह स्वयं अनन्दिन (दुखका कारण—अनु०) मोदी

चुनती है,—सत्य अक्सर प्रतारक समर्थनोंके नीचे दब जाता है ,परवालोंने विवाह करनेपर मजबूर कर दिया बहुत दिन नहीं हुए किसीने उनके साथ दगा किया था, अत जो पहिले मिला उसीको स्वीकार कर लिया आदि। बाह्य कारण कभी सन्तुष्ट नहीं करते, वास्तविक कारण तो मनमें बहुत गहरे पैठे रहते हैं।

अब हम दुखी दाम्पत्य-जीवनकी बात करते हैं तो हमारा मतलब स्त्री की असन्तुष्ट लिंगैपणासे होता है, यहाँ लिंगैपणाका अर्थ काफी विस्तृत है। स्त्रीका काम-जीवन शारीरिक दृष्टिसे संतोषपूर्ण होनेपर भी वह भाव-(Sentiments या Romance)क्षेत्रमें असन्तुष्ट रह सकती है। उसका पति उसे वह नहीं दे सकता जो वह चाहती है—प्रेमका वह आदर्श जो उसने बचपनमें बनाया था। माता और पुत्रके सम्बन्धोंमें यह बालकीय भावना घुस जाती है लड़का बचपनके खोये प्यार का प्रतिनिधित्व करता है भाई, या प्रेमी का। फिर, पुत्र तो एक ऐसी चीज है, जिसपर उसका पूर्ण अधिकार होता है, जिसे प्राप्त करनेके लिए उसे कष्ट और चिन्ताएँ सहनी पड़ती हैं, जो बहुमूल्य है और जिसपर आंशिक भागीदार पिताका कोई अधिकार नहीं होना चाहिए।' कभी कभी माता अपने पतिको भी इसी तरह नियन्त्रित कर लेती है, जैसे वह अपने पुत्रको करती है। परिणामत पति अपनी पत्नीपर निर्भर रहनेवाला 'पुरुष बच्चा' बन जाता है और अक्सर अपनी पत्नीको 'माँ' कह कर सम्बोधित करता है। ऐसी दशामें पति और पुत्र माँका 'मातृ-प्यार' प्राप्त करनेके लिए प्रतिद्वन्द्वी बन जाते हैं।

साधारण रूपसे ऐसी माताके लिए यह कहा जाता है कि उसमें असाधारण मातृवृत्ति होती है। बात ऐसी नहीं है। जो माता अपने बच्चेपर जान देती है, वह वास्तवमें अपनी ही रक्षाका खेल खेलती है वह अपनी भावनाको एक वस्तुपर केन्द्रित कर देती है, पुत्रसे आगे जीवनका उसके लिए कोई अर्थ नहीं होता। ऐसी माताओंका लिंगैपणाके प्रति रुख अक्सर अनैतिक होता है अपने पुत्रको छद्मवेषमें अपना लैंगिक प्रेम देकर वह उसके लिए पापहीन माँग निकाल लेती है।

माताके विषयमें प्रचलित एक दूसरी धारणामें कुछ-कुछ सचाई है •

वह उसे अपनेसे इसलिए चिपटाये रखना चाहती है कि वह डरती है कहीं वह बड़ा न हो जाय। मातृत्व तो एक नौकरी है और कुटुम्बमें लोगोंके बड़े होनेपर माँ बेकार हो जाती है (और यह उसे अच्छा नहीं लगता। कौन बेकार रहना चाहेगा ?—अनु०)

कुछ असाधारण निवेशनोंमें माँके अति प्यारके पीछे बच्चेसे छुटकारा पानेकी भावना छिपी रहती है।

मैं कह चुका हूँ कि माता पुत्र निवेशनमें पुत्रके मनमें माताके प्रति असाधारण क्रोध होता है। पुत्रकी परिपक्व होती प्रकृतिके विरुद्ध कुछ करनेका यह स्वाभाविक परिणाम होता है। जब बच्चा अभिभावकोंका प्यार नहीं पाता तो अनुकल्परूपमें वह उनकी घृणा पाना चाहता है और अधिकसे अधिक घृणा पानेका प्रयत्न करता है। मातामें भी यही क्रिया विधि काम करती है, वह अपने पुत्रके प्रेमके स्थानपर अनुकल्प रूपमें आलोचना और क्रोधमें प्रकट की गई उसकी घृणाको स्वीकार कर लेती है। असाधारण हालतोंमें, जब माँ अचेतन रूपसे बच्चेसे घृणा करती है, तो यह बच्चेके क्रोधको अपनी घृणाकी सफलता मानती है। यही क्रिया-विधि उस लड़केमें भी काम करती होती है, जो तब तक दरवाजा खटखटाता ही रहता है, जब तक उसका पिता बिगड़ न खड़ा हो। बच्चेका उद्देश्य पूरा हो जाता है पिताकी घृणा और वह शांत हो जाता है।

जहाँ माताका पुत्रपर निवेशन होता है, उस घरमें पिताका का भाग याने उसकी अवस्था अनावश्यक वस्तुकी सी होती है। वह लाड़ले पुत्रसे घृणा करता है केवल इसलिए नहीं कि माताके प्यारको प्राप्त करनेमें वह उसका प्रतिद्वंद्वी है, बल्कि इसलिए भी कि बच्चा पैदा होनेके बाद पिता अपनी पत्नीसे—थोड़ा कहिए ज्यादा कहिए--खो-सा देता है। माँके लाड़लेकी शिक्षाके प्रति पिताका रुख बड़ा कठोर (नियंत्रणवादी—अनु०) होता है। वह उसे ऐसे स्कूलमें भेजना चाहता है, जहाँ उसके दिमागसे सब फितूर निकाल दिए जायँ। छात्रावासोंके प्रचलनमें पिताओंकी ईर्ष्याका कितना हाथ है, यह विषय खोजके लिए बड़ा रोचक हो सकता है। क्योंकि वर्षका अधिकांश भाग पिताके नर्दे प्रतिवादी उन छात्रावासोंमें व्यतीत करते हैं।

मेरी अपनी दृढ़ धारणा यह है कि बिगड़े बच्चेको 'दिमागसे फितूर निकाल देने वाले स्कूल' में भेजना अत्यन्त खतरनाक होता है। वहाँ बिगड़ा हुआ बच्चा क्रूर यातनाएँ भोगता है और अधिकसे अधिक माताके निकट जानेके लिए उत्सुक होता जाता है। ऐसे बच्चोंकी सहायता मनोवैज्ञानिक रीतियोंसे करनी चाहिए न कि पीटने-पाड़नेकी जगली नीतियोंसे।

मेरे स्कूलमें इस समय एक 'विशिष्ट माँ का लड़का(Mother s son)' है। उसके पिताका व्यवहार बड़ा कठोर है और वह बराबर उससे कहता रहता है कि 'आदमी बनो।' बच्चा अपने पितासे डरता है, अत उसने अचेतन रूपसे 'कभी आदमी न बनने' का निश्चय कर लिया है। जब हमारे यहाँ चित्र-विचित्र पोशाकें पहनकर नृत्य किया जाता है, तो वह सदा स्त्री की पोशाक ही पहनता है और जीवनके प्रति उसका रुख मुख्यत स्त्रैण है। उस तरहकी माँ के सभी लड़के स्त्रैणत्वकी ओर झुकते हैं।

उसका अपने पिताके प्रति रुख,बड़ा मजेदार है। वह उससे डरता और फिर भी चाहता है कि वह उसे प्यार करे स्त्रीके समान। उसने अपनी माँके साथ तादात्म्य स्थापित कर लिया है और वह पिताके साथ माँके स्थान पर स्वय रहना चाहता है। अगर दूसरी लड़ाई हुई तो मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि पिता अपने बच्चोंको सेनामें प्रवेश करनेके लिए मजबूर करेंगे। घृणासे भरे हुए पिता युद्धका सदा स्वागत करते हैं। अपने नन्हें प्रतिद्वंदियों को देशके लिए वीरतासे मर जानेपर उनकी आत्माको कितनी शांति मिलती है!

अच्छे गलीचों पर कीचड़से सने जूते लेकर चले आनेवाले बिगड़े बच्चे से तो आप परिचित अवश्य होंगे। अक्सर ऐसा बच्चा अकेला—'एकमात्र' बच्चा होता है। माता और पिता दोनों मुस्कराकर उसकी प्रशसा करते हैं। वह इतना उत्पात मचाता है कि जीवन असह्य हो जाता है। उसके माता पिता कुछ नहीं बोलते, क्योंकि वे डरते हैं कि कहीं वह उनसे प्रेम करना बद न कर दे। अधिकतर ये अभिभावक मूर्ख होते हैं और बाल-मनोविज्ञान बिलकुल नहीं समझते। दुर्भाग्यसे ऐसे लोगोंके साथ किसी भी प्रकारका व्यवहार बड़ा कठिन होता है, क्योंकि ये समझते हैं कि उनकी प्रणालीको छोड़कर और किसीकी प्रणाली सही नहीं हो सकती। एक बड़ी मजेदार बात यह है कि

फर्नीचर खराब करते समय बच्चेकी एक आँख सदा अपने अभिभावकों पर रहती है। वह उनकी प्रतिक्रिया देखना चाहता है, वह उनकी परीक्षा लेता है। इससे भी अधिक वह उन्हें नीचा दिखाना चाहता है, क्योंकि सचमुचमें बिगड़ा हुआ लड़का सदा घृणासे भरा रहता है।

मैं इस बात पर जोर देना चाहता हूँ कि स्वतन्त्रता और उच्छृंखलतामें अन्तर है। आज सुबह दस वर्षका एक लड़का आया और मुझे उसने उसी क्षण अपनी साइकल ठीक कर देने को कहा। मैं मेजसे उठकर गया क्योंकि मैं जानता था कि उसका पिता उससे बड़ा कठोर व्यवहार करता था और यह लड़का वास्तवमें इस समय इस बातकी परीक्षा कर रहा था कि उसका नया पिता उससे प्यार करता है कि नहीं। मैंने उसकी आज्ञा मानी, क्योंकि उसे सुधारनेके मेरे तरीकेका यह एक पहलू है, किंतु यदि मेरा कोइ पुराना विद्यार्थी आकर अपनी साइकल ठीक करनेके लिए कहता है तो मैं उत्तर देता हूँ—'भाग जाओ, अपने आप ठीक कर लो।' बच्चोंको दूसरों पर शासन करने देना, बच्चोंके लिए बहुत हानिकारक होता है। इस प्रकार वह कभी अच्छा नागरिक नहीं बन सकता, समाजमें कभी अपना स्थान नहीं पा सकता। अगर उनकी चले तो कइ बच्चे अपनी माताओं पर डंडेसे शासन करें—विशेषकर इकलौते बच्चे—क्योंकि अपनी ही उम्रके बच्चोंके अभावमें जिनके साथ वे अपनी शक्ति आजमा सकते हैं। वे उसे अपनी माताके विरुद्ध आजमाते हैं। यही कारण है कि जिस बच्चेके लिए शिक्षक रखकर घरपर पढ़ाया जाता है, वह सामाजिक दृष्टिसे सदा अविकसित रहता है और मातृ ग्रंथिका शिकार होता है।

बच्चोंका समाजमें अपना स्थान होना चाहिए और 'दूसरोंके अधिकारों को समझनेकी वृत्ति' उनमें लानेके लिए उन्हें बाध्य किया जाना चाहिए—नैतिक उपदेश या दंड द्वारा नहीं, वरन् स्पष्ट बातचीत द्वारा। हमारे स्कूलमें एक नियम है-'व्यक्तिगत संपत्ति नियम'। कोइ लड़का मेरी साइकल नहीं ले जा सकता; दूसरी ओर मैं किसी लड़केकी साईकल लेनेकी हिम्मत भी नहीं कर सकता। मेरी पत्नी बच्चोंको अपना प्यानो बजाने देती है, किंतु वह किसी लड़की का ग्रामोफ़ोन बिना उसकी आज्ञाके नहीं ले सकती। मेरे पास अपने औजार हैं, और उन्हें मैं अपने पास रखता हूँ किन्तु मेरा काम तो ऐसे लड़कों

से पड़ता है, जिन्हें उपचार की आवश्यकता है, अत वर्षों पहले बोए गए विषके बीज को उखाड़ फेंकनेके लिए मुझे अपनी व्यक्तिगत संपत्तिके विषय में ढील करनी ही पड़ती है। एक लड़केने मेरे प्रिय औजार तोड़ डाले, मुझे बहुत पीड़ा हुई किन्तु चूंकि 'पिता' के औजारों को काममें लाने और उन्हें तोड़ डालनेकी बच्चेके जीवनमें अतृप्त आकाक्षा होती है, मैंने यह सहन कर लिया। ऐसी गभीर दशामें औजारोंसे बच्चेका महत्व अधिक होता है, किन्तु यदि उन्हें उचित रीतिसे शिक्षा दी जाय, तो ऐसी हालत पैदा ही नहीं हो सकती।

बच्चोंको सामाजिक आचरण की उचित शिक्षा नहीं मिलनेके कारण मेरा काँचका बिल बहुत होता है, उनका लालन-पालन सपत्ति अधिकार की सामूहिक भावनाके प्रभावमें होता है अर्थात् वे पिताकी संपत्तिका पिताके साथ तादात्म्य स्थापित कर देते हैं और माताकी संपत्तिका माताके साथ। जब वे मेरी खिड़कियाँ तोड़ देते हैं तो वास्तवमें वे अपने पिताकी प्रतिक्रिया देखना चाहते हैं, और साथ ही अपने पितासे बदला भी लेते हैं। अत-अपने औपचारिक काममें जब कोई नया लड़का खिड़की तोड़ता है, तो मैं मुस्करा देता हूँ और गभीर 'केस' में मैं उसे इस काममें और आगे बढ़नेके के लिए प्रोत्साहित करता हूँ। मेरा काम पिता-खिड़कीके समूहको तोड़ देना होता है और इसका सबसे अच्छा उपाय यह है कि मैं अपनी प्रतिक्रिया नहीं दिखाता। मेरे इस रुखके कारण तोड़ फोड़ करनेमें बहुत मजा नहीं रह जाता। हमारा अभिभावक मुझसे कभी-कभी कहते हैं-- लेकिन आपके कथनानुसार तो जो कुछ हम करते हैं, सब गलत करते हैं!' मेरा विचार है कि यदि अभिभावक आत्म प्रेरणा--अर्थात् मस्तिष्क न सही, हृदयकी ही बात मान कर चलें तो सब ठीक हो जाय। उन्हें स्वार्थपूर्ण उद्देश्य त्याग देने चाहिए। विशेषकर उन्हें 'भय' त्याग देना चाहिए

चाहे वह शुद्ध भय हो या सम्मानका भय हो। विलाम्योर की बात मैं एक बार पुन उद्धृत करता हूँ--'अगर बच्चेके प्रति तुम्हारा रुख ठीक है, तो फिर चिन्ता की कोई बात नहीं।' मैं अपने विद्यार्थियों को चिल्ला कर कह सकता हूँ--'निकल जाओ इस कमरेसे!' किन्तु मेरी यह आज्ञा

उनको कोई हानि नहीं करेगी, क्योंकि वे मुझसे डरते नहीं हैं। अगर मैं उनसे कहूँ कि जब मैं रेडियो सुनता हूँ, उस समय चिल्लाना भले लड़कोंका काम नहीं है तो मेरी बात हानिकारक होगी, क्योंकि तब मैं नैतिक प्रश्न ला खड़ा करूँगा। मैं एक ऐसी माताको जानता हूँ जो यदि अपने लड़केको प्यानो पर हथौड़ी से कीलें ठोकते देख ले तो कहेगी—'इसके बनानेमें बहुत परिश्रम और समय लगा है। देखो अखरोट का ढकना कैसा सुन्दर लग रहा है? अगर तुम एक सुन्दर नाव बनाओ और कोई दूसरा लड़का आकर उसका पालिश खराब कर दे तो? अपने आपको उस कारीगरके स्थान पर रख कर देखो जिसने इसे बनाया होगा। तुम क्या करोगे अगर ' और इस प्रकार वह कमसे कम आधे घण्टे तक उपदेश देती रहेगी। उसका पुत्र आनोशमें सुनता रहेगा, उसकी माँ के उपदेशसे कुढ़कर वह पहलेसे भी ज्यादा तोड़ फोड़ करने पर उतारू हो जायगा। अगर वह केवल इतना ही कहती—'यह मेरा प्यानो है। दूर हटो उससे!' तो उसका लड़का उसकी आज्ञा में छिपी सच्चाई को समझ जाता और तोड़ फोड़ बन्द कर देता। बच्चे मूर्ख नहीं होते और प्रतारक-युक्तियों से वे कभी धोखेमें नहीं आते। उनकी 'अधिकार (Possesion)' में कोई रुचि नहीं होती, अत उनके साथ रहना बड़ा कठिन होता है मैं जानता हूँ बर्नार्डशा पाँच मिनटके लिए भी मेरे स्कूलका शोर-गुल सहन नहीं कर सकता

हाँ, अभिभावकोंके थोड़े बहुत नियन्त्रणके बिना भी नहीं चल सकता। बड़ोंके साथ तादात्म्य स्थापित कर लेनेके कारण बच्चे अकसर उनकी अधिकार-सीमामें अनधिकार प्रवेश कर जाते हैं और हमारे स्कूलमें प्रौढ़ोंको सदा अपने अधिकारोंके लिए संघर्ष करना पड़ता है। मेरे विद्यार्थी जैसे ही मौका पाते हैं, वैसे ही मेरी बैठकमें घुस जाते हैं और मुझे वहाँसे उन्हें घसीट कर निकालना पड़ता है। मुझे बच्चोंके साथ अत्यन्त सहानुभूति है। उन्हें सदा छोटा (हीन) बन कर रहना पड़ता है जल्दीसे जाना, खर्चके लिए पैसे कम होना या बिलकुल न होना, बड़ोंकी आपसी बातोंमें उनका शामिल न किया जाना। उनका छोटा पद उनमें हीनता की भावना को बहुत गहरी बना देता है। मैं हवबार-शाम को बच्चोंकी बहादुरियोंके विषयमें जो किस्से सुनाता हूँ, तो

उनको सबसे अधिक मजा तब मिलता है, जब मैं कहता हूँ कि 'वह उसे खा कर एकाएक बहुत लम्बा हो गया।' अभिभावकों और अध्यापकों को बच्चोंकी अति निस्करण (Over compensation)-वृत्तिके विरुद्ध निरंतर लड़ना पड़ता है, किन्तु यह लड़ाई दोनों ओरसे बिना किसी द्वेषके भी लड़ी जा सकती है।

अभिभावकों को कुछ बच्चों को अधिक, और कुछ को कम प्यार करनेकी मनोवृत्ति से सावधान रहना चाहिए। मै जानता हूँ यह सरल नहीं है, क्योंकि जब कोई अभिभावक एक बच्चेको दूसरेसे अधिक प्यार करता है तो यह उसके वशकी बात नहीं होती, किन्तु उस प्यार को प्रकट करने पर तो कुछ न कुछ वश हो ही सकता है। एक बच्चेके प्रति असीम स्नेह दूसरे बच्चोंमें उस बच्चे और अभिभावकोंके प्रति तीव्र घृणाको जन्म देता है। इससे उनके विकासमें जबरदस्त बाधा पहुँचती है। एक उदाहरण दूँ —

नौवर्षीय पेगीको मानसिक और शारीरिक विकास अपूर्ण है। उसका मस्तिष्क कमजोर बताया जाता है किन्तु बात वैसी नहीं है। वह कल्पना-प्रदेशमें बहुत रहती है, क्योंकि उसका वास्तविकजीवन दुखी है, इसका कारण माँ की लाड़ली सातवर्षीय मेरी है। एक दिन मुझे पेगीके लिए उसकी माँ का लिखा हुआ खत आँगनमें पड़ा मिला। उसमें मेरी की ही चर्चा थी कि 'मेरी अपनी कक्षामें सर्व प्रथम है मेरी—यह कर सकती है, वह कर सकती है।' उसी दिन शामको पेगी जब घूमते घामते मेरे कमरेमें पहुँची तो मुझे आश्चर्य नहीं हुआ। वह एक सोफे पर बैठ गई और बोली—'मुझे कुछ व्यक्तिगत बात करनी है।'

'अच्छा।' मैंने कहा, 'बोलो, क्या बात है ?'

वह स्वयं नहीं जानती थी कि वह क्या बात करना चाहती है।

'तुम्हारी बहनका क्या नाम है ?' मैंने पूछा।

'मेरी उसने मुँह बिचका कर—कहा, फिर बोली, 'क्या तुमने उसे देखा है ?'

'क्यों नहीं !' मैंने प्रसन्न होते हुए कहा,—'देखो, वह रही' और मैंने सोफे पर एक तकिया रख कर उससे हाथ मिलाते हुए कहा—'कहो मेरी

अच्छी तो हो ?

पेगीने पुन मुँह चिचकाया।

'यह मेरी है?' उसने पूछा ?

'अवश्य' मैंने उत्तर दिया 'तुम इससे मिलकर खुश नहीं हुई ?'

उसने कोई उत्तर नही दिया। थोडी देर तक वह तकिएकी ओर ध्यानसे देखती रही, फिर एकाएक मुट्ठी भींचकर जोरसे उसपर प्रहार किया।

'अरे, यह क्या ?' मैंने कहा।

वह चुप रही। वह सोफेपर खड़ी हो गई और लगभग दो मिनटतक तकियेको अपने पाँवोंसे रौंदती रही। इसके पश्चात् वह पुन बैठ गइ।

'मेरी मर गइ।' उसने कहा।

'बहुत अच्छे!' मैंने कहा 'अब, माँ कहाँ है ? अरे, वो रही!' कह कर मैंने एक बड़े तकिएसे हाथ मिलाते हुए कहा—'आपसे मिलकर मुझे प्रसन्नता हुई है, श्रीमती स्मिथ।'

पेगी कुछ न बोली। एक भयानक मुस्कराहटके साथ वह अपनी माँ पर टूट पड़ी।

'माँ भी मर गइ', वह बोली।

'चलो अच्छा हुआ!' मैं बोला तब एक दूसरे तकिएके निकट जाकर मैं बोला 'कहिए मि० स्मिथ! आपसे मिलकर बड़ी खुशी हुई!'

पेगीने दाँत पीसे, किन्तु कुछ बोली नहीं।

'क्यों, अपने पिताजीको नहीं मारोगी ?'

'नहीं!'

'बहुत अच्छे!' मैंने कहा—'मेरी और माँ दोनों मर गईं मै पिता हूं।

मैं अपनी आरामकुर्सीपर लेट गया।

'मैं तुम्हारा पिता हूँ बिस्तरमें लेटा हुआ हूँ। अरे पेगी! नाश्ता तैयार है?

वह उछलकर खड़ी हो गइ और प्यानोके निकट जाकर नाश्ता तैयार करने लगी।

पिताजी, आप उठ रहे हैं या बिस्तरमें ही नाश्ता कीजिएगा ?'

'आज बिस्तर ही में नाश्ता करूँगा, पेगी !'

तब वह अपनी काल्पनिक तश्तरी लेकर आई, और मेरे प्यालेमें कॉफ़ी डाली । यह सब करते समय वह बराबर कहती जा रही थी—'तुम बहुत सुस्त हो । मुझे सुस्त पति (मेरा मतलब है—पिता) नहीं चाहिए।'

उसका अपने दो प्रतिद्वन्द्वियोंसे छुटकारा पानेका अर्थ अब स्पष्ट हो गया कि वह अपने पिताकी पत्नी थी । एकाएक वह चौंकी । 'अभी कोई दरवाजा खटखटा रहा था'—उसने कहा ।

'पेगी, कौन हो सकता है ?'

'शायद पडोसकी श्रीमती ग्रीन होंगी ।' उसने तिरस्कारपूर्वक कहा। मैं समझ गया कि श्रीमती ग्रीन और कोइ नहीं उसकी पुनर्जीवित माँ है। मेरी नइ पत्नी (पेगी) इस बातकी परीक्षा कर रही थी कि मैं पुनर्जीवन प्राप्त पत्नीके साथ क्या करूँगा ?'

'अन्दर बुला लो उन्हें ।' मैं जोरसे बोला ।

पेगी काल्पनिक श्रीमती ग्रीनको अन्दर ले आइ ।

'कहिए, श्रीमती ग्रान' मैंने कहा मैं जानता हूँ आप किस लिए आइ हैं । श्रीमती स्मिथ मर गई हैं, इसलिए आप मेरा घर-बार सँभालने आइ हैं, लेकिन मुझे आपकी आवश्यकता न पडेगी । अब मेरी देख रेख पेगी करेगी । नमस्ते !'

पेगीने उन्हें दरवाजा दिखाया, फिर उनके चले जानेपर उसने बडे जोर से दरवाजा बन्द कर दिया और बिदा होते प्रतिद्वन्द्वीकी ओर जीभ निकाल कर दिखाने लगी ।

इस नाटकके बाद पेगीने कुछ उन्नति की क्योंकि अचतनरूपसे जो कुछ वह करना चाहती थी, वह उसने कल्पना प्रदेशमें कर लिया था । प्रत्येक नन्ही लडकी पिताका प्यार पानेके लिए अपनी माँको हटाकर उसकी जगह लेना चाहती है; किन्तु इसका ध्यान रखना चाहिए कि कहीं प्रतिद्वन्द्वीके रूपमें माँके लाडलेको मारनेकी इच्छाके कारण परिस्थिति बाधक न बन जाय ! पेगी उन हजारों बच्चोंमेंसे केवल एक है जिसका विकास कुटुम्बमें

हीन स्थान पानेके कारण रुक जाता है ।

बच्चेके जीवनमें कल्पना (Phantasy) का बहुत महत्वपूर्ण स्थान होता है, किन्तु जब उसे घर या स्कूलमें दुखमय वातावरण ही प्राप्त होता है, तो यह आवश्यकतासे अधिक कल्पना प्रदेशमें रहने लगता है। अभिभावकोंको इस कल्पनाको भग करनेका प्रयत्न कभी नही करना चाहिए। हर मनोवैज्ञानिक जानता है कि कल्पना-जाल खतरनाक भी हो सकता है। लड़कोंसे अधिक लड़कियाँ कल्पनाजाल बुनती हैं। उनकी कल्पनामें व्यक्ति और लड़कोंकी कल्पनामें वस्तुका प्राधान्य होता है। मैंने कभी किसी लडके को अपने घर स्कूलका रंगीन (कल्पनापूर्ण) वर्णन लिखकर भेजते नहीं देखा; किन्तु नइ लड़कियोंको कई बार स्कूलका कल्पनापूर्ण वर्णन लिखकर घर भेजते देखा है। एक एकान्तप्रिय लड़कीने लिखा— नील कहता है—मैं चित्रकारी और अभिनयकलामें सर्वश्रेष्ठ हूँ।' एक युवतीने जो सुन्दर नहीं थी, लिखा—'यहाँ रहना कठिन है। मैं पलभर भी आरामकी साँस नहीं ले सकती, क्योंकि सब लडके मुझे प्यार करते हैं।' ये वे लड़कियाँ हैं, जिनके जीवन नीरस और स्नेहहीन थे, उनके कल्पनाजाल उनके 'आदर्श' हैं, जिन्हें वे अपने दिवा-स्वप्नोंमें प्रकट करती हैं। कभी-कभी कल्पनाजाल बिलकुल दूसरे ही प्रकारका होता है एक नइ लड़कीने अपनी माँको शिकायत लिख भेजी कि यहाँ एक बिस्तरमें तीन तीनको सोना पड़ता है। उसका हेतु मैं ठीकसे समझ न सका, क्योंकि उसके घरके जीवनके बारेमें मै बहुत नहीं जानता था। कुछ बच्चोंमें 'स्वीकार-ग्रंथि' होती है (यह लड़की पत्र लिखने से पहली रातको अपने बिस्तर से उठकर अपनी मित्रके साथ उसके बिस्तरमें आकर सो गई थीं, हो सकता है इससे उसको ऐसा लगता रहा हो कि उसने कोइ अपराध किया है।) कुछ बच्चोंके अन्त करण में हर चीज को लेकर 'अपराध भावना जाग पड़ती है। प्रौढ़ोंमें भी ऐसा होता है। मैं

ऐसे युवकको जानता हूँ जिसे डाकमें पत्र छोड़ने या रेलका उम्मेद कर का डब्बा बाहर फेंकनेके बाद बड़ी यातना होती है उसे हर अपरावर्तनीय (Irrevocable) वस्तुसे डर लगता है । 'स्वीकार ग्रंथि' की बात करते-करते मुझे एक लड़कीका स्मरण हो रहा है, जिसे मैं बचपनमें जानता

था। उसके व्यवहारने मुझे आज तक चक्करमें डाल रखा है। मैं सात वर्ष का था, वह भी सात वर्षकी थी। वह मुझे हर प्रकारकी यौन-क्रियाओंके लिए प्रेरित करती थी। इन सबका परिणाम यह होता कि मुझपर बुरी मार पड़ती थी, क्योंकि 'शरारत' करनेके पश्चात् वह रोकर, सब कुछ अपनी माँसे जाकर कह देती थी, और उसकी माँ मेरी माँसे कह देती थी। अगर मैं कहता कि सब कुछ उसीने शुरू किया था तो दण्डकी मात्रा और बढ़ जाती थी।

स्वतन्त्र स्कूलोंमें बिगड़ा बच्चा बड़ी परेशानियाँ उत्पन्न कर देता है। मेरे ही स्कूलको लीजिए। वह मेरी पत्नीको परेशान कर देता है—क्योंकि वह माँके प्रतीकसे दूर नहीं रह सकता। आजकल एक नया लड़का दिन भर उसके पीछे लगा रहता है, निरर्थक प्रश्नोंकी झड़ी लगा देता है आज ही वह दिनमें पाँच बार पूछ चुका है कि यह टर्म कब समाप्त होगी, उसकी एक मात्र इच्छा माँके पास लौटनेकी है। मुझसे वह दूर ही दूर रहता है, किंतु जब मैं और मेरी पत्नी बातें करते होते हैं तो वह बार-बार अन्दर आता है, उसका उद्देश्य माँ और पिताको अलग करना होता है। वह मुझसे वैसे ही ईर्ष्या करता है, जैसे वह अपने पितासे करता है। धीरे धीरे वह मेरी ओर झुकेगा और उस दिनसे उसमें सुधार आरंभ हो जायगा किंतु तभी जब माता उसे लगाव तोड़ने देगी और पिता उससे प्रेम करेगा। यह लड़का अन्य बिगड़े लड़कोंके समान, अपने कल्पना जालमें बहुत रहता है। उसका सुख-तत्व उसकी माँ में निहित है और चूँकि माँके बिना उसका जीना बहुत कठिन होता है, वह कल्पना-जालमें अपना सुख ढूँढ़ता है। किन्तु सुख प्राप्ति तभी हो सकती है, जब कल्पना रचनात्मक हो। प्रतिगामी कल्पना जीवनसे पलायन होती है प्रतिगामी कल्पना जीवनमें 'अधिकार (Possession)' ढूँढ़ती है।

एक प्रौढ़के लिए अपनी प्रतिगामी कल्पनाओंका वर्गीकरण करना बड़ा ज्ञान-दायक-अनुभव होता है। मैं जैसे जैसे बड़ा होता जाता हूँ, वैसे-वैसे मेरी प्रतिगामी कल्पनाएँ संख्या और प्रभावमें कम होती जाती हैं। वे बिलकुल तो नहीं मिट जातीं अब भी जब मैं दुष्ट व्यक्तिको आता देखता हूँ तो मुझमें एक सुखपूर्ण कल्पना जाग पड़ती है : कल्पनामें मैं अपने-आपको

सॉलिस्टरोंकी फर्म द्वारा लिखा गया एक पत्र पढ़ते देखता हूँ पत्रमें लिखा होता है कि उनका एक मुवक्किल जो गुमनाम रहना चाहता है, मुझे अपने स्कूलका विस्तार करनेके लिए एक बड़ी रकम देना चाहता है। कभी कभी विशेषकर क्रिसमसके दिनोंमें कल्पनाजालको बड़ा क्रूर धक्का लगता है, जब आशाके विरुद्ध डाकिया 'प्राइवेट' ऑन हिज मेजेस्टीज सर्विस वाला लिफाफा लाकर हाथमें पकड़ा देता है। छोटी उम्रमें मेरा कल्पना जाल अधिक वैयक्तिक था मुझे बहुत बड़ी जायदाद मिलती थी और मैं दुनियाँकी सैरको चल पड़ता था। अब मेरा कल्पनाजाल व्यक्तिगत सपत्तिकी बहुत चिन्ता नहीं करता अब मैं उसका प्रयोग अपने कामकी उन्नति करनेके लिए करता हूँ, अर्थात् उसका उद्देश्य अब रचनात्मक हो गया है। शुद्ध कल्पना-तत्व (Pure phantasy) बिना प्रयत्नके पैसा प्राप्त करनेकी मेरी इच्छामें है बरट्रेंड रसल मुझसे कहते हैं कि मैं पैसा इसलिए नहीं कमा पाता कि मुझे पैसेमें रुचि नहीं है। यह ठीक हो सकता है क्योंकि स्कॉच लोग अक्सर पैसेकी ओरसे उदासीन होते हैं। स्कॉटलैंडमें साधारणतया मोटर ड्राइवर आपसे इनाम (Tip) की अपेक्षा नहीं करता। कई बार मेरा अपना अनुभव है मेरी साईकलके खराब पहिए को ठीक कर देनेके बाद गाँवके लुहारने पैसे लेनेसे इनकार कर दिया। इंग्लैंडमें मुझे कभी ऐसा अनुभव नहीं हुआ।

चलते-चलते मैं यह भी कह दूँ कि ब्रिटेनमें लाटरियों पर लगाया हुआ प्रतिबन्ध गलत है। लोग सोचते थे कि अगर 'इनामकी लाटरियाँ' बंद न की गई तो अंग्रेज नौकरी-चाकरी छोड़कर घर बैठेगा और इनाम आनेकी प्रतीक्षा करता रहेगा। यह नैतिक रुख है कि बिना कुछ काम किए किसीको कुछ नहीं मिलना चाहिए, क्योंकि यह चरित्रके लिए हानिकारक है। दुर्भाग्यसे हम यही मापदण्ड दूसरी वस्तुओं पर भी लागू नहीं करते उदाहरणके लिए उस पुत्रको लीजिए जो लंदनके मध्यमें स्थित मूल्यवान जमीन विरासतमें पाता है, और जिसको पानेके लिए उसने कभी कोई प्रयत्न नहीं किया। जब मैं जर्मनी और ऑस्ट्रियामें रहता था मैं अक्सर स्टेट लॉटरीके टिकट खरीदता था। (एक बार मैं लगभग दस हजार मार्क जीता भी था, किन्तु जब तक मैं उन्हें लेनेके लिए बर्लिन पहुँचा, तब तक उनका मूल्य धेलेके बराबर भी नहीं रह गया

था।)किन्तु उससे न मेरा किसी प्रकारका पतन ही हुआ और न मैंने अपने काममें ही ढील की। लॉटरी लोगोंको आनन्दपूर्ण कल्पनाजाल बुननेमें छूट दे देती है 'आयरिश स्वीप' के टिकट पर इनाम जीतनेकी आशासे मैंने कल्पनामें एक सुन्दर स्कूल खड़ा कर दिया आनन्ददायक कल्पनाएँ कभी किसीको हानि नहीं पहुँचाती। हममेंसे प्रत्येक जीवनभर शिशु बना रहता है कोइ पूर्णत कभी बड़ा नहीं होता। नीतिवान नियम प्रणेताओंको हममें बसे शिशु की न उपेक्षा करनी चाहिए और न उसका दमन ही करना चाहिए। बचपन में हममें से किसीको पूर्ण रूपसे रचनात्मक नहीं होने दिया गया। अत हम सबमें सिंड्रेलाके समान, अधिकार-कल्पना (Possessive phantasy) होती ही हैं। मुझे आश्चर्य है कि हमारे नीतिवानोंने उन मौढ़ोंके 'प्रौढ़-शिशुत्व' के लिए दंडकी कोइ व्यवस्था नहीं की, जो क्रिसमसके समय सरपर कागजका टोप लगाकर घूमते हैं या झूलोंमें झूलते हैं। किन्तु जो लोग घुड़दौड़ या वैसे ही और जुए (Sweeps takes) को क़ानूनी क़रार देनेकी माँग यह कहकर करते हैं कि उससे अस्पतालों (या अन्य जनहितकी चीजें अनु०) की हालत सुधर सकती है, वे आत्म प्रताड़णा याने वंचनाकी भावनामें फँसे हुए हैं। उन्हें साफ-साफ बात कह देना चाहिए कि हमें जुआ पसन्द है; क्योंकि हम संपत्तिके दिवास्वप्न देखना चाहते हैं। हमारी लॉटरियोंमें 'परीक्षा प्रथि' भी घुस आती है। मैं स्वय चतुराईके खेलके रूपमें एक 'पहेली' बनाकर प्रतियोगिता में भाग लेनेवालों को कुछ प्रसिद्ध नगरोंके नाम बतानेके लिए आमन्त्रित कर सकता हूँ, जैसे ल—न—रि—म्लि—क। चतुराइके नामसे नीतिवादियोंकी आत्मा शांत हो जाती है। वह वास्तविक स्वार्थ इनाम (धनजीतने) के ऊपर—परदा डाल देती है। नीतिवादी सत्य कभी नहीं स्वीकार करते, वे अचेतन-रूपसे प्रत्येक वस्तुको तोड़-मरोड़कर देखते हैं और पाखंडी होते हैं।

मैं कहना चाहता हूँ कि ऐसे खेलोंसे जिनमें वास्तवमें चतुराईकी आवश्यकता हो, मेरा तनिक भी विरोध नहीं है। जब मैं विद्यार्थी था, तो बैठे ही बैठ मैंने एक दिन एक समाचार-पत्रमें छपी पहेलीको सुलझाया और ४० पौंड जीत लिए। यह धन—उन गरीबीके दिनोंमें मेरे लिए संपत्ति ही थी—कि जिसके कारण मेरा किसी भी प्रकारका पतन नहीं हुआ उलटे

उसके कारण मैंने सालभर तक युनिवर्सिटीका खर्च चलाया और अपना पहला ओवरकोट खरीदा मैंने उसे आठ वर्ष तक पहना।

अगर अभिभावक अपने कल्पना जीवनको समझलें और उसकी कद्र करें तो व अपने बच्चोंके साथ अधिक सहानुभूतिसे व्यवहार कर सकेंगे। विशेषकर बच्चोंकी झूठ बोलनेकी आदतको सुधारनेमें यह चीज बहुत सहायता करेगी। जिन अभिभावकोंके बच्चे उनसे डरते हैं, व अभिभावक अयोग्य और क्रूर होते हैं, फिर भी घरमेंसे यदि डर हटा भी दिया जाय तो कल्पना-जनित झूठ तो नहीं ही जायगा। सच पूछा जाय तो कल्पना जनित झूठ उस प्रकारकी झूठ नहीं है, जिसप्रकार उपन्यास या फिल्मकी कहानियाँ। प्रौढ़ लोग कल्पना झूठ गढ़ते हैं, किन्तु किसीसे कहते नहीं बच्चे चारों ओर कहते फिरते हैं। नन्हा गॉरडन कभी कभी मुझसे आकर कहता है कि उसकी चचीने उसके लिए एक पेटी भेजी है, उसे एक पेटीकी इच्छा थी और उसको उसने दिवास्वप्न द्वारा पूर्ण (सत्य) करनेका प्रयत्न किया। अगर मैं उससे कठोर होकर कहता—'नालायक, तुम झूठ बोल रहे हो।' तो मुझसे बढ़कर भयंकर अधम और कोई न होता। ऐसे उदाहरणोंमें मैं दूसरा ही मार्ग पकड़ता हूँ।

'पेटी'—मैं प्रसन्न होते हुए कहता हूँ—'बड़ी है न ?'

'बड़ी भूरे रंगकी।' वह कहता है और हाथ फैलाकर उसकी लम्बाई-चौड़ाई दिखाता है।

'उसमें क्या है ?'

'बहुतसी चॉकलेट, मिठाइयाँ और एक बड़ा एंजिन।'

'मुझे मिठाई दो' मैं कहता हूं और वह मुझे एक काल्पनिक मिठाई देता है। मैं उसे चबाते-चबाते कहता हूँ—'हूं! बहुत अच्छी है।' गॉरडन जोर से हँस पड़ता है और चिल्ला पड़ता है 'गधा कहींका! नील, मिठाइयाँ तो हैं ही नहीं।'

किन्तु मिठाइयाँ हैं। अगर अनसुने स्वर मधुर हो सकते हैं, तो कल्पना की मिठाइयाँ तो कहीं अधिक मीठी होती हैं। मैं आयरिश स्वीप जीतना चाहता हूँ और गॉरडन स्वादिष्ट मिठाइयाँ जीतता है सचमुच, हममें कोई

बहुत अंतर तो नहीं है। केवल वे अभागे लोग जो बड़े हो गये हैं, गॉरटके मिठाइयोंके विषयमें और मेरे छप्पड़ फाड़कर आनेवाली संरतिके विषयमें कल्पना-जनित झूठ पसन्द नहीं करते। तो अब हम नीतिवादीकी व्याख्या कर सकते हैं 'नीतिवादी वह है जो 'बड़ा होकर खेलना' भूल गया है। (जो बच्चोंके खेलके मनोविज्ञान और उसमें की रचनात्मक शक्तिको नहीं समझते—अनु०)

संसारमें सबसे निकृष्ट माता वह है जो बराबर अपने बच्चेसे पूछती रहती है, 'क्या तुम अपनी माँसे प्यार करते हो ?' ऐसी माता उस मादा-खरगोशसे किसी क़दर कम नहीं होती, जो अपने बच्चोंका भक्षण करती है। संसारमें सबसे निकृष्ट पिता वह होता है जो सदा अपने बच्चोंसे कृतज्ञताकी चाहना करता है। ये ऐसी माँगें हैं, जिन्हें कोई बच्चा पूरी नहीं कर सकता। कोई भी बच्चा प्यार नहीं करता, वह सिर्फ प्यार चाहता है। कोई बच्चा कृतज्ञ होता, क्योंकि उसका ध्यान प्राप्त की हुई वस्तुमें होता है, उसे देनेवालेमें नहीं। मेरा विचार है कि 'कृतज्ञता'-शब्द कोषसे हटा देना चाहिये। अगर मुझे कोई धनी पुरुष रोल्स रॉयस मोटर दे, तो मैं वादा करता हूँ कि मैं उससे पूरा आनन्द उठाऊँगा, किन्तु कृतज्ञ होनेका वादा नहीं कर सकता। तीन वर्ष तक बड़ी मेहनत करके एक बच्चेकी मैंने चोरीकी आदत छुड़ाई, और जब मैंने उसे एक भला नागरिक बना कर उसके घर भेजा तो उसकी माँकी मेरे पास चिट्ठी आई—लड़केका एक मोजा क्यों खो गया ? चौदह वर्षका एक बिगड़ा हुआ लड़का मेरे पास साल भरसे ऊपर रहा। उसकी तोड़ फोड़ करनेकी आदत थी और कई पौण्डका उसने नुकसान कर दिया। उसके अभिभावकोंने ग़रीबीका बहाना करके फ़ीसमें कमी करवा ली बादमें उन्होंने कई क़ीमती रेडियो और एक बहुत मजबूत और बड़ी मोटर ख़रीदी। इस लड़कने एक ख़राद तोड़ डाली। मैंने आंशिक मूल्य वसूल करना चाहा, किन्तु उसके अभिभावकोंने देनेसे इनकार कर दिया।

एक और लड़का, जिसकी चोरी करनेकी बहुत बुरी आदत थी, मेरे पास तीन वर्ष तक रहा। मैंने जब उसे सुधार कर घर भेज दिया, तो उसके अभिभावकोंने मेरे बिलों पर कोई ध्यान ही नहीं दिया।

मत हो सकता है कि कृतज्ञताके प्रति मेरा दृष्टिकोण दुराग्रहपूर्ण हो।

अभिभावकों और सम्बन्धियोंके भेंटकी स्वीकृति न पाने पर प्राप्त आप मेरे पत्र मेरे दृष्टिकोणको दृढ़ ही करते हैं। अपने सम्बन्धीसे भेंट पाने पर शायद ही कोई बच्चा धन्यवाद देता हो! हाल ही में एक दादीने एक भारी अच्छा झगड़ा खड़ा कर दिया, क्योंकि उसके चौदहवर्षीय पौत्रने उसके जन्म-दिन पर दी गई उसकी २ पौंडकी भेंटके लिए धन्यवाद नहीं दिया। 'अगले जन्म दिवस पर वह तुम्हें कुछ भी न देगी।'—मैंने उससे कहा। उसने उत्तर दिया—मैं जानता हूँ, किन्तु उसको धन्यवाद देनेके लिए पत्र लिखने से मुझे घृणा है। उसकी ईमानदारीके कारण उसे दो पौण्डका नुक़सान उठाना पड़ेगा।

प्रौढ़ चाहते हैं कि उनके बच्चे उनके प्रति बाह्य हाव-भावसे प्रेम दिखाएँ, ताकि और लोग भी देख सकें। मैं अपनी एक पिछली किताबमें बता चुका हूँ कि ऐसे बोर्डिंग स्कूल जहाँ कड़ा नियन्त्रण होता है, अभिभावकों द्वारा इसलिए अधिक पसन्द किए जाते हैं कि दुखी बच्चे छुट्टियोंमें घर बड़ी प्रसन्नता और उत्सुकतासे आते हैं और इसी प्रसन्नता और उत्सुकताको वे घर और अपने प्रति प्यार मान लेते हैं। कम सम्पन्न घरानोंमें प्रेमके प्रमाणकी इच्छा बहुत पाई जाती है 'दादीको चूमो, 'चाचीसे कहो, आप अच्छी तो हैं?' प्रौढ़ तब तक प्रसन्न (सुखी) नहीं होते, जब तक बच्चे उनके व्यवहारका उत्तर न दें। वे बच्चोंसे ऐसी भावनाकी माँग करते हैं, जो उनमें होती ही नहीं। यह शुद्ध स्वार्थ है, और इसका परिणाम यह होता है कि बच्चे बचपन ही से पाखण्डी बन जाते हैं।

आज सुबह मेरे पास एक माताने पत्र लिख कर यह शिकायत की है कि उसके लड़केने सप्ताह भरसे उसे कुछ नहीं लिखा है। उसने लिखा—'मैं चाहती हूँ कि आप सप्ताहमें एक ऐसा दिन निश्चित कर दें कि जिस दिन वह पत्र अवश्य लिखे। आज रातको मैंने उत्तर दिया—'किन्तु क्यों? क्या आप समझती हैं कि आप ऐसे पत्रकी क़द्र करेंगी, जो अन्तः प्रेरित नहीं है? वह आवश्यक रूपसे असत्योंसे भरा हुआ होगा। सबसे अच्छा रास्ता यही है कि आप सब्रसे उस समयकी प्रतीक्षा करें, जब कि आपका लड़का स्वेच्छा से आपको पत्र लिखेगा।'

मैं तो अपने बच्चोंको ... कि—"भगवान्के लिए बच्चोंको 'भद्रता

जीवन' जीने दो। यह शक्तिसे भरा आत्म हितलक्षी प्राणी है। अपने ही कार्यमें यह इतना रत है कि माँ और बापको प्रसन्न करनेके लिए पाखण्डपूर्ण आचरण करनेका उसके पास समय नहीं है।"

एक प्रकारकी माता होती है, जो चिल्लाती है—'बन्द करो यह शोरो गुल! मेरे सरमें दर्द है।' अक्सर उसे सर दर्द नहीं होता है। ऐसी माँ खतरनाक होती है, क्योंकि यह चोरी और बेइमानीके मार्गसे 'अपने व्यक्तित्वको बच्चे पर लाद कर' उसकी रचनात्मक क्रियाओंका निरोध कर देती है। ऐसी औरत स्वार्थी होती है और बच्चेकी प्रत्येक ऐसी रुचिके प्रति वह ईर्ष्या भाव रखती है जो उसे उससे दूर ले जाय। वह सम्पूर्ण आकर्षण का केन्द्र स्वय होना चाहती है, और जो कोई आकर्षणका केन्द्र बनना चाहता है, उसके विकासमें अवश्य कमी होती है, उच्च स्वार्थपरता, जिसे परहित-साधना कहते हैं जैसी कोई वस्तु वे नहीं जानते। मेरे सरमें दर्द है' का अर्थ होता है—'मेरे लिए यह कर दो।' अर्थात् माता अपने व्यक्तित्व को बच्चेकी क्रियाओंका भाग बना देना चाहती है। इसका अर्थ होता है—'अगर तुम मुझे प्यार करते हो, तो यह शोरगुल बन्द कर दो।' अगर वह सचमुच अपने बच्चेसे प्यार करती होती तो अपने व्यक्तित्वको कभी आगे न लाती।

दाम्पत्य-जीवनकी अधिकतर कठिनाइयोंका कारण यह है कि विवाहमें हम अपनी प्रेमिकासे अपने प्रेमका उत्तर (प्रतिक्रिया) चाहते हैं। चूँकि लैंगिक प्रेम जाति-रक्षणके लिए प्रकृतिका एक खेल है, अत लिंगीपणाके क्षेत्रमें तो उत्तर सहज ही मिल जाता है, किन्तु, जैसे जैसे दिन बीतते जाते हैं और प्रेम जो प्रारम्भमें लैंगिक था, मैत्रीमें बदलता चलता है, वैसे-वैसे पति (या पत्नी) से उत्तर (प्रति प्राप्ति या दान) की माँग क्लेशपूर्ण और असह्य हो जाती है, बहुत कम लोग ऐसे हैं जो दूसरोंसे उत्तरकी आशा करने पर अपनेको एक पाते हों। समाज निरन्तर प्रतिक्रिया पर जीता है और एकान्त प्रिय आदमी समाजका शत्रु होता है। किसी भी छोटे नगरमें नए आदमीको स्थानीय लोग परेशान कर देते हैं—चर्चके भजन गानेवालोंके समूहमें, इसमें —उसमें— उससे भाग लेनेके लिए कहते हैं। इसका आंशिक उद्देश्य उत्सुकता होता है (लोग यह जानना चाहते हैं कि वह कौन है, क्या है, कहाँका है, पैसेवाला

है या गरीब आदि आदि—अनु०) किन्तु मूल उद्देश्य तो उसकी 'प्रतिक्रिया (उत्तर)' प्राप्त करना होता है । अधिकतर बोर्डिंग-स्कूलोंमें विद्यार्थियोंके लिए सम्पूर्ण दिनका कार्यक्रम बना दिया जाता है, किन्तु उसका वास्तविक उद्देश्य तो स्पष्ट है—खाली बैठनेवालोंमें 'शैतान' घर कर जाता है। ऐसे स्कूलोंसे निकलनेवाले लोग आगेके जीवनमें पिछली जबरदस्ती लादी गई आदतोंको तोड़नेमें असफल रहते हैं, वे 'अपना जीवन' कभी नहीं जी पाते उन्हें दूसरोंकी प्रतिक्रियाओंमें अपने जीवन-रसकी खोज करनी ही पड़ती है।

जीवनमें सबसे कठिन काम है लोगोंको अकेले छोड़ देना, या उन्हें उनका काम करते-रहने देना है । दूसरे लोगों पर 'अधिकार', अहं को विजयी बनाने की शैशवकालीन इच्छा को संतुष्ट करता है । बच्चे को अधिकारका प्रयोग करना अच्छा लगता है वह चिल्लाता है "चुप रहो ! उसे नीचे रख दो !" किन्तु उसकी आज्ञा का पालन नहीं किया जाता । पर जब कोई पिता चिल्लाता है-'बन्द करो यह झगड़ा ।' तो उसकी बालकीय इच्छाकी आज्ञा मान ली जाती है । बच्चेकी महत्वाकांक्षा अधिकार प्राप्त करनेकी होती है—इंजन चलाना या मशीनगन चलानेके लिए वायुयान चलाना। आदमी की गुप्त आकांक्षा अक्सर ऑरकेस्ट्रा, पलटन, कवायद या किसी सभाका संचालन करनेकी इच्छामें प्रकट होती है। एडलर 'हृदिय न्यूरोस' को 'अधिकार-ग्रंथि का (अति निष्करण क रूपमें) कारण मानता है, किन्तु अधिकार ग्रंथि तो विश्व-भरमें गहरी पैठी हुई है । अमरत्वमें विश्वासका कारण अहंकी सर्वशक्तिमत्ता में विश्वास है .. कि मैं इतना महत्वपूर्ण हूँ कि मैं कभी नहीं मर सकता, मैं इससे भी अच्छे संसारमें जीवन व्यतीत करूँगा ।'

अभिभावकों द्वारा अपने बच्चोंसे प्रेम और रुचिके प्रमाणकी माँग करनेका मुख्य कारण अधिकार भावना होती है, "मेरे बच्चेको, जीवनमें मेरा प्राधान्य होना चाहिए। मेरे सिवा उसका और कोई ईश्वर' नहीं हो सकता ।' 'टामी, क्या तुम मुझे प्यार करते हो?' इस वाक्यका अर्थ होता है, देखते नहीं, मुझसे बढ़कर और किससे प्यार किया जा सकता है?' किन्तु इस प्रश्नमें एक शंका भी छिपी हुई होती है । क्योंकि अचेतन-मनमें माँ

अपने पुत्रके प्रति अपने प्रेममें स्वय शका करती है। "प्रेम असलमें 'मँगनी' नहीं 'देन' है।"

अभिभावकोंके लिए यह समझना सरल नहीं है कि 'बच्चों को पाने' के लिए कुछ 'खोना' आवश्यक है। मैंने श्रीमती ब्राउन को अफ़सोस करते हुए सुना है कि, 'मैंने अपने कुटुम्बके लिए सब कुछ अर्पण कर दिया, किन्तु वे कृतज्ञता तक नहीं प्रकट करते, और श्रीमती स्मिथ को जिन्होंने अपने कुटुम्ब की उपेक्षा की, उनके घरवाले उन्हें पूजते हैं।' 'बात सच थी। उस अति प्यार करने वाली माताने सचमुच अपना सब कुछ कुटुम्ब को अर्पित कर दिया था व्यक्तिगत सुख तक का त्याग कर दिया था। किन्तु साथ ही उसने अपने कुटुम्बियोंसे स्नेह और कृतज्ञताकी माँग करके किये-कराए पर पानी फेर दिया, जबकि श्रीमती स्मिथ की कुटुम्बके प्रतिउपेक्षा वास्तवमें उपेक्षा नहीं थी, अपने बच्चों को 'अपना जीवन' जीने देनेकी यह उसकी प्रणाली थी। बादमें जाकर यदि उसके बच्चे उसे पूजने लगे तो उसका कारण यही था कि, प्रेम और भावनात्मक प्रतिक्रियाकी माँग किए बिना, यह सबके लिए एक-सी बनी रही। श्रीमती ब्राउनके कुटुम्ब में किसी को भी 'अपना जीवन' जीने का अवसर नहीं मिला, बच्चोंको एक साथ कई व्यक्तियोंका, माताका भी—भार उठाने पर मजबूर किया गया। अपने विकासमें बाधा पहुँचाने पर जैसी घृणा मनुष्यके मनमें उठती है, वैसी ही घृणा माताकी अति चिन्ताने उन बच्चोंके मनमें पैदा कर दी। शा ने लिखा है— यह निश्चय है कि जिसके लिए हम त्याग करते हैं, उसीसे आगे चलकर घृणा करने लग जाते हैं।' यह सच है, और इसका उपसिद्धांत (Corollary) भी ठीक है कि 'जिनके लिए' हम त्याग करते हैं, वे ही 'आगे चलकर' हमसे 'घृणा करने लगते हैं।'

'पिता-पुत्र ग्रंथि' की अपेक्षा 'मातृ पुत्र ग्रंथि' अधिक पाई जाती है। पिता अपने पुत्रसे अत्यन्त प्रेम करता है, और साथ ही उसे आदशान्वित भी करता है। ऐसे पिताका अक्सर विश्वास होता है कि लोग उसके पुत्रके विरुद्ध षड्यन्त्र करते हैं। ऐसे ही एक पिताका एक चौदहवर्षीय पुत्र मेरे पास था। यह लड़का घृणासे भरा हुआ, समाज-विरोधी और विनाशक मनोवृत्तिका था। जब मैंने उसके पितासे यह बात कही—तोड़ फोड़से हुए नुकसानके लिए पैसा

वसूल करनेके लिए कहना ही पड़ा—तो वह आश्चर्य करने लगा और खड़ा हो गया। बहुत दिनों तक वह यही सोचता रहा कि दूसरे लड़के उसे बदनाम करते हैं, किन्तु अंतमें जब सचाइ का प्रमाण मिल गया तो वह स्कूल ही को गाली देने लगा कि उसीने उसे बदमाश बना दिया है।

जो पिता अपने बच्चे को बिगाड़ता है, वह वास्तवमें उसके साथ अपने को एक कर लेता है जैसे 'मैं जो कुछ प्राप्त करनेमें असफल रहा, उसे मेरे पुत्र को प्राप्त करना चाहिए और जब पुत्र असफल हो जाता है तो वह भी असफलता की ओरसे आँखें बन्द कर लेता है, और फिर भी वह वही देखता है कि वह जो पानेका प्रयास करता याने देखना चाहता है—यानी कि उसका आदर्श।

माता के लाड़लेकी अपेक्षा पिता द्वारा बिगाड़े हुए लड़केके सुधरनेकी संभावनाएँ अधिक होती हैं। वह जीवनमें अपना मार्ग बना सकता है, स्वतंत्रता प्राप्त कर सकता है। वह पुं-जातीयताके साथ एकात्म स्थापित करता है, जबकि दूसरा स्त्रैण रह जाता है। इसके अलावा, पिताके साथ प्राकृतिक संबंध माताके समान दृढ़ नहीं होते। बिलौटे और पिल्ले अपने पिता को जानते तक नहीं; लेकिन बच्चोंके प्रारंभिक जीवनमें संरक्षक और प्राण-दायिनीकी हैसियतसे माता ही महत्वपूर्ण होती है। प्रतीकरूपमें भी पिता-मातासे दूर होता है—हम धरती को माता कहते हैं, किन्तु सूर्यको पिता (देवता) कहते हैं। ईश्वर स्वर्गमें है। जीवन और मृत्युके प्रतीक मातृ प्रतीक हैं समुद्र माता है, रातको जब हम बिस्तरमें सोते हैं तो मातामें पुन प्रवेश करते हैं (हममें से कई इस प्रकार सिकुड़ जाते हैं जैसे जन्म से पहले सिकुड़े रहते हैं।) प्रत्येक प्रात काल पुन जीवन है (जन्म पाकर माँ का ही संरक्षण पाते हैं—प्रका०) प्रत्येक संध्या मृत्यु। मृत्यु गर्भमें पुन प्रवेशकी प्रतीक है, और आत्महत्या माँ के पास लौटनेकी आकांक्षाका अंतिम रूप है। पितृ प्रतीक न केवल मातृ प्रतीकसे कम निकट है, वरन भयोत्पादक भी है राजा, साँड, घोड़ा, दैत्य, सिपाही, (इनमें अधिकार सम्पत्ति-ग्रन्थि का भाव है।—प्रका०) पुत्र स्वयं पितृ प्रतीक बनकर पिता पर विजय पा लेता है, किन्तु माता पर कभी पूर्ण विजय नहीं प्राप्त किया सकता। घरमें चाहे पिता की ही बात चलती हो, किन्तु अंतिम अधिकार माता का ही होता

है। हामर लेन कहा करता था कि ईश्वर स्त्री है। (क्योंकि आस्तिक लोग ईश्वरकी सत्ताको अंतिम मानते हैं—प्रका०) सभी आदमी अपनी पत्नियों और पुत्रियोंसे कुछ न कुछ या अधिक डरते ही हैं, (हिन्दुस्तानमें तभी वे स्त्रियोंको परदेमें रखना चाहते हैं या पुत्रियोंकी जल्दी शादी करदेना चाहते हैं—प्रका०) और बहुत कम दम्पति ऐसे हैं, जिनमें पत्नीका हाथ ऊपर न रहता हो।

विश्लेषण द्वारा कभी-कभी यह पाया गया है कि रोगी—प्रतीकोंको परिवर्तित कर देता है, रोगी—पिता को निर्बल और माँ को सर्वशक्तिमान मानने लगता है। ऐसे कुटुम्बके वातावरणमें बच्चोंमें 'समलिंगकामुक्ता' का जन्म हो सकता है, पुत्र अज्ञात रूपसे माँ को चाहता है (यहाँ माँ पितृ प्रतीक है), पुत्री अज्ञातरूपसे पिताको चाहती है (यहाँ पिता मातृ प्रतीक है)।

स्त्रीका अधिकतर आकर्षण 'लोगों' में और पुरुषका 'वस्तुओं' में होता है। मेरे नन्हे विद्यार्थियों (लड़कों) को लोगोंमें कोई रुचि नहीं होती। उनकी रुचि केवल वस्तुओंमें होती है—नौकाएँ, साइकलें, औजार, किन्तु नन्हीं लड़कियाँ सदा प्रौढ़ोंके साथ अपना लगाव रखती हैं और उनसे निरंतर प्रतिक्रिया (उत्तर) चाहती हैं। हमारे सामाजिक विषयोंके साप्ताहिक जिनमें धनवानों का (कभी कभी महान् लोगोंका भी) चर्चा रहता है, स्त्री ग्राहकोंके बल पर ही चलते हैं। खूनके मुकदमेमें श्रोतागणोंमें अधिकांश स्त्रियाँ होती हैं मैं स्वयं कभी खूनके मुकदमेकी कार्यवाही देखने नहीं गया हूँ अतः मेरी बात का आधार समाचार-पत्र है। जब नए पड़ोसी गाड़ी परसे अपना असबाब उतारते होते हैं तो स्त्रियाँ ही खिड़कीके परदेके पीछे खड़ी होकर झाँकती रहती हैं, इसलिए नहीं कि उन्हें असबाबमें कोई स्वार्थ होता है, बल्कि उनकी इच्छा नवागन्तुकों को 'आँकने' की होती है।

साइकिल या खराद को यदि कोई आदमी संभाल कर रखे तो लाभ होना है, किन्तु बच्चे पर अधिकार रखनेसे तो बच्चेकी हानि ही हो सकती है, क्योंकि यह खरादके समान एक ऐसी निष्प्राण वस्तु बन जाता है, जिसकी उपयोगिता मालिक की हुशियारी पर निर्भर करती है। 'बच्चेका कोई स्वामी नहीं होना चाहिए। बच्चा प्रौढ़ोंके बजानेका कोई वाद्य-यन्त्र नहीं है।'

५

मेरे स्कूलमें धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाती और मेरे विद्यार्थियोंके अभिभावकोंको भी धर्ममें कोई विशेष रुचि नहीं है, धार्मिक अभिभावक अनैतिक (non-moral) कार्यक्रममें भाई रुचि नहीं लेते, अत आजकल अत्यन्त धार्मिक अभिभावकोंसे मेरा बहुत वास्ता नहीं पड़ता। सबसे अधिक परेशानी तो मुझे पितामहों और चाचा चाचियोंके कारण उठानी पड़ती है, क्योंकि वे छुट्टियोंके दिनोंमें बच्चोंपर 'अपना धर्म लादनेकी चेष्टा किये बिना नहीं मानते। छुट्टियोंके बाद लौटकर आए हुए विद्यार्थियोंमेंसे कमसे कम दो तो ऐसे होते ही हैं, जिनके मनमें दादी 'भय' और 'शंका' भर देती है। किसी किसीको उसकी दादी ईश्वरसे डरते रहनेकी हिदायत लिख भेजती है। मैं विद्यार्थियोंकी चिट्ठियाँ नहीं पढ़ता, किन्तु जब सन्ध्याको कोई लड़का पक्षियों पर पत्थर फेंकता है तो मैं समझ जाता हूँ कि सुबह उसे ऐसा ही कोई पत्र अवश्य मिला होगा। साहसी लड़केमें धर्म बड़ी भयकर प्रतिक्रिया उत्पन्न कर देता है। प्रत्येक बच्चेके लिए ईश्वरका अर्थ 'पिता' होता है। उसका धर्ममें विश्वास या अविश्वास उसके 'भौतिक पिताके प्रति रुखपर' निर्भर करता है। आदमियोंको हम दो श्रेणियोंमें बाँट सकते हैं जो पितामें विश्वास करते हैं, और जो उसमें अविश्वास करते हैं। पहिली श्रेणीके लोग पिताका अनुसरण करते हैं और बुजुर्गोंकी परम्पराको मानते हुए जीवन और राजनीतिमें अनुदार (परिवर्तन विरोधी) हो जाते हैं। वे जीवनपर्यंत प्रगति विरोधी बने रहते हैं। दूसरी श्रेणीके लोग विद्रोही बनकर वाममार्गियोंके साथ मिल जाते हैं। युवक-विद्रोहीके आदर्श अक्सर बदलते रहते हैं और वृद्धावस्थामें आकर वह प्रगति-विरोधी या परिवर्तन-विरोधी बन जाता है, उदाहरणार्थ मुसोलिनी तथा हमारे कुछ सफल मजदूर-राजनीतिज्ञ प्रगति-विरोधी

लाग सहज ही ऐसे धर्ममें विश्वास कर लेते हैं, जो कहता है कि ईश्वर कठोर है और उससे डरना चाहिए और विद्रोही लोग नास्तिक या एगनॉस्टिक× हो जाते हैं। किन्तु सक्रिय नास्तिक सदा अचेतन-रूपसे ईश्वरमें विश्वास करता है।

धार्मिक शिक्षाका मुख्य प्रभाव यह होता है कि वह बच्चेकी काम भावनाको दबा देती है, पाप और काम भावना पर्यायवाची शब्द हो जाते हैं। हस्त-मैथुनके विषयमें 'द्वंद' और आत्म व्यथा सबसे अधिक उन बच्चों में पाई जाती है, जिनके घरका वातावरण 'पवित्र (धार्मिक)' होता है। ऐसा होना ही चाहिए क्योंकि ईसाई मत 'जन्मजात पाप' के सिद्धान्तमें विश्वास करता है और यह तो सर्वविदित है कि ईसाई मतके अनुसार पहला 'जन्मजात-पाप—वर्जित फल— याने-(सम्भोग) को चखना था।' अच्छा बननेके लिए जीवनमें काम-वृत्तिका खात्मा करना पड़ेगा ! कई ऐसे ऐतिहासिक उदाहरण मौजूद हैं, जब संतोंने अनिष्टकारक प्रलोभनोंसे बचनेके लिए अण्डकोपच्छेदन करवा लिया (देखिए, यूँगकी लिखी हुई किताब—'कैरेक्टर टाइप्स्)।

जब बच्चे अपने अभिभावकोंका धर्म स्वीकार कर लेते हैं तो उनमें द्वंद दब जाता है और ऊपरसे नहीं दिखाई पड़ता। लड़का निरोधित संन्यासी बन जाता है और लड़कीकी मनोदशा तपस्विनीकी-सी हो जाती है। कठिनाई यह है कि धर्मको पूर्ण रूपसे बहुत कम लोग स्वीकार करते हैं। बच्चे एक ही साथ स्वीकार भी करते हैं और अस्वीकार भी करते हैं इसलिए उनमें 'द्वंद' पैदा हो जाता है, अर्थात् उनकी मानसिक दशा विकृत हो जाती है और वे दुखी हो जाते हैं।

मेरे पास ऐसे अभिभावकोंका एक पन्द्रहवर्षीय पुत्र है, जिन्हें पुनरोद्धार और दैवी घटनाओंमें बड़ा विश्वास है। उन्होंने अपने पुत्रको भी अपने मत का बनाना चाहा। लड़केकी मनस्थिति विकृत हो गई। वह अपनी शान्ति खो बैठा, चित्तकी एकाग्रता गँवा बैठा और बार बार ऐसे प्रश्न पूछने लगा—

×वे जो कहते हैं कि ईश्वरमें हम अविश्वास तो नहीं करते किन्तु उसमें विश्वास करने योग्य पर्याप्त प्रमाण भी तो नहीं है।

'इजनके लिए क्या अच्छा है---पेट्रोल या बेन्जोल मिक्स्चर !' इसका अर्थ था —मैं किसमें विश्वास करूँ—'घरमें या स्कूलमें ?' हमारे स्कूलमें हम किसी का भी किसी विषयमें मत-परिवर्तन करनेकी चेष्टा नहीं करते। किन्तु लड़कने अनुभव किया कि घर और स्कूलमें काफी अन्तर है, स्कूलमें पाप और प्रायश्चितकी भावनाओंके लिए कोई स्थान है ही नहीं। बड़े विद्यार्थी समझ जाते हैं कि चोर (या अन्य अपराध वृत्तिके लड़कों) के साथ व्यवहार करनेके हमारे दृष्टिकोण---अपराध-वृत्तिके मूलभूत कारणोंको खोजकर बच्चेको उनके प्रति सजग करके (चेतना ला कर) उनमें सुधार करना। और धार्मिक दृष्टिकोण—कि चोरी करनेवाला पापी है---में जमीन आसमान का अन्तर है। पुराना धर्म नई सततिको संतुष्ट नहीं कर सकता। क्योंकि वह उस समयका है जब यह माना जाता था कि अच्छाई या बुराईको अंगीकार (Choose) करनेका जहाँ तक प्रश्न है, मनुष्यको इच्छा-स्वातन्त्र्य है। अज्ञात-मन की खोजने अब तककी धर्म-विषयक धारणाको निराधार प्रमाणित कर दिया है। जब तक कोई बात मनुष्यके चेतन-मन तक ही सीमित रहती है और उसके अज्ञात मनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, तब तक ऐसे किसीकी अवस्थामें परिवर्तन (सुधार) हो सकता है ? धर्मके ठेकेदार अब भी डारविनको अपने लिए खतरा समझते हैं उन्हें यह मालूम ही नहीं है कि उनके लिए वास्तविक खतरा तो फ्रायड है।

साधारणतया धार्मिक अभिभावक दो प्रकारके होते हैं एक तो वे जो आरम्भ ही से 'पाप' के कारण संकुचित होते हैं और दूसरे वे जो जीवनमें आगे चलकर धार्मिक हो जाते हैं। दूसरे प्रकारके लोगोंमें लगभग सदा एसी औरतें होती हैं, जिनका दाम्पत्य जीवन दुखी होता है। मानव प्रेमकी भूखी वे पिताके दैवी प्रेमकी कामना करती हैं और इससे पता लगता है कि उनके दाम्पत्य जीवनकी असफलताका कारण भौतिक पितापर उनका अज्ञात निर्भरता होता है। कभी-कभी वे स्त्रियोंके अधिकार आन्दोलनमें रुचि लेनेके ठीक बादमें धार्मिक हो जाती हैं। युद्ध (१९१४-१८) के प्रारम्भिक दिनोंके स्त्री-स्वाधिकार आन्दोलनके प्रति ऐसी कई स्त्रियाँ आकर्षित हुई थीं, जिनका अपने पतिके साथ मनोवैज्ञानिक युद्ध छिड़ा हुआ था। उनकी 'वोट' की माँग

(समानताका प्रतीक) आत्मगत (Subjective) और घरलू (Domestic) भी थी, उन्होंने पिताके अधिकारको ललकारा, क्योंकि अज्ञात-रूप से वे पिताके हाथों सम्पूर्ण आत्म समर्पण करना चाहती थीं। इसी कारण आगे चलकर उनके द्वारा स्वर्गीय पिताकी पूजा करना अस्वाभाविक नहीं था। श्रद्धा-परिवर्तन करनेवाले ये नए लोग ऐसे धर्ममें विश्वास नहीं करते जिसमें ईश्वर भयसे काम लेता है उनके नए धर्मके अनुसार ईश्वर ही प्रेम है और वह अपने भक्तोंको व्यक्तिगत रूपसे जानता है। व 'पुत्र-ईसा' से अधिक 'पिता-ईश्वर' की बात करते हैं। उनका अपने पथके नेताओंसे कुछ-कुछ वैसा ही सबंध होता है, जैसा एक रोगीका मनोविश्लेषकसे अर्थात् वह (Transference) सम्बन्ध होता है। नेता उसके लिए छोटा-मोटा पितृ प्रतिनिधि (Substitute)-हो जाता है। उनका धर्म कमसे कम उस हद तक तो सत्य होता है जिस हद तक वे प्रेम करना और प्रेम प्राप्त करना चाहते हैं। और जब वे प्रार्थना और सगत' से चमत्कारपूर्ण परिणामकी बात करते हैं तो कोई बेवकूफ ही उन्हें आत्म प्रतारणाका शिकार कहेगा, क्योंकि कोइ इतना ज्ञानी कभी नहीं होता कि किसीके अन्त करणके अनुभवोंको भी जान ले। अध्यात्मवादके प्रश्नपर मै इतना ही कह सकता हूँ कि मैं चकित हूँ विस्मित हूँ। धरती और आसमान पर कई ऐसी वस्तुएँ हैं, जिनकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता।

अत जब मैं धार्मिक माताओंकी भावनाओंका विश्लेषण करनेका प्रयत्न करता हूँ तो यह इसलिए कि इन भावनाओंमे बच्चोंके लिए खतरा है। अक्सर पितृ भावनाका सक्रमण बच्चोंपर कर दिया जाता है, जिसका उद्देश्य होता है, मुझे मुक्ति मिली है, अत मेरे बच्चोंको भी मुक्ति प्राप्ति होनी चाहिए उन्हें भी पिताकी पूजा करनी चाहिए।' मेरे स्कूलमें एक लड़की है जिसकी माता हाल ही मे थियोसोफिस्ट बन गइ थी। अब वह अपनी लड़कीको भी थियोसोफिस्ट बनानेका अथक प्रयत्न कर रही है। नतीजा यह हुआ है कि थियोसोफीके विषयमें लड़कीकी धारणा विकृत हो गई है। एक दूसरी माताने अपनी लड़कीको बैपटिस्ट बनाना चाहा था। परिणामत आज दोनों लड़कियाँ माता और धर्म दोनोंसे घृणा

करती है।

प्रश्न खड़ा होता है बच्चोंके लिए कौन अधिक खतरनाक है—पुराना धर्म या नये धर्म (थियोसोफी, क्रिश्चियन साइंस या ऑक्सफोर्ड ग्रुप आदि)? यहूदी और कैथोलिक घरानोंमें बच्चेको धर्म अपनी माँके दूधके साथ प्राप्त होता है, उसका अज्ञात-मन उसके धर्मका आधार अनुभव होता है, बुद्धि नहीं। उसके वातावरण पर कड़ा नियन्त्रण रखा जाता है, जिससे धर्म विरोधी भावनाओंके सम्पर्कमें वह अधिक नहीं आता। प्रोटेस्टेंट मतमें विश्वास करनेवालोंने चर्चमें 'बुद्धि (तर्क)' का प्रचार किया और काल्विन मतके देशोंमें धर्मोपदेशने लम्बे 'तर्कपूर्ण' प्रवचनका रूप ले लिया है। स्कॉटलैंडमें धर्मोपदेश आज एक बौद्धिक वस्तु माना जाता है। कैथोलिक मत यदि आज फल-फूल रहा है, या कमसे कम टला हुआ है, तो इसीलिए कि वह भावनाको सर्वश्रेष्ठ मानता है, प्रोटेस्टेंट मत अपने बुद्धि वादके कारण मिटता जा रहा है। मेरी धारणा है कि बच्चोंके लिए नए (स्वीकृत) धर्म अधिक खतरनाक हैं। एक रोमन कैथोलिक बच्चा द्रव्यान्तर (Transubstantiation) और निष्कलंक गर्भाधान (Immaculate conception) को बिना तर्कके मान लेगा, किन्तु प्रोटेस्टेंट बच्चा तो तर्कसे काम लेने पर मजबूर होता है। नए धर्म प्राचीन धर्मके समान हमारे मनकी गहराइयोंको नहीं छूते, वे सफल निरोपन-कर्ता नहीं हो सकते। एक तपस्विनी (Nun) भगवानको अपनी सम्पूर्ण आत्मा सौंपकर लैंगिक प्रश्नको भुला सकती है, किन्तु कोई स्त्री श्रीमती एडी या एनी बीसन्टको अपनी सम्पूर्ण आत्मा सौंप देगी, ऐसी कल्पना करना कठिन है। जो धर्म चेतन मन तक ही सीमित होता है, वह अस्थिर होता है। इंग्लैंडमें चर्चकी उपेक्षा और 'धर्म-कर' देनेके विरुद्ध आन्दोलनका यही कारण है और यह आन्दोलन पूर्णतः आर्थिक नहीं है।

प्राचीन धर्म—अधिकार और भयके बल पर, निरोपन करनेमें बहुत सफल रहे। उस समय द्वन्द्व-(मानसिक विकृति)के लिए बहुत कम अवसर आते थे। मैं बचपनसे कैथोलिकों और यहूदियोंको जानता हूँ, जो अपनी लैंगिकता बिना द्वन्द्वके त्याग कर देते हैं। वे काम और धर्मको विच्छेदन

(द्वित) कर उन्हें बिलकुल अलग रखते हैं। प्रोटेस्टेंटके लिए ऐसा करना सहज नहीं होता, उसका धर्म कामको दबानेमें कभी समर्थ नहीं होता। हाँ वह अच्छे और बुरेका द्वंद्व उत्पन्न करनेमें काफ़ी समर्थ होता है। एक रोमन कैथोलिक लड़का हस्तमैथुन करनेके पश्चात् उसे स्वीकार और प्रायश्चित करके पाप मुक्त हो सकता है; किन्तु प्रोटेस्टेंट लड़केके लिए तो उद्धार का कोई मार्ग ही नहीं होता। वह भगवान पर भी अपना भार नहीं फेंक सकता, क्योंकि उसका भगवान कल्पना और अनुभवसे परे, बुद्धिसे प्राप्त हुई वस्तु होती है। उसे कहीं सहारा नहीं मिल सकता, वह नहीं जानता कि वह पापी है। वह पापी है या नहीं, इसी पर वह आश्चर्य करता रहता है! पुराने 'ऐस मतन्करों'—धर्मकी सीमाएँ निश्चित थीं, किन्तु बुद्धिके इन नए धर्मोंके आचरणका कोई निश्चित मापदण्ड है ही नहीं।

बच्चोंके लिए खतरेकी वस्तु स्वय धर्म नहीं, वरन् उनके आधार पर खड़ी की गई नैतिक धारणाएँ होती हैं। सब धर्मोंमें आचार-विचारके अपने मापदण्ड होते हैं। मैंने देखा है कि कई अधार्मिक घरोंका वातावरण भी संकुचित साम्प्रदायिकतामें विश्वास रखनेवाले घरोंके समान ही खतरनाक होता है। कुछ घरोंमें धर्मका स्थान विज्ञान ले लेता है, किन्तु बच्चेके लिए परिणाम उतने ही बुरे होते हैं। मैं एक ऐसे डॉक्टरको जानता हूँ जो अपने पुत्रोंमें स्वास्थ्य-रक्षाकी बात करनेके बहाने नैतिकताका उपदेश देता है। 'हस्तमैथुनसे आदमी खराब हो जाता है, वेश्याएँ बुरी औरतें तो नहीं होतीं, किन्तु जननेन्द्रियसम्बन्धी रोगोंके कारण बहुत खतरनाक साबित होती है, सिगरेट पीनेसे विकास रुक जाता है, शराब पीना स्वास्थ्यके लिए हानिकारक है।' यह डॉक्टर काल्विन-मतवादी एक स्कॉच पादरीका पुत्र है और उसका कहना है कि वह दस वर्षकी उम्रसे एगनॉस्टिक (शब्दार्थ पृ० १३१) हो गया था। वास्तवमें उसने अपने माता पिता का धर्म स्वीकार करके उसे एक नया रूप दे दिया है। उसकी स्वास्थ्यरक्षाकी बात तो एक धोखेकी टट्टी है।

थियोसोफिस्ट या उन जैसे अन्य लोगोंकी विचार धारा अक्सर इस डॉक्टरकी विचार धारासे मिलती जुलती होती है। उनकी 'उच्च विचार' और 'उच्च जीवन' की धारणा नैतिक है और इसका आधार उन्की यह

अचेतन धारणा है कि विषय भोगका निम्न कोटिका जीवन पापपूर्ण है। और आजकल चूँकि धर्ममें निहित अनश्वरताकी धारणामें चारों ओर लोग शंका करने लगे हैं, धर्मका नैतिक पहलू महत्वपूर्ण हो गया है। मैं जब बच्चा था तो हमसे कहा जाता था कि अच्छी प्रकार मरना सीखो, किन्तु आजके बच्चोंसे अच्छी प्रकार जीना सीखनेकी बात कही जाती है और अच्छी प्रकार जीनेकी बात कहना कहीं अधिक भयकर अपराध है, क्योंकि कोई भी आदमी इतना अधिक अच्छा नहीं होता कि वह दूसरोंको जीनेकी शिक्षा दे, सके प्रौढ़ोंको बच्चों पर अपना धर्म लादनेका कोई अधिकार नहीं है। हम सबकी आशाएँ और महत्वाकांक्षाएँ बिलकुल भिन्न होती हैं। हालहीमें एक आदमीने मुझसे कहा—'अगर मुझे मालूम हो जाय कि मरनेके बाद जीवन है ही नहीं तो मैं चूल्हेमें सर झोंक कर मर जाऊँ, क्योंकि वैसी हालतमें तो जीवन एक निरर्थक पचड़ा भर रह जायगा।' मैंने उत्तर दिया—'मुझे इसकी तनिक भी चिन्ता नहीं है कि मृत्युके पश्चात् जीवन है या नहीं। मैं इस जीवनसे पूर्णतः सन्तुष्ट हूँ मेरे लिए यह जीवन ही काफ़ी हलचलसे भरा हुआ है। दोनों नितान्त विरोधी दृष्टिकोण हैं किन्तु इनसे किसीको कोई हानि नहीं पहुँच सकती। हानिकारक ये तभी होते हैं जब हम इन्हें आचरणके नियमोंमें बदल कर बच्चों पर लादनेकी चेष्टा करते हैं।

यदि कुछ अभिभावक इसे पढ़ने पर यह समझें कि मैं धर्मका शत्रु हूँ, तो उनकी धारणासे विपरीत मैं अत्यन्त धार्मिक मनुष्य हूँ। काल्विन-मतवादी स्काटलैंडका कौन आदमी नहीं होता? जब मैं युवक था तो एक पादरी बनना चाहता था; किन्तु यादमें कुछ शत्रुओंने मेरा मार्ग बदल दिया। किन्तु अचेतन इच्छा अपना मार्ग अवश्य ढूँढ लेती है और मैं आत्माओंका मुक्तिदाता बन गया! यह सच है कि मेरा धर्म नास्तिकतामें 'शैतान' और बच्चेमें 'ईश्वर' देखता है और यह भी सच है कि मेरे चर्च—मेरे स्कूल—में प्रार्थनाको कोई स्थान नहीं है। किन्तु मूलतः मेरा स्कूल पूजा-स्थान है, जहाँ संगीतके स्थानपर शोरगुल होता है। और भजन निश्चय ही स्वतन्त्रताकी स्तुतिमें होते हैं। जब मैं धर्मोंमें ग्रामीणी बात सोचता हूँ तो पता लगता है कि उनमें हास्य

नहीं होता। बाइबलमें एक भी मजाक नहीं है और ईसामसीह यदि हास्य प्रिय थे तो उसका कहीं प्रमाण नहीं मिलता, तब मैं अपने उलटे सीधे जीवन-दर्शनके दृष्टिकोणसे सभी सतों और शहीदोंसे अधिक चार्ली चेपलिन, क्लेश्म और डायर आदिमें धर्म पाता हूँ।

मैं अक्सर यह सोचता हूँ कि मानवताने एक ईश्वर और एक शैतानके बजाय दो ईश्वरका आविष्कार क्यों नहीं किया ? 'ईश्वर' और 'अच्छा' ये दोनों शब्द समानार्थक हैं, किन्तु मैं बचपन ही से 'आकाश-गगा का निर्माण करने वाले ईश्वर' और 'प्रार्थना करने पर मजबूर करनेवाले ईश्वर' के बीच कोई समानता न दख सका। यहाँ मेरा अचेतन-मन मेरे साथ आँखमिचौनी खेल रहा है दि मिल्की वे (आकाश गगा) मिल्क (दूध) माँ। माँ निमाता है, जीवन-दायिनी है, शिल्पी है। सचमुच यह आश्चर्य की बात है कि माता को धर्मसे अलग ही रखा गया। धर्मके ठेकेदार पुरुष हैं, यहूदियोंक मन्दिरमें स्त्रियाँ पुरुषोंसे अलग बैठती हैं। इसाई धर्मके कता धर्ता भी पुरुष ही हैं। इसाने पुरुषों को अपना शिष्य बनाया और पॉल को स्त्रियोंसे अत्यन्त घृणा थी। सभवत इसाई मत पु-जातिक धर्म होनेके कारण पुरुषों स अधिक स्त्रियोंने उसके प्रति भक्ति दिखाइ है। पु जातिक ईश्वरके प्रति जो भावना स्त्री की हो सकती है, वह पुरुष की नहीं हो सकती पुत्र (ईसामसीह) का महत्व पितासे अधिक माताके लिए होता है।

मेरी यह दृढ धारणा है कि ईसामसीहके विषयमें ईसाइयोंकी धारणा गलत है। मैं मानता हूँ कि लोग गलतसे गलत सिद्धातके पक्षमें प्रमाण खड़े कर सकते हैं कभी कभी मैं और मेरे विद्यार्थी एक खेल खेलते हैं, इस प्रकार की निरर्थक चीजोंको सत्य प्रमाणित करनेका प्रयत्न करते हैं—कि कैसर कम्युनिस्ट था कि चार्ला चेपलिनके पाँवोंसे आइन्स्टाइनके सिद्धांतोंका प्रथम प्रमाण मिला मैं मानता हूँ कि लोग इसामसीह को कम्युनिस्ट या कैपिटलिस्ट प्रमाणित कर सकते हैं। मेरा विश्वास है कि इसा का मुख्य सदेश यह था कि नेकीसे सुख अधिक अच्छा वस्तु है, कि सुख है तो नेकी भी उसके साथ चली आएगी। मेरा विश्वास है कि इसा ने कभी शरीरको

तुच्छ नहीं समझा और न निसर्गप्रेरणाओं (Instincts) के व्यक्तिकरण को बुरा कहा। मैं यह भी विश्वास करता हूँ कि जब उन्होंने 'पाप' शब्द प्रयोग किया तो उनका अर्थ दुःखसे था और जब उन्होंने एक रुग्ण व्यक्ति को अच्छा करके उसे आगेसे पाप न करने की हिदायत देकर जानेके लिए कहा था तो उनका मतलब था—'तुमने दुखी होकर अपने आपको रुग्ण कर लिया है। तुमको उसका दण्ड मिल गया! जाओ। प्रसन्न रहोगे तो सदा अच्छे रहोगे।' वे अपने समयके नीतिवादियोंके सदा विरुद्ध रहे। ये नीतिवादी लोग घृणासे भरे हुए होते हैं और इसका कारण यह होता है कि वे अचेतन-मनको शैतान और चेतन मनको ईश्वर मानते (बना देते हैं; वे घृणा इसलिए करते हैं कि वे अपनी प्रकृति (ईश्वर) की प्रेरणाओं (Prompting) को कुचलने का प्रयत्न करते हैं और उनको कुचलने की शक्ति ही उनकी बौद्धिक नैतिकता (शैतान) है। इसी पुस्तकमें एक स्थान पर मैं कह आया हूँ कि शिक्षाके मूल उद्देश्योंमें से एक बच्चे को विचार' करनेसे रोकना होना चाहिए, मेरा अर्थ है—जीवनमें बुद्धि खतरनाक पथ प्रदर्शक है। निसर्गप्रेरणा (Instincts) ही एकमात्र विश्वासपात्र और श्रेष्ठ पथ प्रदर्शक है। होमर लेनका जीवन-संदेश यही था और वह हमेशा कहता रहा कि प्रेम सबसे बड़ा उपचार है। इसाके उपदेशोंका उन्होंने जो विवेचन किया है वह, मुझे उम्मीद है, जल्दी ही पुस्तक रूपमें प्रकाशित हो जायगा।

नीतिवादियों (जीवनसे घृणा करनेवालों) ने ईश्वरको 'भयका ईश्वर' बना दिया है। कल ही ग्यारह वर्षके एक लड़केसे मेरी बात-चीत हुई। उन नीतिवादियों के लिए जो धोखेसे अपने-आपको ईसाई मानते हैं, मैं उसे पूरा का पूरा उद्धृत कर देता हूँ।

मैंने आरंभ किया 'टिम, कहो, तुम अच्छे लड़के हो या बुरे?'

'अधिकांशतः बुरा।'

'क्या तुम रोज रातको प्रार्थना करते हो?'

'हाँ।'

'ईश्वर कहाँ है, टिम?'

उसने छतकी ओर संकेत किया।

'और—शैतान ?'

उसने नीचेकी ओर संकेत किया।

मैंने अपना सर हिलाया।

'शैतान जैसी कोई चीज है ही नहीं'—मैंने कहा।

'अवश्य है। पिता जी ने मुझसे कहा है।' कुछ देर तक वह सोचता रहा फिर बोला—'अगर शैतान नहीं है तो तुम्हें कैसे मालूम कि ईश्वर है ?

"ईश्वर का दूसरा अर्थ 'अच्छा' होता है।" मैं बोला।

'मैं अच्छा नहीं हूँ।' वह बोला।

'नहीं टिम तुम बुरे नहीं हो। तुम अच्छे हो।'

'अगर मैं अच्छा हूँ तो मैं ईश्वर हूँ' वह बोला—'किन्तु मैं अच्छा नहीं हूँ। मैं—मैं—'वह पूरा न कर सका, किन्तु जो वह कहना चाहता था वह मैं समझ गया।

'तुम्हारा मतलब है तुम लिंगसे खेलते हो, यही न टिम ?'

'यह बुरा है।' वह बोला।

'तुम्हें किसने बनाया ?' मैंने पूछा।

'शायद ईश्वर ने।'

तुम्हारी नाक किसने बनाई ?'

'ईश्वर ने।'

और तुम्हारा लिंग ?'

'शायद ईश्वर ने।'

'क्या तुम्हारी नाक खराब है ?'

'बिलकुल नहीं।'

'तो फिर यह बताओ कि ईश्वर नाक को अच्छा और लिंगको खराब क्यों बनाने जाएगा ?'

'पिता जी ने कहा था कि अगर मैं उसके साथ खेलूँगा तो मर जाऊँगा।' उसने कहा।

मैंने बातचीत आगे नहीं बढ़ाई, क्योंकि उससे कोई लाभ न होता। उसके पिता ने उसके सामने ईश्वरकी बड़ी भयंकर तस्वीर खींची थी—कि वह उन पाप करने वालोंको जो इस 'अधम शरीर'से आनन्द प्राप्त करते हैं—

दह देता है। अब उसमें सुधार करना उसके पिताके ही हाथमें है। उसके पिता के अज्ञान-भरे उपदेशोंने उसे जीवनसे घृणा करने वाला बना दिया है। वह (पिता) क्रूर और विनाशक शक्तिका है) और उसने ईश्वर (अच्छे मन) को शैतानमें परिवर्तित कर दिया है। इस घटनासे स्पष्ट मालूम हो जायगा कि कैसे नीतिवादियोंने मानवताकी मौलिक अच्छाई को विकृत करके उसे भय और भयके परिणामोंमें घृणा क्रूरता और दुःखमें बदल दिया है।

मानवताका मौलिक अवैयक्तिक अचेतन मन अच्छा है। यह वास्तवमें ईश्वर है। किन्तु वैयक्तिक अचेतन—मन आत्मा—जिसे आदमी अपने बच्चों को देता है मौलिक ईश्वर को मार कर जीवनको दुःखमय बना देता है। आजके शब्दोंमें यदि ईसामसीहका सन्देश बाँधा जाय तो यह यों होगा—तुम्हारी मौलिक सहज प्रकृति अच्छी है। तुम्हें नीतिवादियोंसे बचना चाहिए क्योंकि वे अपनी अन्त प्रकृतिका निरोधन करते हैं। मैं जिन शराबियोंके साथ उठता-बैठता हूँ और जिनसे मैं प्यार करता हूँ, वे इन नीतिवादियोंसे, जो प्रार्थनाका ढोंग करते हुए अपनी सच्ची आत्माका निरोधन करते हैं, कहीं अधिक ईश्वरके निकट हैं। स्वर्ग निसर्ग प्रेरणा (Instinct) है। 'नरक' नैतिकता है। तुम स्वयं अपनेसे और अपने पड़ोसियोंसे तभी स्नेह कर सकोगे जब तुम अपनी सहज प्रकृतिसे स्नेह करोगे, किन्तु यदि तुम अपने शरीरसे घृणा करोगे तो तुम सब पुरुषोंसे घृणा करोगे। तुमने अपने ईश्वरको आसमान पर ले जाकर बिठा दिया है। अर्थात् तुम्हारा ईश्वर तुम्हारे हृदयमें नहीं तुम्हारे मस्तिष्कमें है। दिल और दिमाग, शरीर और और आत्माको अलग करनेका परिणाम सिवा दुःखके और कुछ नहीं हो सकता। जैसे मैं पिता (प्रभु) से अभिन्न हूँ वैसे ही तुम्हारा शरीर तुम्हारी आत्मासे अभिन्न है। तुम मुझे सलीबपर चढ़ाते हो, क्योंकि तुम स्वयं अपने शरीरसे घृणा करते हो। तुम गगनचुम्बी गिरजाघरोंका निर्माण करते हो किन्तु ईश्वर आसमानमें नहीं है, वह धरती पर है। ईश्वर प्रेम है, किन्तु तुम्हारा ईश्वर घृणाका दूसरा नाम है, जीवनमें जो कुछ आनन्दमय और सुन्दर है, उसका वह दमन करता है। वह दण्डमें विश्वास करनेवाला अत्याचारी है।

आजकी ज्वलन्त आवश्यकता आजके इसाई मतके विकृत रूपसे छुट्टी पाना है। आज-कल नेकीका अर्थ निसर्ग प्रेरणाका निरोधन समझा जाता है, किन्तु नेकीका अर्थ प्रलोभनोंपर विजय पाना नहीं होता है, प्रलोभनोंका न होना ही नेक होना है। मुझे लगता है कि संत पॉल इसलिए नेक थे कि वे सदा अपनी निसर्गप्रेरित आत्माका दमन किया करते थे उनका जीवन घृणा से प्रेरित था 'कबिरा काली कामरी चढ़ै न दूजो रंग।' इसामसीहका जीवन प्रेमसे प्रेरित था, वे नेक थे, क्योंकि उनका कोई प्रलोभन न था, क्योंकि वे अन्तःकरण—अपने अज्ञात मन—की बात स्वीकार करते थे। धर्मशास्त्री प्रमाणपर प्रमाण देकर यह प्रमाणित कर सकते हैं कि इसा और पॉलके विषयमें मेरी धारणाएँ गलत हैं, किन्तु उनके विषयमें मेरी धारणा तर्क या बुद्धि जन्यसे अधिक अंतःस्फुरणाका परिणाम हैं। यह तो स्पष्ट है कि जिस समय इसाने अंजीरके वृक्षको नष्ट किया, उस समय न वे अपनेसे प्यार करते थे और न अंजीरके वृक्षोंसे, और इसी घटनाको लेकर इसाको घृणासे प्रेरित प्रमाणित करनेके लिए एक विद्वतापूर्ण भाषण दिया जा सकता है। किन्तु 'सरमन ऑन दि माउण्ट, गॉस्पेल ऑफ लव' पापियोंके प्रति स्नेहपूर्ण आचरण य सब इसाकी मानवीय कमजोरियोंको इतना पीछे धकेल देते हैं कि उनके विषयमें हमारी सहज धारणा यही होती है कि उनके जीवनका ईश्वर घृणा नहीं प्रेम था। संत पॉलके बारेमें मैं यह कहता हूँ कि हालाँकि उन्होंने बहुत उच्च उपदेश दिये, किन्तु मेरा अंतःकरण कहता है कि वे शरीर, सुख और आनन्द से घृणा करते थे, निसर्गप्रेरणाओंके निरोधक थे। अगर आज पॉल जीवित होते तो वे नीतिवादियोंके साथ मिलकर किसी 'अश्लील' पुस्तकको जब्त करनेकी तीव्र शब्दोंमें माँग करते, जब कि ईसा मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ, उस पुस्तकके लेखकके साथ बैठकर भोजन करते। संत पॉल घृणा प्रेरित चर्चकी बात मानते किन्तु इसा वेश्याओं, अपराधियों और गरीबोंके साथ रहते।

जिस चर्चमें इसाके भक्त इसाके जीवनका अनुसरण करें, वही चर्च मान्य हो सकता है। इसा महलोंमें निवास नहीं करते थे; सुन्दर वस्त्र नहीं पहनते थे और न कीमती मोटरोंमें घूमते थे। वे पूजा-पाठके आडम्बरको

आशीर्वाद न देते, युद्धको उचित न ठहराते, और न सेना या जेलमें धर्मोपदेशकका काम करते। 'सरकारी' चर्च ने जीससके सिद्धान्तोंको तोड़-मरोड़कर विकृत कर दिया है भाई, ईसाके एंग्लिकन या रोमन कैथेलिकोंकी सभामें भाग लेनेकी कल्पना भी कर सकता है? आजके ईसाइयोंको अपने हर गिर्जेके द्वारपर ये शब्द लिख देने चाहिए— 'अज्ञात भगवानको समर्पित।' क्योंकि ईश्वरका मनुष्यकी अंतरात्मासे कोई सम्बन्ध नहीं है। आजका ईश्वर कठोर, वृद्ध और ईर्ष्यालु है उसमें कवायद सिखानेवाले क्रूर शिक्षककी सब बुराइयाँ हैं, उसका गुण एक भी नहीं सार्जेण्ट तो बियर पीनेके लिए सुस्ता भी लेता है, किन्तु ईसाई-मतका भगवान कभी विश्राम नहीं लेता। चूँकि आज के चर्चका ईश्वर हर प्रकारके सुख और आनन्दसे घृणा करता है, इसलिए बच्चोंपर उसका बड़ा बुरा प्रभाव पड़ रहा है—वे विकृतिमनस्क होते जा रहे हैं, उनमें घृणा भरती जा रही है। संसारमें केवल एक ही ऐसा देश है कि जिसमें यह आशा की जा सकता है यह एक नये प्रेममय भगवानका निर्माण करेगा क्योंकि उसी देशने यह समझा है कि चर्च मानवजातिकी प्रगति और उसके सुखकी शत्रु बन गई है। और वह देश रूस है। रूसके कई गाँवोंमें गिर्जेको सिनेमा घर या वाचनालयमें बदल दिया गया और निश्चय ही ईसामसीह आज यदि होते तो इस कामकी सराहना ही करते।

पैसेका अर्थ अक्सर सांकेतिक होता है अधिकार, प्रेम या अभयता। साधारणतया बच्चेके लिए पैसेका अर्थ प्रेम होता है, अत जब कोई बच्चा पैसा चुराता है तो वह वास्तवमें प्रेम चुराता है। फ्रॉयडियन मनोविज्ञानके अनुसार पैसेका अर्थ विष्ठा भी हो सकता है (यथा फ़िल्दी लुकर, बल्गर वैल्थ)। एक बड़ी विचित्र बात यह है कि कभी कभी चोर, भारी हाथ मारनेके बाद, गलीचोंपर अपना विष्ठा छोड़ जाते हैं। ये चोर नैतिक मनोवृत्तिके होते हैं चोरी करनेसे इनकी आत्माको बड़ा कष्ट पहुँचता है इसलिए बदलेमें बहुत मूल्यवान वस्तु छोड़ जाते हैं। इसका हेतु अज्ञात होता है, किन्तु इसका संबंध विष्ठाके शिशुकालीन मूल्योंसे होता है, क्योंकि बच्चेके लिए अपने पाखानेका बहुत महत्व होता है—'वह उसका प्रथम रचनात्मक कार्य होता है।'

पैसेके प्रति हमारी सबकी धारणाएँ कुछ न कुछ विकृत होती हैं। अगर मैं किसी गरीब फेरीवालेको एक माचिसकी पेटीके लिए एक शिलिंगके स्थानपर पाँच शिलिंग दे देता हूँ तो मुझे दु ख नहीं होता किन्तु यदि पाँच शिलिंग कहीं खो जाते हैं तो मुझे अत्यन्त दु ख होता है। मैं कुछ ऐसे धनवान् लोगोंको जानता हूँ, जो आसानीसे कुछ गरीब लड़कोंकी स्कूल फ़ीस दे सकते हैं। मैं सिगरेट पीना छोड़कर किसी अस्पतालको चन्देमें पैसे दे सकता हूँ—लेकिन देता नहीं। हम सब कंजूस हैं और अपने पैसेसे चिपके रहते हैं, अत धनवान लोगोंको जो अपने पैसेसे चिपके रहते हैं गाली देनेका किसीका अधिकार

नहीं है। जब हम कोई दान देते हैं, तो हम चाहते हैं कि सब लोग इस बातको जान लें कि हमने दान दिया है। यही कारण है कि जब हम पढ़ते हैं कि किसी धनवान् आदमीने किसी अस्पतालको पचास हजार पौण्ड दिए हैं, तो हम पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

बच्चोंके प्रति अभिभावकोंका रुख पैसेके प्रति उनके अपने रुख पर निर्भर करता है। एक नवयुवती माता मजाकमें कहेगी—'दुनिया भरका सोना मिल जाय तो भी मैं अपने बच्चेको नहीं बेचूँगी।'—और वह सचमुच नहीं बेचेगी—किन्तु पाँच ही मिनट बाद 'वूलवर्थ' की दुकानसे खरीदे हुए एक प्यालेको तोड़नेके कारण वह अपने बच्चेको पीट बैठेगी। कीचड़से सने बूट लेकर गलीचेपर चलनेके अपराध में दिए जानेवाले दण्ड मूलतः पैसेसे सम्बन्ध रखते हैं। मैं मानता हूँ कि इसका आर्थिक पहलू भी है, किन्तु वह गौण होता है, क्योंकि भौतिक वस्तुओंको तोड़ने या खराब करनेके लिए सम्पन्न और गरीब घरोंमें एक-सा दण्ड दिया जाता है। बच्चा जितना छोटा होता है, अभिभावकोंका क्रोध भी नुकसान करनेपर, उतना ही अधिक होता है। जब मैं बच्चा था तो मेरी माँ एक तश्तरी तोड़ देनेपर मुझसे बहुत नाराज होती थी किन्तु आज अठहत्तर वर्षकी उम्रमें अगर मैं आधा फर्नीचर भी तोड़ दूँ, तो वह केवल मुस्कराकर रह जायगी। जब बच्चे नुकसान करते हैं, तब तो नुकसान परोक्ष आँका जाता है, किन्तु जब प्रौढ़ नुकसान करते हैं तो ऐसा नहीं होता। हर बच्चा जानता है कि जब पिताके हाथसे चायदानी गिरकर टूट जाती है तो माँ कभी नाराज नहीं होती—बात 'खत्म हो गया' पर ही समाप्त हो जाती है।

मैंने देखा है कि मेरे विद्यार्थी अपने अपने परोक्ष सांपत्तिक गुणोंके कारण बहुत दुखी होते हैं। गई टर्म में चौदह-वर्षीय टेरन्सकी घड़ी गिरकर टूट गई। हफ्तों तक वह मुझसे गिड़गिड़ा कर कहता रहा कि मैं यह बात उसकी माँसे न कहूँ। टॉमने अपने मासाव्ययका हिसाब छोड़ दिया और मुझसे कहने लगा कि मैं अपने बिलमें हिसाबके बजाय 'स्कूल एक्सपेंडीचर (गैर-वार्ड)' 'साढ़े दस शिलिंग' लिख दूँ। एनी ने अपनी माँ द्वारा दी गई एक मखमली-सी छतरी खो दी, इसलिए वह घर जानेसे डरती थी। दूसरी ओर, चौदह-वर्षीय

एलिक खिड़कियोंपर खिड़कियाँ तोड़ता रहा। उसका कहना था कि वह अपने पितासे जितना अधिक हो सके खर्चा करवाना चाहता है। उसका हेतु था— पिताजी शायद मुझसे प्यार नहीं करते। मैं उनकी परीक्षा लूँगा! अगर वे इस नुकसानकी क़ीमत चुका देंगे तो किन्तु उसके काममें कुछ बदला लेनेकी भी भावना थी। मैं उन्हें कष्ट दूँगा।' और कुछ कुछ-कुछ घर लौटने की इच्छा 'अगर मैं अधिक खर्च करवाऊँगा तो पिता जी मुझे घर ले जायेंगे।' जो बच्चा घृणासे भरा हुआ होता है, वही अधिकतर घरकी याद में घुलता रहता है, उसका उद्देश्य घरमें जाकर एक तूफ़ान खड़ा कर देना होता है। घरकी याद घरके लिए कभी शोभा की बात नहीं होती उलटे, उससे यही प्रमाणित होता है कि घरका वातावरण अच्छा नहीं है। क्योंकि या तो उसने माताका इतना अधिक (अनुचित) प्यार पाया है कि वह माता के संरक्षणके लिए तरसता है या उसे घरसे दूर भेजा जाना पसन्द नहीं होता, क्योंकि उस हालतमें वह समझता है कि घरवाले उसे प्यार नहीं करते। वह नहीं चाहता कि घरवालोंका सब प्यार उसके प्रतिद्वंदी भाई और बहनोंको मिले।

कुछ अभिभावक अपने बच्चोंपर बहुत कम खर्च करते हैं, और कुछ बहुत अधिक। अक्सर अभिभावक प्यार की कमी पैसा देकर पूरी करते हैं। कुछ लोग दूसरोंकी ख्यालमें रखकर पैसा देते हैं मेरा पुत्र अपने साथियों को बताएगा कि उसका पिता पैसा बहा सकता है।' इसका हेतु था महित सही होता है और परिणाम बुरे होते हैं।

कपड़ोंके मामलेमें विशेषकर अभिभावकोंकी 'सम्पत्ति प्रथियाँ' सामने आती हैं। मेरे पास लम्बे और उबता देनेवाले पत्र आते रहते हैं। जिनमें लिखा होता है कि विलीने अपना एक कीमती कोट खो दिया है। और धनवान माताएँ कपड़ोंको इतना अधिक महत्व देती हैं कि वे ग़रीब माताओंसे भी गई-गुजरी होती हैं। मेरे पास एक लड़का है जिसके विकासमें सबसे बड़ी बाधा यही है कि उसकी माँ उसे कपड़ोंके बारेमें हमेशा परेशान करती रहती है। वह पेड़ पर चढ़नेसे डरता है कि कहीं उसका पैंट न फट जाय। बच्चोंको कपड़ोंमें कोई यथार्थ रुचि नहीं होती। वे उन्हें इधर-उधर जहाँ मन आया फेंक देते हैं। बचपनके दिनोंमें, जब मैं सेलक मैदानसे होकर गुजरता हूँ, तो मुझे जूते, मोजे

और जासियाँ पड़ी मिलती हैं। जब ये वस्तुएँ मनुष्यके किनारे छोड़ दी जाती हैं, तब परिस्थिति कुछ रहस्यमय हो जाती है।

अभिभावकोंकी इस वस्त्र चिन्ताके पीछे कई बातें होती हैं। सबसे छिछली और ऊपरी बात है लोगोंका खयाल—'पड़ोसी क्या कहेंगे?' 'वस्त्र ग्रंथि' के पीछे, एक अधिक गहरा हेतु 'ईर्ष्या' होता है। जब कोई माता क्रुद्ध होकर मुझे लिखती है कि रेगी एक मात्रा कम लेकर आया है, तो वह वास्तवमें स्कूलके प्रति अपनी 'ईर्ष्या' प्रकट करती है। स्कूलने चाहे रगीकी चोरीकी आदत छुड़ा दी हो और उसकी माताका चेतन मन इसके लिए आभार भी मानता हो, किन्तु अज्ञात-मनमें उसे यही लगता है कि स्कूलने उससे पुत्रका प्रेम छीन लिया है। किन्तु वह मुझसे ईर्ष्या नहीं करती, मैं तो मात्र पुरुष हूँ। उसकी ईर्ष्याका लक्ष्य होती हैं स्त्रियाँ—मेरी पत्नी घरकी देख रेख करनेवाली वृद्धा किंडरगार्टनकी अध्यापिका। रगीके मोजोंको सँभालना इन्हींका काम होता है। इस प्रकार मेरे पास आनेवाले पत्रोंमें से आधेसे अधिक मेरी पत्नीके लिए होते हैं।

फिर कपड़ोंको अत्यधिक महत्व देनेकी भावनाके पीछे बहुधा 'धन मूल्यांकन (एक उप सिद्धान्त) से उत्पन्न एक विकृति होती है

जहाँ तक बच्चेको पैसा देनेका प्रश्न है, बहुत अधिक देनेसे बहुत कम देना ज्यादा अच्छा है। मैंने बच्चोंको, भेंटोंकी बहुलताके कारण अक्सर नुकसान पहुँचते देखा है। मेरे कुछ विद्यार्थियोंको कीमती ग्रामोफोन, बिजली के घुँघराले आदि दिये जाते हैं जिनकी आवश्यकतासे अधिक पैसा मिलता है उनका 'मूल्य ज्ञान' खो जाता है। जब मैंने एक माताको अपने दसवर्षीय पुत्रको एक साथ दो पौण्ड देनेके लिए फटकारा तो उसने रकम घटा कर दस शिलिंग कर दी। लड़का पैसे चुराने लगा, रकम घटा देनेके कारण वह मुझसे और अपनी माँसे नाखुश रहने लगा। उसके लिए रकम घटानेका अर्थ था— 'माँ अब मुझे कम प्यार करती है।' और इसीके अनुसार वह आचरण भी करने लगा। यह धारणा भ्रमपूर्ण है कि बच्चोंको बहुत पैसा देनेसे वे पैसेकी कीमत सीख जाते हैं। जिस छोटे लड़केकी मैं बात कर रहा था वह आने दो पौण्ड आइसक्रीम और मिठाइयोंमें उड़ा देता था और समझा

पेट हमेशा खराब रहता था। तात्कालिक (आइसक्रीम) को त्याग कर अन्तात्कालिक (साइकल) के लिए बचानेकी आदत जीवनमें बड़ी महत्वपूर्ण होती है, किन्तु ऐसे बच्चे ऐसी आदत कभी नहीं सीखते।

छोटे बच्चे पैसेका मूल्य बिलकुल नहीं समझते। किसी भी ऐसे स्थान पर जहाँ बच्चे प्रार्थना करनेके लिए आते हों, आप बराबर सिक्कोंके गिरनेकी आवाज सुन सकते हैं नि संदेह इसका एक कारण यह है कि कोइ बच्चा कभी चंदमें पैसा नहीं देना चाहता। मेरे छोटे विद्यार्थी मिठाईकी दूकानके निकट पहुँचते पहुँचते अपने पैसे खो देते हैं। पाँच-वर्षीय गॉर्डन जब-खर्चके लिए मिला पैसा बगीचेमें फेंक देता है। अभिभावकोंको अपनी सम्पत्तिविषयक धारणाएँ अपने बच्चों पर लादनेसे सावधान रहना चाहिए। घरका 'सेविंग्स् बैंक' बच्चेके लिए हानिकारक होता है क्योंकि वह बच्चेसे बहुत बड़ा माँग करता है—वह कहता है—कलकी सोचो जब कि बच्चेकी उम्र 'उम्र में आज' ही महत्वपूर्ण होता है। सात वर्षके बच्चेके लिए यह बात कोइ महत्व नहीं रखती कि बैंकमें उसके सात पौंड हैं। मेरे कुछ सोलह-वर्षीय विद्यार्थी अपने अभिभावकोंसे इस लिए चिढे हुए हैं कि वे उनके कपड़े खरीदनेके लिए उनकी बचतमेंसे पैसा खर्च करते हैं।

'पैसा बच्चेके कल्पना-जीवनमें बाधा उपस्थित करता है।' बच्चेको अपनी धुँआकश देनेका अर्थ होता है, उसे सनौवरके वृक्षसे नाव बनानेके रचनात्मक आनन्दसे वंचित कर देना। प्रौढोंके जीवनमें पैसा रचना और शारीरिक क्रियामें बाधा उपस्थित करता है जब मेरे पास मोटर थी तब, अवश्य (जब कि मैं पैदल चलता हूँ या साइकिल पर चढ़ता हूँ) मेरा स्वास्थ्य कहीं अधिक खराब था। कभी कभी मैं सोचता हूँ कि अगर मैं पैसेवाला होता तो अपने कारखानेके लिए तरह तरहके अद्भुत औजार खरीदता, किन्तु साथ ही यह भी सोचता हूँ कि अगर मेरे पास बिजलीसे चलनेवाली मशीन होती तो बच्चा बनानेमें मुझे बहुत आनन्द न आता।

बच्चोंको बहुत अधिक पैसा न देनेके लिए एक दूसरा कारण यह है कि बचपनकी अभिरुचियाँ अल्पायु—चंदरोजा होती हैं। एक लड़केन ग्रामोफोनका रिकार्ड खरीदनेके लिए घरसे तीन शिलिंग मँगवाए। पैसा

बारेमें मैंने, न्यू हेल्थ सोसायटीकी स्थापनाके कई वर्षों पहले—एडिनबराके प्राकृतिक चिकित्सक और मेरे मित्र डॉ जे सी टॉमसनसे सुना था।

जो हो। मुझे तो भोजनके मनोवैज्ञानिक पहलूमें रुचि है। होमरलेन कहा करता था कि प्रत्येक बीमारी आत्महत्याका प्रयत्न है। एक आदमी चाहे गोली मार कर मर जाए या कैंसरका शिकार हो जाय—दोनों ही दिशाओंमें वह इस शरीरसे छुटकारा पानेका प्रयत्न करता है, जिसे नीतिवादियोंने हेय और तुच्छ करार दिया है। ग्रोडेक भी कुछ कुछ ऐसी ही बात कहता है। मेरे विचारसे लेन सच कहता था। हम भी अगर सोचें तो हमारी समझमें आ जायगा कि हमारी नैतिकताने हमारे भोजन पर किस प्रकार प्रभाव डाला है। नैतिकताके अनुसार प्रत्येक वस्तुका शुद्ध और श्रेष्ठ होना चाहिए, अतः स्वेतता आत्मिक-सम्पूर्णताका प्रतीक बन गई है। यह नैतिकता हमारे भोजनमें घुस गई और हम सफ़ेद रोटी, सफेद चावलकी माँग करने लगे, अर्थात् हमने खानेसे सब भद्दी और खराब चीजें निकाल दीं सूअरोंके खाने योग्य भूसी! लेकिन अब हम सीख गए हैं कि भोजनमें भूसी ही स्वास्थ्यदायक वस्तु होती है अतः स्पष्ट है कि स्वास्थ्य प्राप्तिके लिए शुद्धताके उन मापदण्डोंका त्याग करना पड़ेगा?

मैं निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि हम कभी इस सिद्धांतको प्रमाणित भी कर सकेंगे कि नहीं, कि बीमारियोंकी जड़ मरनेकी अज्ञात इच्छा होती है, प्रमाण मिलना बहुत कठिन है। किन्तु मैं इतना प्रमाणित कर सकता हूँ कि चेतन मन बीमारीकी इच्छा कर सकता है। एक लड़केका भाई समरहिलमें था। उसकी शिकायत थी कि—'मैं एक कठोर स्कूलमें क्यों जाऊँ जब कि मेरा भाई स्वतन्त्र स्कूलमें जीवनका आनन्द उठा रहा है?' उसने बराबर बीमार रह कर समस्याका हल ढूँढ लिया। उसकी बीमारीके दो हेतु थे—एक तो जिस स्कूलसे वह घृणा करता था उससे दूर रहना और दूसरा अभिभावकोंको उसे समरहिल भेजने पर विचार करनेके लिए मजबूर करना। वह अपने उद्देश्यमें सफल हुआ उसे समरहिल भेज दिया गया। जब वह आया तो उसने मुझे बताया कि वह इच्छानुसार बीमार पड़ सकता था (उसने आदत बना ली थी)। उसने यह भी बताया कि अगर उसके अभिभावक

कभी भी उसे समरहितसे हटानेका प्रयत्न करो तो उसे विश्वास है कि उसे शीतला हो जायगी ! आज वह स्वास्थ्यकी जीती जागती तस्वीर है। गए दो वर्षोंमें मैंने उसे जुकाम तक होते नहीं देखा। वह हंसते हुए कहता है कि उसका आत्मसूचन (Auto suggestion) बिल्कुल नए प्रकारका है

अभिभावकगण बच्चोंके भोजन को लेकर नित्य परेशान रहा करते हैं। मिठाइयों के विषयमें उनकी चिन्ता बिल्कुल हद की सीमा तक पहुँच जाती है। मैं बहुत तो नहीं जानता किन्तु मैं सोचता हूँ बच्चे मिठाई इसलिए खाते हैं कि उनके विकासके लिए शक्कर आवश्यक होती है। हाल ही में मैंने एक नया सिद्धांत सुना है कि उनकी (बच्चोंकी आत्माओंको भी शक्करकी आवश्यकता होती है। और कई डाक्टर बच्चोंकी चोरी की आदत छुड़ानेके लिए शक्कर की अतिमात्रा देते हैं। हो सकता है यह सच हो मुझे नहीं मालूम। हाँ, मेरे पास एक लड़का था जो रोज चुरा कर सब तरहकी मिठाई खा जाता था। मैंने उसे मिठाइयों से लाद दिया, किन्तु उसकी चोरीकी आदत नहीं गई।

बच्चों को उनकी इच्छानुसार भोजन मिलना चाहिए। भोजनके मामले में प्रत्येक बच्चे की अपनी रुचि अलग होती है। मुझे अपनी पत्नी की स्मरण-शक्ति पर सचमुच आश्चर्य होता है। वह चालीस बच्चों की विशेष रुचियों को अपने मस्तिष्कमें लिए घूमती है। टॉमी को कच्ची गाजर पसन्द नहीं है, जीन, मक्खन—बिना डबलरोटी पसन्द करती है आदि। बच्चे को उसकी इच्छानुसार खाने को देने का मतलब उसे बिगाड़ना नहीं होता। इसके विपरीत, जबरदस्ती खिलानेसे उनका खाना खराब हो जायगा, क्योंकि बच्चे जो चीज पसन्द नहीं करते भी उसे बिना चखे ही छोड़ देते हैं। बड़ों में भी कई लोग कई प्रकारकी चीजें खाने से घृणा करते हैं और इसका कारण लगभग सदा बचपनमें जबरदस्ती खिलाई गई किसी वस्तुमें पाया जा सकता है। बच्चों को भोजन विषयक आदेश नहीं देना चाहिए। स्वस्थ बच्चों (और प्रौढ़ों) को भोजन खाने और सोनेसे बेखबर (Unconcious) होना चाहिए !

कल एक आलोचना प्रिय सज्जन ने मुझसे कहा 'आप अपने विद्यार्थियों को आचरण और शिक्षा की स्वतन्त्रता देते हैं, तो फिर, आप उनका सफेद रोगी और आचार खास्र भोजन के प्रति अपनी धारणाएँ बनानेकी स्वतन्त्रता क्यों नहीं देते ?'

मैने उत्तर दिया —'क्योंकि मै बड़ा असगत आदमी हूँ ।'

सायनाइड या साइनाइड जैसे विषोंके बारम बच्चों को प्रयोग प्रमाद-पद्धति (Trial and Error method) स सत्य जानन की आज्ञा मैं नहीं दे सकता । रसायन शास्त्र का अध्यापक कॉसहिल उन्हें बहुत सँभाल कर तालेमें बद रखता है । बच्चा अपने अनुभवसे भोजनके गुण अवगुण नहीं समझ सकता । कच्ची सेवस्त्र निसे पेटमें होनेवाले दर्दका और कच्ची सेबके अवगुणका पता एकदम लग जाता है, क्योंकि उसकी प्रतिक्रिया शीघ्र होती है, किन्तु दूसरे ही सप्ताहमें वह उन्हें पुन खाने लग जाता है । अस्वास्थ्यकर भोजन का प्रभाव बहुत आगे चल कर प्रत्यक्ष होता है । हमें बच्चोंके वातावरण और उनके कामों पर कुछ न कुछ तो नियन्त्रण रखना ही होगा, कोई पागल ही आकर मुझसे कह सकता है कि "चूँकि बच्चों को सब वस्तुओं को समझ बूझकर (जिसे वे अच्छा समझें उसे) स्वीकार करनी चाहिए" अत मुझे समलिंगकामुकों, प्रदर्शनवादियों (Exhibitionists) या खूनियों को अपने यहाँ अध्यापक बनाकर रखना चाहिए !"

यहाँ 'सेन्सरशिप' का कठिन प्रश्न आ खड़ा होता है । मैंने आज तक ऐसी एक भी फिल्म नहीं देखी है, जिसे मैं बच्चों को न दिखा सकूँ लेकिन मेरे पास ऐसी पुस्तकें हैं, जिन्हें मैं बच्चोंके हाथमें नहीं देता जैसे चिकित्सा मनोविज्ञानकी टेकनिकल पुस्तकें, जिनमें लिखी बातों को जाननेके लिए बच्चे 'तैयार' नहीं होते । निर्भय और खुले वातावरणमें पाला-पोसा गया बच्चा किसी फिल्म या उपन्यासके कभी पतित नहीं हो सकता । जेम्स जायस की यूलिसिस पर इसीलिए प्रतिबन्ध लगा दिया गया था कि उसमें सुभाग ... दिखा के लिए अंग्रेजीके सर्वविदित शब्द कानमें लाए गये थे किन्तु स्वतन्त्रतामें पले बच्चे का यूलिसिसक पढ़ने से कभी कुछ नहीं बिगड़ सकता । अधिकांश लड़के-लड़कियाँ उन शब्दों को जानते हैं और छिपे छिपे जब

प्रौढ़ों का डर न हो, या खुलकर जब वे स्वतन्त्र होते हैं — उनका प्रयोग करते हैं। अभिभावकोंने 'गाली' देने पर जो प्रतिबन्ध लगा रखा है, उसके कारण मेरे स्कूलमें काफी कठिनाइयाँ उपस्थित हो जाती हैं, क्योंकि स्वतन्त्रता मिलने पर लड़के पहला काम यह करते हैं कि माँ या आया जिन-जिन शब्दों के प्रयोग पर उन्हें उँगली फटकारती है, उनका खुलकर प्रयोग करते हैं।
किन्तु जहाँ तक बाहरी दुनिया का सवाल है बच्चोंमें औचित्यकी भावना बड़ी गहरी होती है। आज कल हमारे स्कूलका नियम है कि 'समरहिलकी सीमामें कोई जितनी चाहे गाली बक ले किन्तु यदि बाहर जाकर गाली बकेगा तो एक पेनी जुर्माना किया जायगा।' जिस लड़कीने यह नियम प्रस्तावित किया, उसने उसकी आवश्यकता समझाते हुए कहा 'भाई बात यह है कि बाहरके लोग अभी इतने शिक्षित तो हैं नहीं कि वे यह समझ सकें कि गाली देनेसे कुछ बनता या बिगड़ता नहीं है।'

'ऑल क्वाइट ऑन दी वेस्टर्न फ्रंट' में कुछ अश्लील शब्द थे, किन्तु अभिभावकोंने उस पर 'सेन्सर' नहीं किया। वे अभिभावक जो ठहरे।

यह कहना हास्यास्पद लग सकता है कि अभिभावकों का उन वस्तुओं में जो उन्हें आघात पहुँचाती हैं, अत्यन्त आकर्षण होता है — वैसा ही, जैसे बच्चों को अपनी वस्तुओंके प्रति होता है। फिर 'सेन्सरशिप सदा नुकसान करती है क्योंकि वह किसी वस्तु पर प्रतिबन्ध लगाकर उसे अनुचित रूपसे आकर्षक बना देता है। 'दी वेल आफ लानलीनेस' नामकी पुस्तकमें कहीं अश्लीलता नहीं थी। किन्तु उस पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। लोग यही समझे कि पुस्तक अवश्य अश्लील होगी। जवान लड़कियोंने येन केन प्रकारेण उस पुस्तकको प्राप्त करके पढ़ा। एक लड़कीने मुझे बताया कि उन्हें हार्डी की पुस्तक 'टेस' नहीं पढ़ने दी गई, किन्तु पुस्तक सामने पड़ी थी, और उनमें से एक तो उस सुन्दर कहानी को पढ़ कर रहस्यमय ढंगसे मुस्कुरा उठी थी। मुस्कुरा इसलिए उठी कि प्रतिबन्ध ने उस पर अपनी अश्लीलता लाद दी थी, जो कि वास्तव में उसमें थी नहीं। लोग कब यह सीखेंगे कि निषेध और सेन्सरशिपसे पवित्रता नहीं आएगी। आखिर यह पवित्रता है क्या? जब तक लड़का हस्तमैथुन नहीं करता उसे पवित्र माना जाता है, और जब तक

लड़की कुमारिका रहती है उसे सच्चरित्र माना जाता है। यही प्रौढ़ोंकी पवित्रताकी धारणा है। पवित्रता, अपवित्रता का पूर्वानियोजन (Postulate) करती है। पवित्रसे पवित्र नीतिवादी भी टाँग उठाकर खड़े हुए कुत्ते को अपवित्र नहीं कहेगा किन्तु फ्रेंच पोस्टकार्ड पर इसीके चित्रको वह अपवित्र कह-कह कर उसकी निन्दा करेगा। हम गाय, बैल, मुर्गे, मुर्गियाँ इन सबको तो अपवित्र नहीं कहते, चिड़ियाघरोंमें बन्दर खुले आम हस्तमैथुन करते हैं, किन्तु नीतिवादी तक उन्हें वहाँ से हटानेके लिए आन्दोलन नहीं करते। मात्र मनुष्य ही अधम है।'

हम 'अन उच्च पशुओं' की बात क्यों करते हैं, यह मेरी समझमें नहीं आता। हमारे मापदण्डोंके अनुसार तो उन्हें (जिन्हें हम अन-उच्च कहते हैं—) उच्च पशु होना चाहिए था, क्योंकि वे अपवित्र नहीं होते। 'आलसी! चींटीसे शिक्षा ले!'—किसीने कहा है। मन तो मेरा भी चिल्लानेका होता है कि 'ओ नीतिवादी! जा मुर्गेके जीवनका अध्ययन करके अक्ल प्राप्त कर!' मुर्गा घृणा नहीं करता, वह झगड़ता है किन्तु युद्ध नहीं छेड़ता वह अपने पड़ोसीकी निन्दा नहीं करता वह अपनी सतानको नीतिका पाठ नहीं पढ़ाता। मैं मजाक नहीं कर रहा हूँ। आसमानके भगवानकी बात अब बहुत हो चुकी है, अब हमें धरती पर अपना भगवान ढूँढना चाहिए। आदमका अभिशाप यह नहीं है कि हम मरते दम तक 'परिश्रम' ही करते रहेंगे—यह तो वरदान है। अभिशाप है 'आदर्शवाद' और 'नीतिमत्ता'। मुझे याद है एक दिन टोमर रेन कह रहा था कि बड़ी विचित्र बात यह है कि मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है, जो आनन्द के लिए संभोग करता है। ऋतुकालको छोड़कर जानवर कभी सभोग नहीं करते, किन्तु पुरुष ऐसी कोई समय-सीमा नहीं मानता और कहा यह जाता है कि आदमी जानवरोंसे श्रेष्ठ है। मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है, जो अशुभ वस्तुके समान अपने शरीरको छिपाकर रखता है, और सदा उसे प्रकारसे ढक रखता है (बीमारीका एक अतिरिक्त कारण!)। हमारी पवित्रता हमारे वस्त्रोंसे बँधी हुई है। किसी धार्मिक पुरुषनमेंरे एक प्रश्नका आज तक सतोष जनक उत्तर नहीं दिया और वह यह है कि 'यदि ईश्वरने मुझे अपने ही समान

बनाया है तो बिना कपड़े पहने घरसे बाहर निकलने पर मुझे पकड़ क्यों लिया जाता है?' समुद्र-किनारेके कई स्थान-जहाँ स्तन (छाती) सबको निर्वसन (उघाड़ा) रखना मना है, वहाँ ऊपरसे नीचे तक कपड़े पहनने पड़ते हैं। किन्तु जमाना बदल रहा है। जर्मनीका नग्नता आन्दोलन अवश्य बढ़ेगा और जब वह बढ़ेगा तो पवित्रता अपना मुँह छिपाती फिरेगी!

मुझसे स्त्री-पुरुषों नग्नता आन्दोलन पर मेरी राय पूछी जाती है। मैं उससे बिलकुल सहमत हूँ, मौसम चाहे न हो, किन्तु मुझे उसमें एक खतरा दिखाई पड़ता है। उसमें अवांछनीय लोग—प्रदर्शनवादी और भौंडे (Peeping Toms)—घुस आ सकते हैं। स्त्रियाँ चेतन रूपसे तो नहीं, किन्तु अचेतन रूपसे यह बात समझ गई थीं और इसीलिए वे इस आन्दोलनसे हट भी गईं। फिर भी, एक दो विकृतमना व्यक्तियोंके कारण संपूर्ण आन्दोलनको नहीं त्यागा जा सकता, और जिन स्त्रियोंकी मैं बात कर रहा था, उनका स्वयंका नग्नताके प्रति रुख विकृत न होता तो वे 'भौंडुओं' से न घबरातीं।

मैं बच्चों और अभिभावकोंके एक दूसरेको नग्न देखनेके बिलकुल पक्षमें हूँ। किन्तु इसमें भी एक खतरा है। शरीरका महत्व स्वीकार करनेके साथ ही साथ यदि वे हस्तमैथुनके विषयमें भयोत्पादक बातें करेंगे तो परिणाम भयंकर हो सकता है। निश्चय ही, निर्वसनता काम की गन्दगीको तो दूर कर देगी। यह तो सब जानते हैं कि चित्रकारको नैतिक दृष्टिकोणसे अपना 'मॉडल' तब तक नहीं जँचता, जब तक वह अपने आपको कुछ कुछ ढँक न ले। नैतिक दृष्टिसे हीन व्यक्ति' ही कपड़ोंकी आवश्यकता महसूस करता है।

नीतिवादीका कथन सवाल यह जरूर होगा कि 'अगर हम भी [illegible] को फेंक देंगे तो संसारमें चारों तरफ उच्छृंखलता फैल जायगी।' किन्तु निर्वस्त्र रहनेमें उतना खतरा नहीं जितना पहनने और छुपानेके नैतिक नियमोंके [illegible] विकृति [illegible] उसमें भी उच्छृंखलता नहीं होगी। बच्चोंसे जब पर्दे-पड़दा [illegible] छिपाया जाता है तो वे उत्सुक हो जाते हैं, किन्तु अवश्य बात यह है कि वे [illegible] बननेमें ऐसा न करें।' [illegible] उच्छृंखलताके [illegible] करता है, क्यों कि उसे डर है कि और सब निर्वसन हुआ [illegible]

'वह स्वयं' कहीं का न रह जायगा ! नीतिवादीका अन्य लोगोंसे भय सदा आत्मगत (Subjective) होता है। यही कारण है कि हमारे बगीचोंमें विद्यार्थिनियोंको गंदे पोस्टकार्ड दिखानेके लिए सजा पानेवाला सदा कोई नीतिवादी ही होता है।

मैं कहना चाहता हूं कि हम सब नीतिवादी हैं। मैं स्वयं नीतिवादी हूँ, किंतु केवल अपने लिए, जब तक कोई अपने उपदेशोंसे बच्चेका हानि नहीं पहुँचाता, तब तक म किसीका, जिसके नीतिसंबंधी विचार मुझसे भिन्न हैं, मत-परिवर्तन करनेका प्रयत्न नहीं करता। मैं कभी ऐसे अश्लीलता-प्रिय व्यक्तिसे जिसकी मुख्य अभिरुचि अश्लील पुस्तकें पढनेमें होती है, नहीं झगड़ूँगा। बशर्ते कि वह अपना प्रचार वहीं तक ही सीमित रखे।

बच्चोंको अनैतिक प्रभावोंसे बचनेके लिए समितियाँ बनाई गई हैं। वे असहिष्णु हैं, मैं भी असहिष्णु हूँ। दुखकी बात यह है कि हम दोनोंका उद्देश्य एक ही है—बच्चेका सुख। म समझता हूँ कि वे (समितियाँ) भयंकर भूल कर रही हैं, उनके विचारसे मैं बच्चोंके दिमागोंको खराब कराता हूँ। अगर मैं सुधारवादी दलका नीतिवादी होता तो बरट्रेंड रसल और डोरा रसल, इथेल मैनिन और दोनों नील (पति पत्नी स्वयं) को देश निकाला दिलवा देता।

अगर मेरे पास शक्ति होती तो मैं ऐसे सब अध्यापकोंको जो अपनी नैतिक धारणाओंको बच्चों पर लादना चाहते हैं, किसी एकान्त टापूमें भिजवा देता। बात सचमुच बड़े दुखकी है। किन्तु कोई और रास्ता ही नहीं है। हम एक दूसरेके विरोधी बने ही रहेंगे ! क्योंकि हमारे बीच समझौतेकी कोई संभावना नहीं है। म और रसल इस सिद्धान्तके लिए लड़ रहे हैं कि बच्चे को 'अपना जीवन' जीनेकी, अधिकांश चीजोंके विषयमें अपनी धारणाएँ बनाने का अपने मौलिक गुणोंको व्यक्त करनेकी स्वतंत्रता होनी चाहिए। हमारे विरोधियोंका विश्वास है कि बच्चा जन्मसे ही पापी होता है अतः निसर्ग प्रवृत्तियोंके दमनके द्वारा ही उसे प्रकाश प्राप्ति हो सकती है। हो सकता है वही लोगोंका, आजका समाज सदा ही बहुमत रहे किंतु तब दुनियामें परिवर्तन न होगा दुनिया आज जैसी ही बनी रहेगी कि जिसमें धर्मनिर्भीत और दयसे घृणा—जेलखानोंके जरिये, लड़ाइयों द्वारा,

अब मैं कुछ जटिल बच्चोंके उदाहरण देकर यह बतानेका प्रयत्न करूँगा कि कैसे अजटिल अभिभावक बच्चोंको जटिल बना देते हैं। साथ ही मैं यहीं पर यह भी बता देना चाहता हूँ कि मैं दुर्बल बुद्धिवाले बच्चोंके लिए स्कूल नहीं चलाता हूँ। न्यूनमनवाले बच्चोंसे मेरा कोई वास्ता नहीं, क्योंकि उनका नहीं सुधारा जा सकता। मैं तो 'जटिल' माने जानेवाले बच्चों को लेता हूँ, क्योंकि दूसरे स्कूल उन्हें रखनेके लिए तैयार नहीं होते और इसलिए भी कि मेरी प्रणाली उनमें सुधार कर सकती है। मेरे पचासोंमें से चालीस लड़कोंमें अगर कोई असामान्यत्व है तो यह नहीं कि मैं असाधारण स्वस्थ प्राप्त हैं। इनमेंसे कुछ पहले से ही जटिल थे, किन्तु स्वतन्त्रता बड़ी अद्भुत औषधि है। एक बात और है, जो बच्चा घरमें 'समस्या' होता है वह स्कूलमें 'समस्या' नहीं भी हो सकता है। कुछ वर्ष पहले एक लड़केको भारी समस्या समझकर मेरे पास भेजा गया। आज तक उसमें जटिलताका एक भी चिह्न नहीं दिखाई पड़ा है।

लेकिन मैं उदाहरणकी बात कर रहा था, उन्हींको लें।

चार वर्षकी एक लड़की मेरे पास जटिल समझकर लायी गयी। उसकी मनःवृत्ति विनाशक थी और जरा-सी बात पर क्रोधित होकर चीखने चिल्लाने काटने लगती थी। मैं बड़े चक्करमें पड़ा, क्योंकि अभिभावकोंने लड़कीके जीवनका जो इतिहास बताया था उसमें उसके इस प्रकारके व्यवहारके लिए मैं कोई कारण न पा सका। उसके माता-पिता मुझे विश्वास

दिखाया कि उनका घरेलू जीवन सुखी था। उस लड़कीका सबसे खराब व्यव हार छुट्टियोंके बाद घरसे लौटनेपर होता था। मैं जानता था कि घरमें कुछ न कुछ गड़बड़ है, किन्तु वह गड़बड़ क्या थी, यह मैं न जान सका। चार साल बाद मुझे पता लगा कि पति पत्नीके सबन्ध वर्षोंसे खराब थे। अन्तमें जब वे एक दूसरेसे अलग हो गए तो लड़कीकी घृणा, क्रोध, आदि सब जाते रहे।

बरट्रैंड रसलने हाल ही में इस (जो आपके हाथमें है) पुस्तककी पांडुलिपि पढ़ी थी, मुझे लिखा "जटिल बालकोंके मूल कारण अभिभावकोंके आपसी झगड़ों पर तुमने जितना जोर दिया है मैं उससे कहीं अधिक जोर देता।"

अपने साथी शिक्षककी इस बातका मैं स्वागत करता हूँ। कई बच्चे अभिभावकोंके आपसी झगड़ोंके कारण जटिल बन जाते हैं। बच्चोंके चिड़चिड़े स्वभावका कारण घरका झगड़ालू वातावरण होता है। बच्चे जब क्रोध करते हैं, तो वास्तवमें वह क्रोध एक या दोनों अभिभावकोंके प्रति होता है। क्रोध करनेवाला बच्चा क्रोधावस्थामें सदा आतंकित रहता है। बच्चोंका क्रोध लगभग सदा विशिष्ट प्रकारका (Typical) होता है। एक लड़का अपने साथियोंके साथ खेल रहा है, वह शिकायत करनेके लिए आता है कि बिलीने उसे पीट दिया (पीटने वाला हमेशा उम्रमें बड़ा होता है), वह क्रोधसे काँपता होता है और बिलीको मार डालनेकी धमकी देता है। वह हथौड़ी या पत्थर उठा लेता है और जोरसे चीखता है, दूसरे बच्चोंको डरानेमें वह अक्सर सफल हो जाता है। किन्तु जब वह पत्थर फेंकता है तो निशाना चूक जाता है। उसका उद्देश्य आक्रमक भाव दिखाकर अपने आतङ्कको छिपानेका होता है। अक्सर वह माँ पर चिल्लाने वाले पिताकी नक़ल करने की कोशिश करता है। उसे यह भी डर होता है कि अन्य बच्चे सत्य जान जायेंगे—कि उसके माता-पिता झगड़ते हैं। एक छः वर्षीय लड़का जब कभी उसे घरसे मिठाइयोंकी पार्सल मिलती थी, तब वह क्रोधमें पागल हो जाता था। उसके माता पिता आपसमें बुरी तरह झगड़ते थे। पार्सल मिलनेपर लड़का अपने पिताकी आवाज और भावकी नक़ल करने लगता

पितृ-चकेतके प्रति उसकीघृणा समाप्त हो। तब मैं सहन कर लूँगा, किन्तु शरीर कमजोर होता है, और महीने भर बाद मैंने इसे बन्द कर दिया, उसके पाससे गुजरते समय जब उसने मुझे धक्का मारा तो मैंने रुककर कहा—'मैं तुम्हें बताऊँ तुम मुझे क्यों धक्के मारते हो ? तुम्हारे पिता तुम्हे मारते थे, जिस जिस अध्यापकसे तुम्हारा वास्ता पड़ा है, उसने तुम्हें पीटा है। तुम मार खाना चाहते हो और इसीलिए तुम मुझे इतना गुस्सा दिलाना चाहते हो कि मैं तुम्हें पीटने लगूँ। लेकिन तुम मुझे बरसों तक परेशान करते रहोगे तो भी मैं तुम्हें हाथ नहीं लगाऊँगा।'

इसके बाद फिर कभी उसने मुझे नहीं छुआ। तीन वर्षके पश्चात्, जब वह सुधरकर अच्छा हो गया, एक दिन उसने मुझसे पूछा—'मैं तुमसे मार क्या खाना चाहता था ?' मैंने उसे बताया कि इसके पीछे एक महत्वपूर्ण हेतु यह था कि मार खानेसे अपराध 'धुल जाता है, दण्ड पानेके बाद अपराधी अपने आपसे कहता है—'मैंने कीमत चुका दी, अब मैं पुनः अपराध कर सकता हूँ।'

यह लड़का इतना अच्छा था कि इसके विषयमें मैं कुछ अधिक बताना चाहता हूँ। पाँच वर्षकी उम्रसे उसकी चोरी करनेकी आदत पड़ गई थी। उसकी माँने उसे उसके भाईके पास कनाडा भेज दिया। वह वहाँ एक पतलून और एक कमीज लेकर पहुँचा बाकीके कपड़े उसने खलासियोंको बेच दिए थे। वह कुछ सप्ताह तक अपने चाचाकी 'फार्म' पर रहा, किन्तु उतने ही समयमें वह १५० पौण्डका कर्जा कर बैठा। उसके चाचाने उसे पीटा और उसे घर भेज दिया। जहाजसे जिस समय वह साउथेम्पटन पहुँचा उस समय उसके पास एक पतलून और एक कमीज थे।

जब वह मेरे यहाँ आया तो पहले वर्षके दौरानमें तीन बार उसने मेरा रेडियो बेचा और अक्सर वह मेरी मेजसे पैसे चुरा लेता था। किन्तु वह ईमानदार चोर था, झूठ नहीं बोलता था। एक दिन मैंने देखा कि मेरे रेडियोके सभी 'वॉल्व' गायब हैं तो मैंने उससे कहा—'जिम ! इन दपे 'वॉल्व' कहाँ बेच हैं ?' उसने मुझे सब सच बता दिया और मैंने जाकर उन्हें पुनः खरीद लिया। एक दिन उसने मुझसे कहा—'मैं तुम्हें समझ नहीं

पा रहा हूँ।'

'क्या मतलब, जिम ?'

'ये चोरी जो मैं करता हूँ मैं जब तुम्हारे 'बॉन्ड' बेच देता हूँ तो तुम आगबबूला होकर मुझे पीटते क्यों नहीं ?'

अगर मैं ऐसा करूँ तो तुम्हें पसन्द आएगा ?' मैंने पूछा।

'जरूर' वह बोला, 'तुम जब मुझे कुछ नहीं कहते हो तो मैं शर्मसे मर जाता हूँ।'

मैं कभी यह नहीं चाहता था कि वह अपने आपको तुच्छ और गया गुजरा समझे, अत जब उसने दूसरी बार चोरी की तो मैंने गालियोंकी बौछार कर दी। उसकी दशा हण्टरसे पीटे हुए कुत्तेकी सी हो गई।

'तुम्हारे व्यवहारसे मुझे अपने आप पर बड़ी शर्म आती है।' उसने कहा और हम दोनों जी खोल कर हँस पड़े। ऐसे लड़कोंके साथ बहुत बड़ा खतरा यह होता है कि वे 'आपको' अपना आदर्श बना लेते हैं। ऐसे लड़कोंको मुझे अपना ईश्वर' बना लेनेसे रोकनेके लिए कभी-कभी मुझे अभिनय भी करना पड़ता है। जब मैं लाइम रेन्जमें था, तो मेरे पास एक लड़का था। वह चोरी करता था, क्योंकि उसके धार्मिक अभिभावकोंने उसमें 'पश्चात्ताप ग्रंथि' उत्पन्न कर दी थी चोरी करनेके पश्चात् घोर पश्चात्ताप करने पर भगवान् मुझे क्षमा कर देगा। एक दिन रातको मैंने उसके पास जाकर धीरेसे कहा 'टॉम, पड़ोसकी कुछ मुर्गियाँ चुरानी हैं। तुम मेरी सहायता करोगे ?'

टॉम विस्मित हो गया और वह इस प्रकार देखने लगा मानो उसे विश्वास नहीं हो रहा है। जब मैंने उसे डाँट दी और हम चहारदीवारी लाँघ कर अन्दर गए तो उसमें तीव्र उत्साह जाग पड़ा। हमने चार मुर्गियाँ चुरा कर मेरे दरबेमें बन्द कर दीं प्रात काल वे उड़ कर अपने स्थान पर चली गईं। टॉमने उनके चले जानेका कोई ख्याल नहीं किया; उसका एकमात्र विचार था—'नील मेरे ही समान बुरा है।' यह उसके लिए आवश्यक था, मैं उसका 'ईश्वर' था पिता सदा 'ईश्वर' होता है और मैं उसके ईश्वरको आसमानसे उतार कर जमीन पर लानेका प्रयत्न कर रहा था।

यह क़िस्सा उन लोगोंको चक्करमें डाल देता है, जो मेरी इस बातसे सहमत हैं कि अभिभावकों और अध्यापकोंको बच्चोंसे बिलकुल ईमानदारीसे व्यवहार करना चाहिए। मैं एक ओर तो ईमानदारीकी बात करता हूँ और दूसरी ओर चोरीका अभिनय करता हूँ। यह क्यों? मेरा उत्तर यह है कि चिकित्सामें झूठ कभी-कभी आवश्यक होता है, जैसे बच्चेके मर जानेपर भी हम रुग्णा माँसे यही कहते हैं कि उसका बच्चा अच्छा है। मैं अभिभावकोंके मौलिक झूठ—कि चोरी करना बुरा है, क्योंकि चोरसे ईश्वर घृणा करता है—के प्रभावको नष्ट करनेके लिए झूठ बोला था। साधारणत यदि कोई मेरे रेडियो वॉल्व चुराता तो मैं अवश्य क्रुद्ध होता और अपना क्रोध साफ़-साफ़ बाहिर कर देता, किन्तु उल्लिखित बच्चेके मामलेमें मुझे जान-बूझ कर झूठ-मूठ दिखाना पड़ा कि मैं परवाह नहीं करता, क्योंकि यदि मैं प्रतिक्रिया-स्वरूप क्रोध प्रकट करता तो उसके मनमें यह झूठ सदाके लिए घर कर जाता कि जीवनमें पितासे सिवा घृणाके और कुछ मिल ही नहीं सकता। इसके अलावा, मुझे सचमुच कभी गुस्सा नहीं आता था, क्योंकि मेरे लिए रेडियो सुननेसे बच्चेके हेतुको समझना अधिक महत्वपूर्ण था। मुझे एक ऐसी सन्ध्या याद आ रही है, जब मैंने अपना क्रोध छिपाया था मैं क्लैपहम और डायरको सुनना चाहता था और जिम 'वॉल्व' लेकर चलता बना था।

जिमने पिताका प्यार न मिलनेके कारण चोरी करना प्रारम्भ किया था वह सांकेतिक रूपसे प्रेम 'चुराता' था और उसके सुधरनेका कारण यही था कि उसने मुझमें एक नया पिता पाया, जो उससे प्यार करता था। उसका अपना पिता एक आदर्शवादी व्यक्ति था और वह चाहता था कि उसका पुत्र जीवनमें सफल हो। जबसे जिम पढ़ने योग्य हुआ, तबसे उसके पिताने उसे पुस्तकोंसे हटने नहीं दिया। इस प्रकार जिमकी खेलनेकी निसर्ग प्रेरणा लुप्त पड़ गई उसे उसके जीवनहीसे वंचित करदिया गया था, अत उसके चोरी करनेमें प्रेम चुरानेसे भी कुछ अधिक बात थी उसके चोरी करनेमें शिशु जीवन चुरानेका प्रयत्न भी था। मैं जिस बातपर ज़ोर देना चाहता हूँ वह यह है कि योग्य बच्चे ही ग़लत मार्ग-दर्शनसे पथ-भ्रष्ट होते हैं। मैं कई

लड़कोंको जानता हूँ, जिनके महत्वाकांक्षी अभिभावकोंने उन्हें कभी पुस्तकोंसे हटने नहीं दिया, किन्तु उन्होंने उसका कभी विरोध नहीं किया; वे बड़े मिहनती विद्यार्थी बने और जीवनमें आगे चल कर नीरस प्रोफ़ेसर या रेलवे कुली बन गए। तेज लड़के ऐसे वातावरणमें सदा दुष्ट हो जाते हैं, तेज लड़कियाँ काटने-नोचनेमें जीवन व्यक्त करती हैं।

अब मैं एक ऐसे लड़के का उदाहरण देता हूँ जो पिताके दृष्टिकोण को चुपचाप बिना विरोध किए मान लेता है। मार्क ग्यारह वर्षका था। उसकी माँ धार्मिक थी और अपने गाँवके चर्चमें बाजा बजाती थी। वह सुबह और शाम दोनों समय प्रार्थना करता था। उसे संगीत में रुचि थी और उसे केवल 'क्लासिकल संगीत पसन्द था, वह 'जाज' को निम्न कोटि का संगीत समझता था शैतान का। उसकी दृष्टि कमजोर थी और वह चश्मा लगाता था।

अध्यापकों में से एकने आकर मुझसे कहा कि उसने चश्मा पहनना छोड़ दिया है। मैंने उसे अपने अध्ययन-कक्षमें बुलाया।

'तुमने चश्मा पहनना छोड़ दिया?' मैंने पूछा।

'हाँ।'

'क्यों?'

'मैं उससे ऊब गया हूँ।

'अगर नहीं पहनोगे तो जानते हो क्या होगा?' मैंने पूछा।

वह मुस्करा उठा।

'अंधा हो जाऊँगा।' उसने शीघ्रतासे कहा।

'तुम तो ऐसे कह रहे हो मानो तुम अंधे होना चाहते हो।' मैंने कहा।

'हो जाऊँगा तो मुझे अफ़सोस नहीं होगा।'

'मुझे किसी ऐसे आदमीका नाम बताओ जो अंधा हो। मैंने कहा।

'हैन्डिल,' वह एक दम बोला फिर कहा 'मैं भी एक संगीत-लेखक बनना चाहता हूँ।'

मनोविज्ञानमें ऊपरी हेतुओं पर ही नहीं रुक जाना चाहिए। मैं जानता

था कि संगीत लेखक बननेका उद्देश्य वास्तविक नहीं था, अतः मैंने और नीचे जानेका प्रयत्न किया।

'अंधे होनेसे और कोई अच्छी बात होती है?' मैंने पूछा

'हाँ, मेरा आइनेमें देखना बन्द हो जायगा।

तुम आइनेमें क्यों नहीं देखना चाहते?

'क्योंकि मैं बदसूरत हूँ।' कहते कहते उसका मुँह तमतमा आया।

संगीत-लेखक बननेमें उपरोक्त हेतु अधिक गहरा था, किन्तु मैं निश्चित रूपसे जानता था यह मूल हेतु नहीं है। अपने चेहरेकी नापसन्दगीके पीछे एक और भारी बात छिपी हुई थी स्वयकी आत्मासे नफ़रत। ग्यारह वर्षका कोई स्वस्थ बच्चा यह नहीं सोचता कि वह कैसा लगता है। मैंने उससे आँखों पर बात करनेका निश्चय किया।

'आँख क्या होती है मार्क?

समझानेमें वह कठिनाईका अनुभव कर रहा था।

ऐसी चीज जिससे देखा जा सके।'

'आँखका वर्णन करो।'

'एक अण्डाकार चीज!' वह रुक गया, फिर बोला 'किन्तु उसमें दो पुतलियाँ होती हैं मेरा मतलब है कि प्रत्येक आँखमें एक पुतली होती है।'

'ठीक है। तुमने दो पुतलियाँ कहा था न?'

वह रहस्यमय ढंगसे मुस्करा उठा।

हाँ,-वह बोला— मैं जानता हूँ तुम कौन-सी पुतलियोंकी बात कर रहे हो।"

'स्पष्ट ही तुम उनके बारेमें भी सोच रहे हो'—मैंने कहा और वह ज़ोरसे हँस पड़ा।

इडीपसकी कहानीमें लिखा है कि जब इडीपस को पता लगा कि उसने अपने पिताको मार कर अपनी माँ से शादी कर ली है तो इडीपसने अपनी आँखें निकाल लीं अर्थात् सांकेतिक रूपसे उसने अपने आपको अण्डकोषच्छेदन करके नपुंसक बना लिया। मार्क भी, चश्मा पहनना छोड़ कर, वही ढंग काम में ला रहा था—उसका अचेतन हेतु था—'अगर मुझमें लिंगप्रणाली होगी ही

लड़कोंको जानता हूँ, जिनके महत्वाकांक्षी अभिभावकोंने उन्हें कभी पुस्तकोंसे हटने नहीं दिया, किन्तु उन्होंने उसका कभी विरोध नहीं किया, वे बड़े मिहनती विद्यार्थी बन और जीवनमें आगे चल कर नीरस प्रोफ़ेसर या रेलवे कुली बन गए। तेज लड़के ऐसे वातावरणमें सदा दुष्ट हो जाते हैं, तेज लड़कियाँ काटने-नोचनेमें जीवन व्यक्त करती हैं।

अब मैं एक ऐसे लड़के का उदाहरण देता हूँ जो पिताके दृष्टिकोण को चुपचाप बिना विरोध किए मान लेता है। मार्क ग्यारह वर्षका था। उसकी माँ धार्मिक थी और अपने गाँवके चर्चमें बाजा बजाती थी। वह सुबह और शाम दोनों समय प्रार्थना करता था। उसे संगीत में रुचि थी और उसे केवल 'क्लासिकल' संगीत पसन्द था, वह 'जाज' को निम्न कोटि का संगीत समझता था शैतान का। उसकी दृष्टि कमज़ोर थी और वह चश्मा लगाता था।

अध्यापकों में से एकने आकर मुझसे कहा कि उसने चश्मा पहनना छोड़ दिया है। मैंने उसे अपने अध्ययन-कक्षमें बुलाया।

'तुमने चश्मा पहनना छोड़ दिया ?' मैंने पूछा।

'हाँ।'

'क्यों ?'

'मैं उससे उकता गया हूँ।

'अगर नहीं पहनोगे तो जानते हो क्या होगा ?' मैंने पूछा।

वह मुस्करा उठा।

'अंधा हो जाऊँगा।' उसने शीघ्रतासे कहा।

'तुम तो ऐसे कह रहे हो मानो तुम अंधे होना चाहते हो।' मैंने कहा।

'हो जाऊँगा तो मुझे अफ़सोस नहीं होगा।'

'मुझे किसी ऐसे आदमीका नाम बताओ जो अंधा हो। मैंने कहा।

'डीलियस,' वह एक दम बोला फिर कहा 'मैं भी एक संगीत-रचयिता बनना चाहता हूँ।'

मनोविज्ञानको ऊपरी हेतुओं पर ही नहीं रुक जाना चाहिए। मैं जानता

था कि संगीत लेखक बनाऊं। न हृदय व स्नायिक नहीं था अत मैंने और नीचे जानेका प्रयत्न किया।

'अन्धे होनेसे और कोई अच्छी बात होती है ?' मैंने पूछा।

'हाँ, मेरा आइनेमें देखना बन्द हो जायगा।

'तुम आइनेमें क्यों नहीं देखना चाहते ?

'क्योंकि मैं बदसूरत हूँ।' कहते कहते उसका मुँह तमतमा आया।

संगीत-लेखक बननेमें उपरोक्त हेतु अधिक गहरा था, किन्तु मैं निश्चित रूपसे जानता था यह मूल हेतु नहीं है। अपने चेहरेकी नापसन्दगीके पीछे एक और भारी बात छिपी हुई थी स्वयंकी आत्मासे नफरत। ग्यारह वर्षका कोई स्वस्थ बच्चा यह नहीं सोचता कि वह कैसा लगता है। मैंने उससे आँखों पर बात करनेका निश्चय किया।

'आँख क्या होती है मार्क ?

समझानेमें वह कठिनाईका अनुभव कर रहा था।

'ऐसी चीज जिससे देखा जा सके।'

'आँखका वर्णन करो।'

'एक अण्डाकार चीज !' वह रुक गया, फिर बोला 'किन्तु उनमें दो पुतलियाँ होती हैं मेरा मतलब है कि प्रत्येक आँखमें एक पुतली होती है।

'ठीक है। तुमने दो पुतलियाँ कहा था न ?

वह रहस्यमय ढंगसे मुस्करा उठा।

हाँ, वह बोला— मैं जानता हूँ तुम कौन-सी पुतलियोंकी बात कर रहे हो।"

'स्पष्ट ही तुम उनके बारेमें भी सोच रहे हो'—मैंने कहा और वह जोरसे हँस पड़ा।

इडीपसकी कहानीमें लिखा है कि जब इडीपसको पता लगा कि उसने अपने पिताको मार कर अपनी माँ से शादी कर ली है तो इडीपसने अपनी आँखें निकाल लीं अर्थात् सांकेतिक रूपसे उसने अपने आपका शिश्नोच्छेदन करके नपुंसक बना लिया। मार्क भी, अन्धा बनना चाह कर, यही ढंग काम में ला रहा था—उसका अचेतन हेतु था—'अगर मुझमें लिंगभावना होगी ही

नहीं, तो मुझे हस्तमैथुन करनेका प्रलोभन न होगा (उस हस्तमैथुन करनेके लिए कड़ा दंड मिल चुका था और यह ईश्वरसे उसे क्षमा कर देनेके लिए प्रार्थना कर रहा था)। अत यदि मैं अंधा हो जाऊँ (अपनी पुतलियाँ (Balls) ना दूँ) तो मैं धार्मिक बन सकता हूँ।'

इस उदाहरणसे घरमें बच्चों पर जबरदस्ती धर्म लादनेके खतरे स्पष्ट हो जायेंगे। बच्चे के लिए धर्म सदा लिंगपणासे सबंध रखता है और इस प्रकार भाव विरोधको जन्म देता है,"—ईश्वर और शैतान पवित्रता और अपवित्रता आदि। मार्क बड़ा डरपोक है, अँधेरेसे चोरोंसे, आयनसे डरता है। वह जीवनके पापसे मुक्त होना चाहता है। स्टकल का कहना है कि आत्म हत्या द्वारा व्यक्ति अपने पापपूर्ण शरीर को ईश्वरको समर्पित करता है।

अब मैं धर्म और कामकी बात सोचता हूँ तो पाता हूँ कि बाह्य रूपों में भी उनमें एक निश्चित संबंध होता है। मैं ऐसी कुछ लड़कियों को जानता हूँ जो प्रति रविवार भजन गानेवाले लड़कों को देखनेके लिए जाती हैं। फिर, चर्चमें तरह तरहके वस्त्राका खासा अच्छा मेला लग जाता है। मुझे याद है कि तरहसे उन्नीस वर्ष की उम्र तक, मैं चर्च इसलिए जाता था कि मेरे सामने बैठनेवाली लड़की पर मेरी तबियत आ गई थी हालांकि लड़की हमेशा बदलती रहती थी। धर्म और काममें विरोधक व्यक्ति अपने प्रति उन्हीं भावनाओंको आकर्षित करता है, जो किसी वर्जित वस्तुके प्रति हो सकती है—ठीक उसी प्रकार, जैसे मार्ककी यौनभावना अंधे होकर, अपने आपको नपुंसक बना कर काम भावना को नष्ट करनेमें प्रकट हुई थी। धर्म और निगर्सकेत वादके बारेमें बहुत मनोवैज्ञानिकोंने लिखा है किन्तु मेरी रुचि तो आमतौर पर बच्चों की धार्मिक शिक्षाके प्रति होनेवाली प्रतिक्रिया का अध्ययन करने है। और मैंने पाया है कि जिस जिस धर्ममें ईश्वर प्यार और पापी स्वभाव का होता है, उस धर्मके अन्तर्गत पलने वाले बच्चे बहुत दुखी होते हैं।

कभी-कभी धार्मिक उपदेशोंसे उत्पन्न विकृतियाँ नष्ट करना असंभव होता है। यहूदियोंके बच्चोंमें मैंने यह विशेषकर पाया है। अमर्न में यहूदी बच्चोंसे मेरा काफी वास्ता पड़ा था। एक विशिष्ट उदाहरण देता हूँ। एक बच्चेको कठिन समझकर मेरे पास भेजा गया। जिसने काम दुर्व्यवहारके कारण

घर भरको परेशान कर रखा था, जो ज़रा-ज़रा सी बातपर क्रोधसे काँपने लगता था और चीज़ोंको नौकरोंपर फेंका करता था। वह अपने पिताके होटलमें ग्राहकोंको गाली देता था और उन्हें 'सूअर' कहा करता था। उसकी माँ उसे मेरे पास लाई। पर छोड़ जानेसे पहिले उसने उससे प्रतिदिन प्रार्थना करनेका वचन ले लिया। जल्दी ही लड़केके मनमें घर और स्कूलके आदर्शोंको लेकर भीषण द्वन्द्व मच गया। हस्त-मैथुनके विषयमें भी उसके मनमें सदा द्वन्द्व छिड़ा रहता था। कुछ महीनों बाद घर भागकर उसने अपने हृदयसे छुटकारा पाया। कुटुम्बकी परम्पराने विजय पाई। उसके बाद उससे मैं नहीं मिला। मैं सोचता रहता हूँ कि उसका क्या हुआ होगा! सभवत वह अब पिता बनकर अपने बच्चों के मनमें भगवानका भय पैदा करके उनकी मानसिक दशाको विकृत करनेमें लगा हुआ होगा!

अक्सर मेरे पास ऐसे बच्चे आते हैं जो एक विचित्र ग्रंथिसे पीड़ित होते हैं। ऐसी लड़कियाँ जिनके अभिभावक पुत्रकी कामना करते थे। 'दी वैल ऑफ लोनलीनेस' जिसपर प्रतिबन्ध लगाकर अधिकारियोंने विचित्र मूर्खताका परिचय दिया था के लेखकने यह बतानेका प्रयत्न किया है कि ऐसे अभिभावकोंकी पुत्रियाँ स्वलिंगकामुक हो जाती हैं। मैंने ऐसीही लड़कियोंको देखा है। उनमें मैंने स्वलिंगकामुकताके तो कोई चिन्ह नहीं पाये किन्तु हाँ, स्त्रीत्वके साथ उनकी प्रकृति मेल नहीं खाती थी।

सोलहवर्षीय लूसी एकलौती पुत्रीको बचपन ही से यह बताया गया कि 'पिताजी उसके स्थानपर पुत्र चाहते थे। वह निकर पहनना पसन्द करती थी इटन फैशनके बाल रखती थी, पुरुषके समान चलती-बोलती थी किन्तु जहाँ तक लिंगपरकता प्रश्न है उसकी रुचि लड़कों में ही थी। किन्तु वह ऐसे ही लड़कोंके प्रति आकर्षित होती थी जो स्त्रैण होते थे। उसे उनमें झगड़नेसे ज्यादा मज़ा और किसी चीज़में नहीं आता था। वह अपने पितासे सदा झगड़ती रहती थी और सदा उनकी आज्ञाका विरोध करती थी, किन्तु अचेतन रूपसे वह अपने पिताको प्रसन्न रखना चाहती थी। अपनी माँके साथ वह अपने पिताके समान व्यवहार करना चाहती थी। उसका जीवन पिता माता, पति-पत्नी, स्त्री पुरुष और अपने स्त्रीत्वके बीचमें दोलायमान था, मन जीवन

किन्तु जीवनके प्रति माताओंका रुख सदा क्रूर और रूखा रहेगा । वह (बच्चा) अपराधियोंको कोड़े मारना और विकृतमना लोगोंको सजा देना उचित समझेगा । पीटनेसे सहृदता नहीं उत्पन्न होती और आज संसारको सबसे अधिक आवश्यकता सहृदय व्यक्तियोंकी है । हमारी सहृदयताके मापदण्ड भी तो बड़े विचित्र हैं । मुर्गीके बच्चोंको मारनेपर मुझे कड़ा दण्ड दिया जायगा, किन्तु बाजारमें जाकर चूहे मारनेका विष मैं खुलेआम खरीद सकता हूँ । सहृदयता भी, लगता है, आर्थिक होती है मुझे मुर्गीके बच्चोंके प्रति सहृदय होना चाहिए क्योंकि वे अंडे देंगे किन्तु समाज सेवाके नामपर चूहोंपर मैं कहर-वर्षा कर दूँ तो कोई कुछ न कहेगा ।

लेकिन मैं फिर भटक गया ! मुझसे अधिक कोई लेखक नहीं भटकता । शिक्षाविषयक पुस्तकें मुझे बड़ी नीरस मालूम होती हैं, क्योंकि उनमें लेखक हमेशा अपने विषय पर ही अड़ा रहता है । भटकना लेखन कलाका उत्तम पहलू है ।

एक मित्रका, जिन्होंने इस किताबके प्रूफ देखे हैं, कहना है कि 'मैं' हस्तमैथुनको बहुत अधिक महत्व देता हूँ । मेरा कहना यह है कि बाल-मनोवैज्ञानिकको जब प्रमाण ही ऐसे मिलें कि बच्चेके दुख और उसकी मानसिक विकृतियों के अधिकतर कारण हस्तमैथुनका 'हौआ' है, तो वह क्या करे ? मैं आपको, हस्तमैथुन भयसे पीड़ित बच्चोंके उदाहरण देता हूँ ।

चौदह-वर्षीय फ्रेड किसी काममें मन नहीं लगा सकता था । वह अपनी उँगलियोंके जोड़ोंको दबा कर जोरसे आवाज करता था । इसका शारीरिक कारण कुछ भी नहीं था । स्पष्ट ही यह प्रकृतिका चिह्न था । हर कार्यका कारण अवश्य होता है । लोग फ्रेडको डाटते थे— ईश्वरके लिए, फ्रेड ये शोर बन्द करो !' फ्रेड प्रयत्न करता किन्तु असफल रहता था क्योंकि असली कारण तो उसके अचेतन मनमें था और उसपर उसका कोई वश नहीं था ।

एक दिन जब वह अपनी उँगलियोंको सदासे अधिक चटका रहा था तो मैंने उससे कहा— क्या तुम और किसीको जानते हो जो ऐसे ही करता है ?'

हाँ', उसने कहा, 'केम्ब्रिजमें एक आदमी है ।'

'क्या नाम है उसका ?

'मि नेविसन ! कुछ कुछ धार्मिक प्रवृत्तिका आदमी है।'—वह बोला।

'नेविसनके हिज्जे क्या हैं ?'–मैंने पूछा।

'ठीक नहीं मालूम लेकिन शायद(NEVERSIN)है।'उसने कहा।

तब मैंने उसको समझाया—'तुम कहते हो मि॰ नेविसन धार्मिक हैं। अच्छी बात है। तुमने अपने आपसे कहा—"अगर मैं भी उन्हींके समान धार्मिक हो जाऊँ तो फिर मैं हस्तमैथुन नहीं करूँगा। और भी, मैं अपने माता पिताको दिखा सकूँगा कि मैं ऐसा आदमी हूँ जो कभी पाप नहीं करता। तो अब मैं अपने जोड़ोंको चटकाता हूँ तो दुनियासे कहना चाहता हूँ–मेरी ओर देखो! मेरा उँगली चटकाना प्रमाणित करता है कि मैं हस्तमैथुन नहीं करता।'

उसका उँगली चटकाना उसी क्षण बन्द हो गया, किन्तु यह केवल 'लक्षण चिकित्सा' थी। वह लड़का नहीं सुधर सका, क्योंकि उसकी माँने उसे बचपन ही से कहना आरंभ कर दिया था कि यदि वह हस्तमैथुन करेगा तो उसका परिणाम बड़ा बुरा होगा। माँने अपनी गलती कभी स्वीकार नहीं की। बच्चा आज दुखी है, शंकाशील है, आलोचनात्मक है, वह न कुछ सीख पाता है और न कोई निश्चय पर पाता है। यह सब उस अनजानकी नासमझीका परिणाम है।

दो लड़कोंके मानसिक छेदन उनके शरीर पर भी अपना प्रभाव डाला,—वे बार-बार, तरह-तरहकी बीमारियोंसे ग्रसित रहते हैं। मैं बड़े-बड़े अक्षरोंमें यह भयानक सत्य लिखना चाहता हूँ कि 'माताके शब्दोंमें वेद-वाक्यकी शक्ति होती है।'

मिरगीकी बीमारीका विश्लेषण करना मेरा काम नहीं है, किन्तु मेरी धारणा है 'फिट' विस्तरमें पिशाब करनेके समान छिपी हुई संभोग-क्रिया या छिपे हुए अपराध कम होते हैं। 'फिट' रोगीको मृतकोंके प्रति हिंसा करने से रोक देता है, क्योंकि वह अपने-आपके प्रति हिंसक हो जाता है। इस बात की तुलना स्टेकेलकी इस बातसे करिए—'जब तक पहले दूसरोंको मारनेकी इच्छा न हो कोई आत्म-हत्या नहीं करता।

चौदह-वर्षीय रोगीको उसके माँ-बापने बताया था कि हस्तमैथुन महा पाप है। वह मुझे बराबर प्रश्न पूछता रहता था—और प्रश्न नपुंसकताके भय

से प्रेरित होते थे, जैसे 'क्या टहनी काट देनेसे वृक्ष मर जाता है?' 'अगर यहाँसे यह पहिया निकाल दें, तो क्या इंजन चल सकेगा?' और अगर रोगी किसी एक टाँग वाले आदमीको देखता, तो उत्तेजित हो जाता था। इस उदाहरणमें भी अभिभावकोंने अपनी भूल माननेसे इनकार कर दिया। नतीजा यह हुआ है कि लड़केका मन किसी काम में नहीं लगता क्योंकि वह बराबर यही सोचता रहता था —'क्या मेरे माता-पिता वास्तवमें सच कहते थे?' और उन्होंने उससे यह भी कहा था कि यदि वह हस्तमैथुन करेगा, तो बड़ा होकर नपुंसक हो जायगा। लेकिन म इन नीतिवान पिताओंसे कहना चाहता हूँ कि उनके उपदेशोंसे उनके बच्चे कभी हस्तमैथुन करना बंद नहीं करेंगे।

जिस अनैतिक रुखकी बात मैं अभिभावकोंसे कहता हूँ, उससे उच्छृंखलता कभी न फैलेगी, उलटे उससे हस्तमैथुन बहुत कम हो जायगा। हस्तमैथुनमें एक जबरदस्त हेतु होता है—पाप करने और पछतानेकी विकृत अनिवार्यता। कुछ बच्चोंको संभोग क्रियासे अधिक पश्चाताप करनेम चरम विषमानन्दानुभूति होती है। शिक्षाकी समस्याओंमें हस्तमैथुनकी समस्या सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। अभिभावकोंका आजका रुख हजारों बच्चोंको दुखी बना रहा है। निषेधों और 'हौओं' से आदमी अपने आपसे घृणा करने लगता है और अपने आपसे घृणा करने वाला कभी न कभी अपनी घृणाका दूसरों पर उत्प्रेक्षण (Projection) करता ही है। "हस्तमैथुनसबंधी हौए का लोप संसार भरके राष्ट्रसंघोंसे भी अधिक शांति स्थापित करेगा, क्योंकि वह व्यक्ति व्यक्तिकी आत्माको शांति प्रदान करेगा, और परिणाम-स्वरूप संसारको भी।'

— x —

मेरी 'जटिल बालक' नामकी पुस्तक १९२७में प्रकाशित हुई थी। किताब जब छप रही थी, तभी मुझे लगा कि मैं समस्याकी जड़ तक नहीं पहुँचा हूँ। नन्हे बढ़ते हुए वृक्षों (बच्चों) को देखनेमें मैं जंगल (अभिभावक) का ध्यान भूल गया था। अभिभावक भी बच्चोंके समान हमारी सहानुभूति और समझके पात्र हैं, घृणा या दोषके नहीं। अभिभावकोंको बच्चोंको समझनेका कभी अवसर मिला ही नहीं, क्योंकि बच्चोंको समझना ज्योतिष या गणितके समान, निपुणताका काम है और इसमें नैपुण्यकी आवश्यकता हाल ही में महसूस की गई है, क्योंकि फ्रॉयडके पहले का मनोविज्ञान मानवके चेतन-मन ही में सत्यको टटोलता रहा था। फ्रॉयडने आकर बताया कि सत्य अचेतन-मनमें होता है।

इथेल मनिनने अपनी पुस्तक 'बच्चा और व्यवहार ज्ञान (Commonsense)' में लिखा है—'मेरा विश्वास है कि पंचानबे प्रतिशत बच्चे सुखी हो सकते हैं, अगर उन्हें अपने अभिभावकोंसे बचपन ही से दूर कर दिया जाय।' हालाँकि मैं इस पुस्तकका बड़ा प्रशंसक हूँ किन्तु मैं इथेलसे पूछना चाहता हूँ कि वह इन पचानबे प्रतिशत का क्या करेंगी? उन्हें किसको सौंपेंगी? आखिरकार, मनोवैज्ञानिक प्रणालीसे बच्चोंके साथ व्यवहार करने वाले लोग हैं कितने? लन्दनमें कुछ चिकित्सालय हैं, जिनमें डॉ मारगारेट लोवेनफ़ेल्ड जैसी डॉक्टरनियाँ बहुत अच्छा चिकित्सा-कार्य कर रही हैं, किन्तु इंग्लैंडके पचानबे प्रतिशत बच्चोंको तो चिकित्सालयोंमें नहीं भेजा सकता। बहुत कम

स्कूल ऐसे हैं, जिनमें मनोविज्ञानकी आधुनिक प्रणालीका प्रयोग किया जाता हो। और यदि यह मान भी लिया जाय कि हम पच्चानवे प्रतिशत बच्चोंके लिए हजारों 'घर' बना सकेंगे, तो भी बच्चे तो बचपनकी सबसे बड़ी आवश्यकता से वंचित रह ही जायँगे—याने अभिभावकोंका प्यार और उनकी देखरेख।

अत समस्याका एकमात्र हल यही है कि बच्चों को उनके अभिभावकों से दूर हटानेके बजाय अभिभावकों को ही इस योग्य बनाया जाय कि वे बच्चों के साथ उचित व्यवहार कर सकें। ईयेलका निदान बिलकुल ठीक है, पचानवे प्रतिशत बच्चे अपने घरोंके कारण दुखी हैं। ईयेलको और मुझे भी इसी अफसोसनाक हालत ने किताबें लिखनेके लिए प्रेरित किया है। मुझे कहते हुए प्रसन्नता होती है कि 'बच्चा और व्यवहार ज्ञान' के छपनेके बाद कई अभिभावकोंने मुझे लिखा कि इस पुस्तकसे प्रेरित होकर उन्होंने बच्चों के प्रति अपने व्यवहार को बदल दिया है।

अभिभावकों को नया बाल मनोविज्ञान समझानेके लिए एक बहुत अच्छा रास्ता यह हो सकता है कि उनके विषयमें पुस्तकें लिखी जायँ क्योंकि पुस्तकालय गरीबों का विश्वविद्यालय है। हमारी अभी हमारे शिक्षा-संस्थाएँ कोई सहायता नहीं करेंगी, हमारे विश्वविद्यालयोंके मनोविज्ञान-विभागों का संबंध मस्तिष्कके गति विज्ञान (Dynamics of mind) से अधिक प्रयोगात्मक मनोविज्ञान से है। प्रयोगात्मक-मनोविज्ञानके माप और उपकरण चिकित्सा-दृष्टिसे व्यर्थ होते हैं। बिस्तरमें पेशाब करने या चोरी करनेवाले बच्चेके साथ कैसे व्यवहार करना चाहिए, यह जाने बिना ही आजकल मनोविज्ञानमें बी एस सी करना संभव है। हमारे शिक्षासंबंधी पत्र, जिनसे प्रारंभिक बाल मनोविज्ञानका प्रचार करनेकी आशा की जा सकती थी बच्चे का कभी जिक्र ही नहीं करते। समाचारपत्रोंमें कभी-कभी बच्चों पर लेख निकलते हैं। किन्तु वे समस्या की गहराईमें नहीं जाते और वे जा भी नहीं सकते। क्योंकि समाचारपत्र 'काम (sex)' संबंधी स्पष्ट विचार नहीं छापते। 'दी डेली मेल' ने नूतन स्वास्थ्य आन्दोलन का समर्थन करके शारीरिक स्वास्थ्यकी बड़ी सेवा की थी। एक समय आएगा जब समाचारपत्र बच्चोंके मानसिक लालन पालनके विषयमें भी पाठकोंका ज्ञान बढ़ायेंगे। जब पढ़े-पढ़े

शॉ का 'पिगमेलियन' खेला गया तो एलिजा डूलिट्लके शब्द— 'नॉट ब्लडी लाइकली'—को समाचारपत्रों ने 'नॉट लाइकली' करके उद्धृत किया आज 'डैम' के समान 'ब्लडी' भी निर्दोष माना जाता है। डी एच लारेंस, जेम्स जॉयस, और युद्धके दौरानमें निकली कई पुस्तकों की सहायतासे पुन ऐसे शब्दोंका प्रयोग होने लगा है, जिन्हें अश्लील समझा जाता था। बोल चाल में तो उनका काफी प्रयोग सदासे था और है। मैं जब कहीं भाषण देता हूँ, तो सभ्यता का दिखावा करनेके लिए, किसी बोल-चालके सेक्स-संबंधी शब्द के स्थान पर वैज्ञानिक शब्द ढूँढनेमें मुझे बड़ी कठिनाई होती है।

अभिभावकों को शिक्षा देनेमें एक कठिनाई यह है कि शिशु बाल मनोवैज्ञानिक बहुत कम हैं और जो हैं वे आपस ही में एक दूसरेसे सहमत नहीं होते। इस समय मनोविज्ञान मत-मतान्तरों में बँटा हुआ है—फ्रायडियन यूगियन, एडलरियन आदि आदि। इनके विषयमें मेरा अपना मत यह है कि इनमें से एक भी बच्चे की प्रकृतिकी गहराईमें नहीं जाता। मेरे विचारमें मनो विश्लेषण पर मैंने जितनी पाठ्य-पुस्तकें पढ़ी हैं, उन सबसे अधिक होमर लेनकी पुस्तक 'टाक्स टु पेरेन्टस् एण्ड टीचर्स' में बच्चेकी प्रकृति को समझने का प्रयत्न किया गया है। बाल मनोविज्ञान डाक्टरोंके हाथमें चला गया है जब कि उसे शिक्षकोंके हाथमें होना चाहिए था। चिकित्सा दृष्टिकोणसे लिखी गई पुस्तकोंके महत्व को मैं स्वीकार करता हूँ, किन्तु 'गुदा-कामुकता' पर लिखी हुई पुस्तकसे अभिभावक को बच्चे की प्रकृति को समझनेमें कोई सहायता नहीं मिलेगी।

शिक्षकके दृष्टिकोण से बच्चोंको ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए कि आगे जाकर उसे मनोविश्लेषण करवाने की आवश्यकता ही न पड़े। विश्लेषणकी तुलना शल्य चिकित्सकके चाकूसे की जा सकती है, अगर लोग उचित भोजन और उचित व्यायाम करके स्वस्थ रहेंगे तो चिकित्सकके चाकू पर जंग लग जायगी (उसकी आवश्यकता ही न पड़ेगी, क्योंकि कोई बीमार ही न पड़ेगा-अनु०)। यदि अभिभावक बच्चों की प्रकृतिके मूल तत्व समझ जायें, तो मेरा बहुत-सा काम अनावश्यक हो जाए, मानसिक शल्य चिकित्सा मेरा बहुत समय ले जाती है।

इस पुस्तकमें मैंने शिशुओं पर बहुत नहीं लिखा है, क्योंकि अपने कामके दौरानमें शिशुओंसे मेरा बहुत वास्ता नहीं पड़ता। शिशुओं और शिशुशालाओं का मेरा व्यावहारिक अनुभव नहीं है, अत उनके विषयमें मैं जो कुछ कहता हूँ, वह दूसरोंके मुँहसे सुनी हुई बातें ही होती हैं। अर्थात् मैं शिशुओंको बड़े बच्चों—जिनसे मेरा काम पड़ता है—की आँखोंसे ही देख सकता हूँ। बाल्यावस्थाके प्रथम चार वर्षोंमें हमारे जीवन का मार्ग निश्चित हो जाता है, और हमारे जीवनकी विकृतियों का कारण इसी उम्रमें प्राप्तकी हुई विकृतियाँ होती हैं। और ये डर हममेंसे निकलते नहीं। समयके साथ ये अपना स्वरूप भले बदल लें, किन्तु भयका मौलिक विस्तार तो रहता ही है। 'ट्यूब'× में यात्रा करनेसे भय करने (विकृत होने) वाला व्यक्ति अपने बचपन में प्राप्त किए गये भयको एक वस्तु ट्यूब पर केन्द्रित कर देता है। और 'बस' में यात्रा करके जीवन को सह्य बना लेता है। स्टेकेल कहता है कि प्रत्येक भय अन्तत 'मृत्यु का भय होता है' किन्तु मेरे विचारसे यह कहना भी उतना ही सत्य है कि प्रत्येक भय 'जीवनका भय होता है।' जब जब माँ बच्चेको डाँटती फटकारती है,—'मत करो'—कहती है, तब-तब वह बच्चे में यही भय भर देता है।

बच्चा क्या है?

पहले-पहल बच्चा 'एकाकी व्यक्तित्व' होता है, वह गर्भमें बिलकुल अचेतन होता है, और उसका अचेतन-मन गर्भमें अन्य बच्चोंके समान ही होता है। अत हम बच्चेके अचेतन मनको 'अवैयक्तिक अचेतन' कहते हैं, क्योंकि वह सब बच्चों में एक सा होता है। बच्चा जब जन्म लेता है तो उसे जबरदस्ती एक नई दुनियाँमें धकेला जाता है। जन्मसे पहले तक वह सुरक्षित और आराममें था और उसे बिना प्रयत्न किये ही भोजन मिल जाता था। जन्मका अर्थ होता है—'संघर्ष और प्रयत्नका आरम्भ!' प्रथम परिच्छेदमें मैं जीवनके दो मुख्य तत्त्वोंके विषयमें लिख चुका हूँ—अधिकार प्रेरणा और उत्पादन (रचनात्मकता) की प्रेरणा। अधिकार प्रेरणा उत्पादन प्रेरणासे अधिक पहले आती है, क्योंकि गर्भका अर्थ संपूर्ण अधिकार और मग्न होना है और

× जमीनके नीचे चलनेवाली रेलगाड़ी।

प्रत्येक व्यक्तिमें इसी सुखको प्राप्त करनेकी अचेतन इच्छा सदा रहती है। बच्चा पहले-पहल इस सुखको माताकी सुखदायक छातीपर ढूँढता है। दूध छुड़ानेका मुख्य अर्थ बच्चेको भोजनसे वञ्चित करना नहीं होता, उसका (बच्चे के लिए) वास्तविक अर्थ होता है छातीके संरक्षण और सुखसे वञ्चित करना। हौमरलेन कहा करता था कि अधिकतर मानसिक विकृतियोंका आरम्भ इसी दूध छुड़ानेके कालसे होता है और मेरा विचार है कि वह सही कहता था।

मैं यह कह चुका हूँ कि जन्मके समय बच्चेमें अवैयक्तिक अचेतन होता है। जब माँ आगे चलकर उसकी अभिरुचिमें बाधा पहुँचाती है तो वह एक दूसरा अचेतन प्राप्त करता है—याने 'वैयक्तिक अचेतन' और चूँकि सबका लालन-पालन एक-सा नहीं होता, अत सबके 'वैयक्तिक अचेतन-मन' भी एकसे नहीं होते। शिशु-शालाओंका उद्देश्य जहाँ तक सम्भव हो वैयक्तिक-अचेतनका बनने से रोकनेका होना चाहिए, क्योंकि यही आगे जाकर उसका 'अन्तःकरण' (Conscience) बन जाता है। किसी भी आदमीके अन्तःकरणका अधिकांश भाग अचेतन होता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि बच्चेमें वैयक्तिक-अचेतन बनेगा ही, क्योंकि बच्चा गर्भसे पैर तक 'मैं' होता है और दूसरे 'मैं' का सामना करनेपर वैयक्तिक अचेतनका निर्माण होना अनिवार्य हो जाता है और इसे रोका भी नहीं जा सकता। किन्तु अभिभावकोंको अपने बच्चोंको उचित और अनुचित (गलत-सही) की भावनाओंसे भरा हुआ वैयक्तिक अचेतन पैदा करनेसे तो रोका ही जा सकता है। जब अभिभावक उसमें वैयक्तिक अचेतनका ज्ञान देते हैं तो बच्चेका व्यक्तित्व बँट जाता है। उसकी प्रकृति (इधर अवैयक्तिक अचेतन) दब जाती है और उसका अन्तःकरण (माता पिता बच्चेके लिए सदा भयंकर) कुछ और कहता है। बच्चेमें अच्छे और बुरेकी धारणाएँ जीवनके अनुभवोंसे प्राप्त करनी चाहिए न कि एक शक्तिशाली तत्व (Fact r) से—अपराधिकमन माता से। माँ, संरक्षण करनेवाली जीवन दायिनी, सुखदायिनी,—बच्चेके जीवनके प्रति दृष्टिकोणमें बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखती है, उसके नैतिक उपदेश द। इससे अच्छी तरह बाँध देते हैं। इस प्रकार बच्चा जीवनमें मातृत्वके प्रभाव कारण अंदर की ओर निष्क्रिय अधिकार भावनासे देखता है। जीवनके स्वाभाविक प्रवाहके

प्रति माँ उसमें डर भर देती है, और जीवनमें यदि कुछ है गी तो वह रच नात्मक क्रिया ही है। यदि हम रचनात्मक होना बन्द कर दें तो हमारी आध्या त्मिक मृत्यु हो जायगी, कई बच्चोंका आध्यात्मिक मरण हो चुका है, क्योंकि माताओंने अपने नैतिक उपदेशोंसे उनमें जीवनके प्रति भय उत्पन्न कर दिया था। जब कोइ माता बच्चेको ईश्वरसे प्रार्थना करना सिखाती है, तो वह उसके वैयक्तिक-अचेतनको बढ़ा देती है। क्योंकि बच्चेके लिए ईश्वर, माताके नैतिक उपदेशोंका व्यक्तीकरण होता है। बच्चेके लिए ईश्वरका अर्थ प्यार कभी नहीं होता, भय होता है। और अगर स्वर्ग और नरकके विचारोंसे उसकी जान कारी होती है, तो उसके भय भविष्यपर जाकर केन्द्रित हो जाते हैं निर्णय दिवस (Judgement day) पर। दस वर्षके जो बच्चे यात्रा करनेसे डरते हैं, उनके मनमें यही भय होता है। उनके लिए हर यात्रा अंतिम यात्रा होती है। कई प्रौढोंमें भी यही भय होता है और अक्सर अस्पष्ट चिंताओंमें व्यक्त होता है।

मुझे डर है मैंने अभिभावकोंके 'क्या न करना चाहिए' यही बतानेमें बहुत समय ले लिया है। मेरे विचारसे मैंने उचित ही किया है क्योंकि मैं बच्चेके मौलिक सद्गुणोंमें इतना अधिक विश्वास करता हूँ कि मैं चाहता हूँ कि बच्चेको उसकी प्रकृतिकी प्रेरणाके अनुसार जीने दिया जाय। फिर भी मैं सोचता हूँ कि अभिभावकगण बहुत सा रचनात्मक कार्य कर सकते हैं। उन बच्चोंका वातावरण ऐसा बना देना चाहिए कि उसकी रचनात्मक शक्ति योंको व्यक्त होनेका पूरा क्षेत्र मिले। वह चिड़चिड़े स्वभावके बच्चे इसलिए उकता जाते हैं, कि कुछ करनेको नहीं होता, वह अपने अरचनात्मक खिलौनों से बहुत जल्दी थक जाते हैं। खिलौनोंके मामले प्रयोग करनेके लिए असीमित क्षेत्र हैं, मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोणसे बाजार मेंसे खिलौनोंकी दुकानें निकम्मी हैं प्रत्येक खिलौनेमें कल्पनाजाल बुननेके लिए स्थान होना चाहिए अत संपूर्ण बने-बनाए खिलौनोंको शिशुशालाओंमें कोइ स्थान नहीं मिलना चाहिए। खिलौने जितना शोर गुल मचा सकें उतना अच्छा। रबरके खिलौनोंका शिशु-शालाओंम कोइ स्थान नहीं होना चाहिए केवल इसलिए नहीं कि वे हल्ला नहीं मचा सकते, बल्कि इसलिए भी कि उनके साथ रबरकी

हम रोज अभिभावकोंसे मिलना पड़ता है—कभी कभी दिन भरमें छः छः बार और उनकी शंकाओं तथा भयको दूर करना पड़ता है। गत सप्ताह एक माता आई और अपने पुत्रको कह गई कि उसे शेक्सपियर पढ़ना चाहिये और वह एक ऐसा लड़का है जो अधिकांशतः अपने अचेतनमें रहता है, और उसके जीवनमें सुख तभी आ सकता है, जब उसे अपने अचेतन विरोधोंको व्यक्त करनेका पूर्ण अवसर मिले। उसकी माताकी आज्ञा उसके अन्तःकरण में एक और नयी ग्रंथि खड़ी कर देती है (क्योंकि वह शेक्सपियरका अध्ययन नहीं कर सकता) और मैं साल भरसे उसकी 'विकास विरोधक-ग्रंथि' को तोड़नेमें लगा हुआ हूँ। बादमें जब मैंने उससे पूछा—'क्या तुम शेक्सपियरका अध्ययन करना चाहते हो?' तो उसने उत्तर दिया—'नहीं मैं मेरा गायोंसे ब्याह करना चाहता हूँ।'

अभिभावको! मैं जानता हूँ—तुम्हें सहानुभूति और समझकी आवश्यकता है किन्तु मैं तुमसे थक गया हूँ। तुम्हीं लोग जटिल (Problems) हो। तुम्हारे द्वारा जटिल बना दिये गये बच्चोंको मैं सुधार देता हूँ। मैं गुणी और अपने काम में निपुण होते हैं, किन्तु तुम्हारे लिए तो कोई सूत्र भी नहीं है। तुम मुझे गलत समझकर मेरे किये-कराये काम पर पानी फेरते रहते हो। तुम शंकाएँ प्रकट करके, कि जिनका सम्बन्ध बच्चोंसे नहीं वरन् तुमसे ज्यादे होता है, तुम मेरा समय नष्ट करते हो। तुम सब जटिल बालक हो और समाजकी सबसे बड़ी आवश्यकता यह है जटिल अभिभावकोंके लिए स्कूलोंकी व्यवस्था की जाय।

[समाप्त]

माता-पिता खुद एक समस्या

प्रकाशक
भानुकुमार जैन मैने० डायरेक्टर
हिन्दी ज्ञानमन्दिर लि० के लिए
थापर एंड क०, २/१७८, रीव रोड, बम्बई ९